चतुष्कोणेषु सर्वेषां मंचकानां महोज्ज्वलाः । रत्नदीपाः प्रकाशंते सदैवाग्निशिखोपमाः ॥१८॥
उशीरव्यजनादीनि चामरादीनि संति हि । यत्र ताम्बूलपात्राणि हेमरत्नोद्भवानि च ॥१९॥
तथा निष्ठीवनार्थं हि पात्राणि राजतानि च । यत्र रंभोपमा दास्यः शतशो रत्नभूषिताः ॥२०॥
चामरैर्वीजयंत्यश्च सीतारामावहर्निशम् । यत्र हेममयाश्चित्रा बद्धास्ते पंजराः शुभाः ॥२१॥
ये यागे नृपपत्नीभिः श्रीसीतायाः समर्पिताः । येषु वै केकिनो हंसाः सारसाः सारिकाः शुकाः ॥२२॥
लावकाः कोकिलाद्याश्च नाना येऽस्य पतत्रिणः । नानाशब्दान्प्रकुर्वन्तः शतशस्तेषु संस्थिताः ॥२३॥
तेषां शब्दस्य शिष्य त्वां किं प्राकट्यं वदाम्यहम् । ये रामस्मरणेनैव जीवन्मुक्ता न संशयः ॥२४॥

पक्षिण ऊचुः

जयतु राघवो जानकीयुतो जयत्वखिलराजराजकेश्वरः ।
दशरथात्मजो लक्ष्मणाग्रजो जयतु मापतिस्ताटिकांतकः ॥२५॥
जयतु कौशिकस्याध्वरं गतो जयतु रक्षसां मारको महान् ।
जयतु गौतमाहल्यया स्तुतो जयतु जानकीतातमानितः ॥२६॥
जयतु नः पतिश्चापखंडनो जनकजावरोन्मुक्तमालया ।
नृपसभांगणे कौशिकानुगः परमशोभितश्चातिहर्षितः ॥२७॥
जयतु भूमिजांघ्रयोस्तदा मुदा निजकरोत्पले स्थाप्य राघवः ।
कमलहस्तकेनाकरोन्नतिं स रघुनन्दनः पातु नः सुखम् ॥२८॥
जयतु भूमिजालिंगितो महान् जनमनोहरश्चातिशोभनः ।
परशुरामदं धृत्य वै धनुर्निजपितुस्तदाऽदर्शयद् बलम् ॥२९॥
जयतु सीतया भोगकृच्चिरं जयतु कैकयीप्रेरितो वनम् ।
जयतु पर्वते वासकृच्चिरं जयति योऽत्रिणा पूजितो वने ॥३०॥

चमर रक्खे हुए हैं। कहीं सुरागायका चमर रक्खा है । कहीं तालके और कहीं खजूरके बहुतसे पंखे रक्खे हुए हैं ॥ १७ ॥ पलंगके चारों ओर अच्छी रोशनी देनेवाले अग्निशिखा सदृश रत्नमय दीपक रक्खे हुए हैं ॥ १८ ॥ बहुतसे खस आदिके पंखे तथा चमर रक्खे हैं। भगवान्‌के उस विलासभवनके पानदान सुवर्णके हैं। उसमें जगह-जगह हीरा-पन्ना आदि रत्न जड़े हुए हैं ॥ १९ ॥ जितने उगालदान हैं, सब चाँदीके हैं। वहाँ अनेक प्रकारके गहने पहने रंभा जैसी सैकड़ों सुन्दरी नारियाँ राम और सीताको पंखा हाका करती हैं। जिसमें सोनेके कितने ही पिंजरे बँधे हुए हैं ॥ २० ॥ उनको यज्ञमें आयी हुई रानियोंने सीताजीको उपहारमें दिया था। जिनमें मयूर, हंस, सारस, मैना, बटेर, कोयल आदि सैकड़ों प्रकारके पक्षी कितनी ही तरहकी बोलियाँ बोल रहे थे ॥ २१ ॥ २२ ॥ हे शिष्य ! वे पक्षी क्या बोलते थे, यह मैं तुम्हें स्पष्ट करके बतलाता हूँ। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे पक्षी बारम्बार रामका नाम लेनेसे जीवन्मुक्त हो गये थे ॥ २३ ॥ २४ ॥ पक्षी कहते थे—सीतापति रामचन्द्रजीकी जय हो, अखिलराजराजेश्वरकी जय हो, दशरथात्मज रामचन्द्रजीकी जय हो। लक्ष्मणाग्रज रामकी जय हो। श्रीपति और ताड़काके नाशक रामचन्द्रजीकी जय हो।। २५ ॥ विश्वामित्रके यज्ञमें जानेवाले, राक्षसोंके विनाशकारी, गौतम-अहल्या तथा जनकजीसे सम्मानित रामचन्द्रकी जय हो ॥ २६ ॥ हमारे स्वामी, शंकरके धनुषको खण्डन करने तथा सीताजीके हाथोंकी जयमाला पहिननेवाले, परशुरामके दिये हुए धनुषको चढ़ाकर पिता दशरथको अपना पराक्रम दिखानेवाले ॥ २७-२९ ॥ सीताके साथ विलास करनेवाले, कैकेयीकी प्रेरणासे वनको जानेवाले, चिरकाल तक चित्रकूटपर निवास

जयतु स विराधस्य घातकृज्जयतु दूषणादिप्रमर्दनः ।
जयतु यो मृगं मोचयद्भवाज्जयतु यः कबंधं क्षणाज्जहौ ॥३१॥
जयतु वालिहा सेतुकारको जयतु रावणादिमर्दकः ।
जयतु स्वं पदं प्राप सीतया मंगलस्नानकृन्मुदा ॥३२॥
जयतु वाक्यतो भूसुरस्य यः सकलभूतलं पर्यटन् चिरम् ।
जयतु यागकृल्लोकशिक्षया जयतु जानकीं रंजयन् स्थितः ॥३३॥

श्रीरामदास उवाच

रघुवरस्य यत्पक्षिभिः कृतं नवकमुत्तमं यः पठिष्यति ।
तपननिर्गमे भक्तितत्परो निजमनोऽर्थितं संगमिष्यति ॥३४॥

एतादृशे रम्यगेहे मया शिष्य प्रवर्णिते । सीतया स सुखं रेमे चैकपत्नीव्रतस्थितः ॥३५॥
अथ सा जानकी देवी रंजयामास राघवम् । स्थितं मंचकवर्ये तं निजक्रीडादिकौतुकैः ॥३६॥
मंचकस्थश्च श्रीरामस्त्वेकदा सुखनिर्भरः । सीतासौंदर्यमालोक्य वर्णयामास तां मुदा ॥३७॥
हे सीते कंजनयने ब्रह्मणा त्वं कथं चिता । जानाम्यहं वितर्केण तेन त्वं निर्मिताऽसि न ॥३८॥
त्वद्रूपसदृशीं नान्यां पश्यामि जगतीतले । प्रतिपच्चंद्रकलया स्पर्धयंति नखानि ते ॥३९॥
नखमध्या रक्तवर्णाः शुभा दाडिमबीजवत् । अंगुष्ठौ वर्तुलौ रम्यौ शिशुगुष्ठोपमौ तव ॥४०॥
मृदुले ते पादतले कंजपत्रांतरोपमे । समे रेखाध्वजयुते स्वस्तिकादिसुचिह्निते ॥४१॥
सीते तेंघ्र्यूर्ध्वभागौ तौ निर्लोमौ मांसलौ शुभौ । अशिरौ मृदुलौ पीतौ नृपस्त्रीवंदनोचितौ ॥४२॥
पादमूले दधिजेन स्पर्द्धेते रक्तवर्तुले । पादपृष्ठं समे पीने कोमले लोमवर्जिते ॥४३॥

फरनेवाले, अत्रि आदि ऋषियोंसे पूजित रामचन्द्रजीकी जय हो ॥ ३० ॥ जिन्होंने विराधको मारा था और दूषणादि राक्षसोंका संहार किया था। जिन्होंने मृगरूपधारी मारीचको मुक्ति दी थी और क्षणमात्रमें कबन्धका विनाश कर दिया था, ऐसे रामचन्द्रकी जय हो ॥ ३१ ॥ बालिको मारनेवाले, समुद्रमें सेतु बाँधनेवाले, रावणादिके नाशक, सीताको लंकासे वापस लाकर अपने राजसिंहासनपर सुशोभित और मंगल-स्नान करके पवित्र रामचन्द्रकी जय हो ॥ ३२ ॥ कुम्भोदर ब्राह्मणकी आज्ञासे चिरकालतक समस्त पृथ्वीका पर्यटन करनेवाले, लोकशिक्षाके निमित्त अश्वमेध यज्ञ करनेवाले और सीताजीको प्रसन्न करते हुए स्थित रामचन्द्रकी जय हो ॥ ३३ ॥ श्रीरामदासजी कहने लगे—यह पक्षियों द्वारा किये हुए नौ श्लोकोंका स्तोत्र वर्षाऋतुमें जो कोई पाठ करेगा, उसकी मनोऽभिलषित कामनाएँ पूर्ण होंगी। जैसा मैं ऊपर कह आया हूँ, ऐसे सुन्दर भवनमें रामचन्द्रजी सीताके साथ सुखपूर्वक एकपत्नी व्रत धारण करके विहार करते थे। उसी प्रकार सीताजी भी नाना प्रकारके कौतुक कर-करके रामचन्द्रजीको प्रसन्न करती थीं ॥ ३४–३६ ॥ एक दिन रामचन्द्रजी पलंगपर बैठे थे। सहसा वे सीताके सौन्दर्यको देखकर कहने लगे—हे कमलनयने सीते! मैं अपने मनमें बार-बार यही सोचता रहता हूँ कि तुम्हें ब्रह्माजीने कैसे बनाया होगा। मेरा तो जहाँतक ख्याल है कि तुम्हारी रचना ब्रह्माजीने नहीं की है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ बल्कि कोई दूसरा कारीगर तुम्हारी इस शोभाको बनानेके लिए नियुक्त किया गया होगा। क्योंकि तुम्हारे सदृश रूपवती नारी मैंने संसारमें कहीं देखी ही नहीं। तुम्हारे पैरोंके नाखून अपनी अनुपम छटा द्वारा चन्द्रकलासे बाजी मारनेके लिए उतावले हो रहे हैं ॥ ३९ ॥ नाखूनोंकी लाली अनारदानेकी तरह झलक रही है। तुम्हारे वर्तुलाकार और सुन्दर अंगूठे बच्चोंके अंगूठोंकी नाईं कोमल दीखते हैं ॥ ४० ॥ तुम्हारे चरण कमलकी पंखुड़ियोंके सदृश कोमल और सुन्दर हैं। उनमें ध्वजादिकी शुभ रेखाएँ खिंची हैं और मेहावर लगी हुई है। पाँवोंके ऊपरका भाग सुन्दर तथा सुडौल है। उनमें नसें नहीं दिखाई देतीं। इसीसे तो वे चरण बड़ी-बड़ी रानियोंके पूज्य हो रहे हैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ तुम्हारे पैरके नीचेका हिस्सा मक्खनकी तरह मुलायम है, दोनों गुल्फ लाल-लाल वर्तुलाकार और मोटे

तव गुल्फौ रक्तवर्णौ वर्तुलौ मांसलौ शुभौ । जंघे गोपुच्छसदृशे वर्तुले मांसले शुभे ॥४४॥
निर्लोमे मृदुले पीने ह्यशिरे सरले वरे । वर्तुलौ ते महाजानू मांसलौ बीजपूरवत् ॥४५॥
रंभास्तंभोपमे चोरू मांसलौ त्वतिकोमलौ । पीनौ घनौ वर्तुलौ तौ विलोमौ मे सुखोचितौ ॥४६॥
जघनं मांसलं रम्यं वर्तुलं गजकुंभवत् । पीनं विलोमं सुस्निग्धं मम चित्तैकमोहनम् ॥४७॥
नाहं ते वर्णने शक्तो रतिस्थानस्य भामिनि । गंभीरा वर्तुला नाभिस्तव रम्या प्रदृश्यते ॥४८॥
वलित्रयं तु जठरे दृश्यते तिसृवेणिवत् । मृगराजस्य कटिना तुल्यस्ते कटिरुत्तमा ॥४९॥
रम्यं तवोदरं सूक्ष्मं मृदुलं मांसलं शुभम् । विलोमं पीतवर्णं च पुत्रोत्पत्तिविसूचकम् ॥५०॥
वंशस्य शकलेनेव स्पर्द्धते तव मांसलः । पृष्ठस्तंभः कोमलश्च निम्नो लोमविवर्जितः ॥५१॥
पार्श्वेऽतिमृदुले पीते मांसले लोमवर्जिते । कुक्षी पीने लोमहीने मांसले किंचिदुन्नते ॥५२॥
हृदयं कोमलं रम्यं मांसलं पीनमुन्नतम् । विस्तीर्णं लोमहीनं च सुस्निग्धं सौख्यदं मम ॥५३॥
हेमकुंभसमानौ द्वौ कुचौ पीनौ घनौ शुभौ । गजशुंडादंडतुल्यौ पीनौ ते कोमलौ भुजौ ॥५४॥
कृशा रम्याः कोमलाश्च तेऽङ्गुल्यो जनकात्मजे । रक्ते पाणितले शंखध्वजमत्स्यादिचिह्निते ॥५५॥
मांसले कोमले प्रोच्चैः सुरेखामण्डिते वरे । करपृष्ठे लोमहीने मांसले कोमले शुभे ॥५६॥
पीनौ स्कंधौ वर्तुलौ ते जत्रुस्ते मांसपूरितः । कंबुकंठोऽतिपीनश्च सवलित्रय उत्तमः ॥५७॥
मध्ये निम्नं सुपीनं ते चिबुकं वर्तुलं मृदु । प्रवालबिंबसदृशश्चारक्तः कोमलो घनः ॥५८॥
सीते तेऽधोऽधरो भाति मधुरोऽमृतसन्निभः । कुंदपुष्पकलिकया स्पर्द्धन्ते दशनास्तव ॥५९॥
सांद्राः कृत्रिमवर्णैश्च कृष्णवर्णा मनोहराः । हेमपुष्पैर्हेमतंतुबंधैश्चित्रविचित्रिताः ॥६०॥

हैं। जंघायें गौकी पूँछके समान गावदुम एवं मोटी-ताजी हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ उनमें न तो कहीं एक भी रोम दिखाई देते हैं न शरीरकी नसें ही । दोनों जघन बीजपूर (बिजौरे नीबू) की तरह मोटे और बर्तुलाकर हैं ॥ ४५ ॥ तुम्हारे दोनों ऊरु केलेके खम्भेकी नाईं मोटे और कोमल हैं। उनका सुन्दर वर्ण और उनकी सुन्दर छटा मुझे बहुत अच्छी लगती है ॥ ४६ । जघनभाग भी मोटा, सुन्दर और हाथीके मस्तककी तरह बर्तुल है। वह पीतवर्ण, लोमहीन, सुचिक्कण तथा मनोमोहक है ॥ ४७ ॥ हे सीते ! तुम्हारे रतिस्थानका वर्णन करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। तुम्हारी नाभी भी गहरी, बर्तुलाकार और सुन्दर है ॥ ४८ ॥ तुम्हारे पेटमें तीन रेखाएँ तीन वेणीके समान दिखाई पड़ती हैं । तुम्हारी कमर मृगराज (सिंह) की तरह पतली है ॥ ४९ ॥ तुम्हारा उदर सूक्ष्म, मृदुल और मांसल है। उसमें कहीं भी लोम नहीं दिखाई पड़ता। वह तीन वर्णका है और उसको देखनेसे भावी पुत्रोत्पत्तिका सूचना मिलती है ॥ ५० ॥ वंशखण्डकी तरह मोटी-ताजी तुम्हारी पीठकी रीढ़ है। दोनों पार्श्वभाग तो अतिकोमल होनेसे देखते ही बनते हैं। कोख भी पीतवर्ण, लोमहीन, कुछ ऊँची एवं मोटी-ताजी है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ हृदय कोमल, रम्य, मांसल, पीला और ऊँचा है। वह लोमहीन है और बहुत दूर तक फैला हुआ है। वह छूनेमें चिकना मालूम होता है। इसलिए मुझे वह बहुत सुन्दर जँचता है ॥ ५३ ॥ स्वर्णकलशकी नाईं मोटे और कठोर तुम्हारे दोनों कुच हैं। तुम्हारी दोनों भुजाएँ हाथीकी सूँडकी तरह मोटी, कोमल और सुन्दर हैं ॥ ५४ ॥ पतली, सुन्दर और कोमल तुम्हारे हाथोंकी उँगलियाँ हैं। शंख, ध्वज, मकर तथा मत्स्यादि चिह्नों युक्त लाल-लाल तुम्हारी दोनों हथेलियाँ हैं ॥ ५५ ॥ उसी तरह उनका पृष्ठभाग भी लोमहीन, मांसल, कोमल और सुन्दर है ॥ ५६ ॥ बर्तुलाकार, मोटे-ताजे, मांससे अच्छी तरह भरे हुए और शङ्खकी नाईं तुम्हारे दोनों कन्धे हैं। ग्रीवामें तीन सुन्दर रेखाएँ हैं ॥ ५७ ॥ तुम्हारा मध्यभाग भी निम्न, पीन एवं कोमल है । प्रवाल और बिम्बफलकी तरह लाल, कोमल और रसभरा तुम्हारा चिबुक है ॥ ५८ ॥ हे सीते ! अमृतकी तरह मधुर तुम्हारा अधरोष्ठ है। कुन्दकी कलियोंको लज्जित करनेवाले तुम्हारे दाँत हैं ॥ ५९ ॥ उनमें बत्तीसी पड़ी हुई है । पान खाते खाते वे काले हो गये हैं। उनमें जहाँ-तहाँ सुवर्णके तारको

ऊर्ध्वाधरः कोमलस्ते रक्तवर्णो विभात्ययम् । ऋजु घ्राणमुन्नसं ते दिव्यं भाति मनोहरम् ॥६१॥
तव नेत्रे कंजपत्रतुल्ये दीर्घे मनोहरे । हरिणीनेत्रसदृशे कामबाणाविव प्रिये ॥६२॥
तव कर्णौ घनौ पीनौ बहुभारसहौ वरौ । तव सीतेऽतिसुस्निग्धे प्रोच्चे गंडस्थले शुभे ॥६३॥
कृशे भ्रुवौ चापतुल्ये कृष्णवर्णे सुकोमले । ललाटं तव विस्तीर्णं मांसलं हि समं मृदु ॥६४॥
गङ्गाकूलोपमः सीते सीमंतस्तव सुंदरः । हेमतंतुसमानास्ते केशाः स्निग्धाः सुकोमलाः ॥६५॥
मस्तकस्तव सूक्ष्मश्च वर्तुलो मांसलः शुभः । वेणीबन्धो वरः सीते जघने पतितस्तव ॥६६॥
चंपपुष्पोपमो वर्णः सौकुमार्यमपि प्रिये । सीते तवाननस्पर्द्धी शशांकः क्षयमाप सः ॥६७॥
त्वन्नेत्रविजिता सीते मृगी धावति कानने । सीते त्वद्भ्रुकुटिस्पर्द्धि चापं भग्नं मया पुरा ॥६८॥
तव नेत्रकटाक्षेण मुनीनां मदनोद्भवः । नेत्रयोस्तव चांचल्यं मकरान् लज्जयत्यहो ॥६९॥
तव घ्राणं शुको दृष्ट्वाऽऽत्मानं धिक्करोति हि । दृष्ट्वौष्ठयोः शोणिमां ते सौकुमार्यमपि प्रिये ॥७०॥
सहकारतरोश्चापि रक्तः कोमलपल्लवः । लज्जया हरितो भाति त्वक्त्वा स्वीयां सुरक्तताम् ॥७१॥
सौकुमार्यं तथा त्यक्त्वा लज्जया ते घनोऽपि सः । एवं किं किं मया कान्ते सौंदर्यं तव जानकि ॥७२॥
वर्णनीयं महद्दिव्यं तत्र ब्रह्माऽपि कुंठितः । इत्युक्त्वा राघवः सीतां प्रीत्या तां परिषस्वजे ॥७३॥
तच्छ्रुत्वा वर्णनं स्वीयं लज्जयाऽधः कृतानना । किंचित्स्मिताननं कृत्वा तस्थावंके पतेश्च सा ॥७४॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे विलासकाण्डे वाल्मीकीये
सीतावर्णनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

चित्रकारी की हुई है। इससे वे और भी सुन्दर मालूम होते हैं ॥ ६० ॥ तुम्हारा ऊपरी होंठ भी कोमल और रक्तवर्ण है। कोमल और ऊँची तुम्हारी नासिका है, जो बड़ी सुन्दर दीखती है ॥ ६१ ॥ कमलकी पंखुड़ियोंकी नाईं सुन्दर तुम्हारी दोनों आँखें हैं। उन्हें चाहे हरिणीके नेत्रोंकी तरह कह लो या कामबाणकी भाँति चित्ताकर्षक कहो ॥ ६२ ॥ तुम्हारे दोनों कान भी घन और पीन हैं। वे बहुतसे गहनोंका बोझ सह सकते हैं। तुम्हारे गंडस्थल अति कोमल और ऊँचे हैं ॥ ६३ ॥ पतली-पतली और काले रंगकी तुम्हारी दोनों भौंहें धनुषाकार दीखती हैं। तुम्हारा ललाट खूब चौड़ा और बराबर है ॥ ६४ ॥ तुहारी माँग गंगाके तटकी तरह सुन्दर दीखती है। सोनेके तारकी भाँति सुन्दर, चिकने और कोमल तुम्हारे केशोंका कलाप है ॥ ६५ ॥ तुम्हारा मस्तक सूक्ष्म, वर्तुल, मांसल और सुन्दर है। तुम्हारे केशोंका वेणीबन्ध जाँघतक झूलता है ॥ ६६ ॥ चम्पाके फूलकी तरह तुम्हारा सुन्दर वर्ण है। उसी तरह उसमें कोमलता भी है। हे सीते! तुम्हारे मुखसे होड़ करनेके कारण चन्द्रमाको क्षयरोग हो गया ॥ ६७ ॥ तुम्हारी आँखोंसे हार मानकर मृगियाँ वनोंको भाग गयीं और इधर-उधर दौड़ती फिरती हैं। हे जनकात्मजे! सच पूछो तो उस समय धनुषयज्ञमें तुम्हारी इन भौंहोंसे स्पर्धा करनेके ही कारण मैंने धनुषको तोड़कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये थे ॥ ६८ ॥ मुझे पूरा विश्वास है कि तुम्हारे नेत्रोंके कटाक्षसे बड़े-बड़े तपस्वियोंके हृदयमें भी कामका वेग प्रादुर्भूत हो जायगा। तुम्हारे नेत्रोंकी चंचलता मछलियोंको भी मात कर रही है। तुम्हारी नाक देखकर तोते अपनेको बार-बार धिक्कारते हैं। तुम्हारे होंठोंकी लालिमा और कोमलता देखकर आम्रवृक्षका लाल और नया पत्ता लज्जाके मारे हरा हो गया है। तुम्हारी लालिमाके आगे उसकी लालिमा नहीं ठहर सकी। हे कान्ते! मैं तुम्हारी सुन्दरताका कहाँ तक वर्णन करूँ ॥ ६९–७२ ॥ इसके वर्णनमें चतुर्मुख ब्रह्मा भी हार मान लेंगे। ऐसा कहकर रामचन्द्रजीने सीताको अपने हृदयसे लगा लिया ॥ ७३ ॥ इस तरह अपनी बड़ाई सुनकर सीता भी लज्जासे नीचा मुँह करके बैठ गयीं। फिर थोड़ा मुसकाकर पतिदेवकी गोदमें जा बैठीं ॥ ७४ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकायां सीतावर्णनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः

(सीताकृत आध्यात्मिक प्रश्नके उत्तरमें रामका देहरामायण-वर्णन)

श्रीरामदास उवाच

अथ सा जानकी रामं विनयाल्लज्जिताऽब्रवीत् । राम राजीवपत्राक्ष किंचित्प्रष्टुं मम प्रभो ॥ १ ॥
वांछाऽस्ति चेत्करोष्याज्ञां तर्हि पृच्छाम्यहं तव । तत्सीतावचनं श्रुत्वा राघवः प्राह जानकीम् ॥ २ ॥
पृच्छस्व सीते यत्तेऽस्ति प्रष्टव्यं मां सुखेन तत् । मा शंकां भज रम्भोरु गुह्यं चापि वदामि ते ॥ ३ ॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा नत्वा तं प्राह जानकी । राम राम महाबाहो किंचिदुपदिशस्व माम् ॥ ४ ॥
येन मां तव संज्ञानं भवेच्चैव महोज्ज्वलम् । तत्सीतावचनं श्रुत्वा रामचन्द्रोऽब्रवीद्वचः ॥ ५ ॥
सम्यक् पृष्टं त्वया सीते शृणुष्वैकाग्रमानसा । मम ज्ञानाय ते वच्मि परं कौतूहलं शुभम् ॥ ६ ॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

सच्चिदानन्दरूपाख्यसागरस्य तदिच्छया । तरंगरूपयाऽऽत्मांशबिंदुः शुद्धो विनिर्गतः ॥ ७ ॥
आत्मनामा मातृभूतबुद्धेर्जठरसंभवः । शुद्धसत्त्वांतःकरणं पिता चात्मन ईरितः ॥ ८ ॥
तस्यात्मनश्च चत्वारो भेदास्ते बंधवः स्मृताः । तूर्यावस्थस्तत्र वरस्ततो जाग्रदवस्थकः ॥ ९ ॥
स्वप्नावस्थस्तृतीयश्चावरः सुषुप्त्यवस्थकः । हृदयाकाशस्तत्स्थानं मनोवेगो बहिर्गमः ॥१०॥
मनोदुर्वृत्तिघातश्च मनोवेगस्य खंडनम् । मायायोगस्ततस्तस्य पूर्वसंस्कारनिग्रहः ॥११॥
ततः कुबुद्धिहेतोर्हि भवारण्येऽटनं चिरम् । दंभस्य निग्रहस्तत्र पंचभूतात्मिका स्थिरा ॥१२॥
आत्मनः पर्णकुटिका विश्रान्तिस्थानमीरिता । कामक्रोधलोभजयस्तत्राशाकुन्तनं स्मृतम् ॥१३॥
मोहस्य निग्रहस्तत्र शुद्धमायाश्रयस्ततः । रजोरूपा तु या माया जठराग्नी तदा स्मृता ॥१४॥

श्रीरामदास कहने लगे- कुछ देर बाद लज्जा और विनयसे सकुचाती हुई सीताजी रामचन्द्रसे बोलीं- हे प्रभो ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहती हूँ ॥ १ ॥ यदि आप आज्ञा दें तो पूछूँ । सीताकी वाणी सुनकर रामचन्द्रजीने कहा-॥ २ ॥ हे प्रिये ! जो कुछ भी तुम्हारी इच्छा हो, आनन्दपूर्वक पूछो । किसी प्रकारकी शङ्का मत करो । यदि कोई गुप्त बात होगी, वह भी मैं तुम्हें बतलाऊँगा ॥ ३ ॥ इस तरहकी बातें सुनकर सीताने कहा—हे महाबाहो राम ! मुझे आप कोई ऐसा उपदेश दें, जिससे मैं आपको अच्छी तरह समझ लूँ । इस बातको सुनकर रामने सीतासे कहा—॥ ४ ॥ ५ ॥ हे देवि सीते ! तुमने बहुत ही अच्छी बात पूछी है । मैं अपने वास्तविक तत्त्वको तुम्हें अच्छी तरह समझाता हूँ, मन एकाग्र करके सुनो । आत्मज्ञान-प्राप्तिके लिए मैं तुम्हें कौतूहलजनक बातें बता रहा हूँ ॥ ६ ॥ रामचन्द्रजी कहने लगे—सत्, चित् और आनन्दरूपी एक महान् सागर है । उसकी इच्छारूपी तरङ्गसे एक परम पवित्र आत्मांशस्वरूप बिन्दु निकला । उसका नाम पड़ा 'आत्मा' । उसकी माता हुई बुद्धि । शुद्ध और सत्त्वमय अन्तःकरण उसका पिता हुआ ॥ ७ ॥ ८ ॥ उस आत्माके चार भेद हुए । वे ही आत्माके चार भाई कहलाये । उनमें सबसे श्रेष्ठ हुई तुरीयावस्था, उससे कुछ न्यून जाग्रदवस्था, फिर स्वप्नावस्था और सबसे निम्न श्रेणीकी सुषुप्ति अवस्था हुई । इन सबका हृदयाकाश स्थान है और मनोवेगसे ये अवस्थायें कभी-कभी बाहर भी हो जाती हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ मनकी दुर्वृत्तियोंका खण्डन, मनके आवेगपर आघात और मायाके योगसे पूर्वसंस्कारका दमन करना होता है ॥ ११ ॥ यदि बुद्धि किसी तरह दूषित हुई तो इस संसाररूपी घोर जङ्गलमें बहुत दिनों तक आत्माको भटकना पड़ता है । उस समय पञ्चभूतात्मक आत्माको स्थिर करके दम्भका निग्रह करनेकी आवश्यकता होती है ॥ १२ ॥ केवल आत्मारूपिणी ही एक ऐसी पर्णकुटी है, जहाँ कि शान्ति मिलती है । अन्यत्र सब जगह क्लेश ही है । उस पर्णकुटीमें काम, क्रोध, लोभ, मोहादि शत्रु नहीं जाने पाते । आशाकी भी वहाँ गति नहीं है । वहाँ मोहका भी निग्रह हो जाता है । वहाँ ही शुद्ध-सात्त्विकी मायाका आश्रय प्राप्त होता है । उस समय जब कि रजोगुणमयी

तामस्याश्चैव मायाया वियोगश्च तदा स्मृतः । सुखालाभो महान्क्लेशः शोकभंगस्ततः परम् ॥१५॥
विवेकस्याश्रयस्तत्र भक्त्युद्रेकसमागमः । अविवेकवधश्चापि ह्युत्साहेन समागमः ॥१६॥
अज्ञानतरणोपायस्त्रिगुणाश्रयसद्मनि । लिंगाख्यनिग्रहस्तत्र मदस्य संप्रकीर्तितः ॥१७॥
निग्रहो मत्सरस्यापि ततोऽहंकारनिग्रहः । वियोगो लिंगदेहस्य मायानामैक्यता ततः ॥१८॥
हृदयाकाशगमनमानंदैकसुखं ततः । मायात्यागस्ततश्चैव सात्त्विक्या ग्रहणं स्मृतम् ॥१९॥
सात्त्विक्या मायया सार्धं हृदयाकाशमुत्तमम् । महाकाशे प्रणयनं सच्चिदानन्दसंज्ञके ॥२०॥
प्रवेशनं सागरे हि मुक्तिर्ज्ञेयाऽऽत्मनः शुभा । सायुज्या सा परिज्ञेया भुक्तिर्मुक्तिचतुष्टये ॥२१॥
एवं मयेयं ते प्रीत्या सीते संज्ञानपेटिका । वेदसारैर्गूढार्थैरज्ञानमतिनाशकैः ॥२२॥
मज्ज्ञानदैः पंचदशश्लोकरत्नैः प्रपूरिता । समर्पिता गृहाण त्वमस्यां बुद्ध्याऽवलोकय ॥२३॥
भविष्यति मम ज्ञानमस्याः सम्यग्विचारतः । तद्रामवचनं श्रुत्वा सीता संज्ञानपेटिकाम् ॥२४॥
निजहृन्मन्दिरे स्थाप्य बुद्धिदृष्ट्या मुहुर्मुहुः । सम्यगुद्घाट्य तूष्णीं सा मुहूर्तमवलोकयत् ॥२५॥
तदा ज्ञात्वाऽथ सकलां निजक्रीडां विदेहजा । विहस्य रघुवीरस्य सा ननामांघ्रिपंकजे ॥२६॥
आनंदनिर्भरा जाता सानंदाश्रुसमन्विता । आनंदोत्फुल्लरोमाञ्चा तूष्णीमासीत्तदा क्षणम् ॥२७॥
आनन्दनिर्भरां सीतां दृष्ट्वा तां राघवोऽब्रवीत् । पेटिकायां त्वया सीते किं दृष्टं तोषकारकम् ॥२८॥
कच्चिद्गतं तवाज्ञानं कच्चिल्लब्धं मम त्वया । संज्ञानं वद मां सीते यथा ज्ञातं त्वया हृदि ॥२९॥

माया जठराग्निमें रहती है ॥ १३ ॥ १४ ॥ तब तमोगुणयी मायाका वियोग हो जाता है । इसमें सुखका नाम नहीं रहता और चारों ओर कराल दुःखकी घटाएँ घिरी दिखाई देती हैं । उसके आगे शोकभङ्गका दर्जा आता है ॥ १५ ॥ उसी समय हृदयमें विवेक उपजता है । साथ ही भक्तिका भी उद्वेग होता है । अज्ञान नष्ट हो चलता है । उत्साहसे स्नेह हो जाता है । तीन गुणवाले इस शरीरीका सबसे प्रधान कर्तव्य यह है कि जिस तरह भी हो सके, अज्ञानसे जीवको छुड़ानेकी चेष्टा करे । जब प्राणी मदका निग्रह कर लेता है, तब वह लिङ्गनिग्रही कहलाने लगता है ॥ १६ ॥ १७ ॥ मदका निग्रह करके मत्सरका और मत्सरके बाद अहङ्कारका निग्रह करना चाहिए । जिस समय साधक लिङ्गनिग्रही हो जाता है अर्थात् मदको वशमें कर लेता है । उसी समय मायाके परास्त होनेका समय आता है ॥ १८ ॥ वास्तवमें माया और है ही क्या, इन्हीं काम-आदि दुष्टोंके संघसे मायाका निर्माण हुआ करता है । इसके परास्त हो जानेपर प्राणीको आनन्द ही आनन्द रहता है । जब मायाका त्याग हो जाता है, उस समय सात्त्विकी मायाका प्रादुर्भाव होता है । उस सात्त्विकी मायाके साथ प्राणी उत्तम हृदयाकाशका सुख अनुभव करने लगता है । उससे भी उत्कर्ष होनेपर महाकाशका निर्माण होता है । सत्, चित् और आनन्द ये तीनों वहाँ सदा विद्यमान रहते हैं ॥ १९ ॥ २० ॥ इसी महान् समुद्रमें कूद जानेको आत्माकी कल्याणदायिनी मुक्ति कहते हैं । चार प्रकारकी कही हुई मुक्तियोंमेंसे उसीको सायुज्य मुक्ति कहते हैं । हे सीते ! तुम्हारे स्नेहवश मैंने यह ज्ञानकी पिटारी खोलकर रख दी । इसमें गूढ़ अर्थवाले, वेदके सारसे परिपूर्ण तथा अज्ञानबुद्धिको नष्ट करनेवाले पन्द्रह श्लोकरूपी रत्न भरे हुए हैं । इन्हींके द्वारा मेरा मुख्य तत्त्व जाना जा सकता है । यह पिटारी मैं तुम्हें अर्पण करता हूँ । इसे सम्हालो और ज्ञानदृष्टिसे देखो । बार-बार इन बातोंका मनन करो तो मुझे अच्छी तरह समझ लोगी ॥ २१–२४ ॥ इस प्रकार रामकी बातें सुनकर सीताने उस ज्ञानकी पिटारीको अपने हृदयमें रख लिया । फिर उसे खोलकर बुद्धिदृष्टिसे कुछ देर देखती रहीं ॥ २५ ॥ तब सीताने अपनी सब क्रीडाओंका भेद जाना और हँसकर रामचन्द्रजीको प्रणाम किया ॥ २६ ॥ सीताको उस समय एक महान् आनन्दका अनुभव हुआ । उनकी आँखोंमें आँसू आ गये, शरीरके रोंगटे खड़े हो गये और थोड़ी देरके लिए सीताजी अपने आपको भी भूलकर चुप हो गयीं ॥ २७ ॥ इस प्रकार सीताको आनन्दित देखकर रामचन्द्रजीने पूछा—हे सीते ! तुमने उस पेटीमें क्या क्या तृप्तिदायक चीजें देखीं ? जिससे तुम्हें ऐसी प्रसन्नता प्राप्त हुई ॥ २८ ॥ क्यों, अब तो तुम्हारा अज्ञान दूर

ज्ञातं त्वया वा न ज्ञातं वेत्तुमिच्छामि त्वन्मुखात् ।
यदि किंचित्त्वया नास्यां ज्ञातं तद्बोधयाम्यहम् ॥ ३० ॥

इति रामवचः श्रुत्वा निमग्नाऽऽनंदसागरे मंचकस्था रामचन्द्रं जानकी वाक्यमब्रवीत् ।३१।।

श्रीसीतोवाच

राम रावणदर्पघ्न त्वद्दत्ता ज्ञानपेटिका । मयाऽवलोकिता बुद्ध्या लब्धं ज्ञानं तव प्रभो ॥३२॥
निर्गुणो निर्विकारस्त्वं क्रीडेयं सकला त्वया । मत्संगे दर्शिता भूम्यां कृत्वा लोकहिताय हि ॥३३॥
पेटिकायां यथा ज्ञातं मया तत्प्रवदामि ते । त्वया पंचदशश्लोकैर्युक्तं गुह्यमुत्तमम् ॥३४॥
प्रकटं तत्करोम्यद्य तवाग्रे रघुनन्दन । सर्वेषां मन्दबुद्धीनां हिताय ज्ञानसिद्धये ॥३५॥
जनानां सम्बोधयितुं चरित्रं भवताऽत्र यत् । कृतं तस्य विचारेण ह्यात्मज्ञानं लभेन्नरः ॥३६॥
सच्चिदानन्दरूपी यो विष्णुर्ज्ञेयः स सागरः । भूभारहरणादीच्छा विष्णोर्या जायते शुभा ॥३७॥
स वै ज्ञेयस्तरंगोऽत्र तथात्मांशलवः शुभः । बहिःकृतः सागरात्स आत्माख्यः कथ्यते भुवि ॥३८॥
बुद्धिस्तु जननी चैव कौसल्या साऽत्र कथ्यते । शुद्धसत्त्वांतःकरणं पिता तस्यात्मनः स्मृतः ॥३९॥
राजा दशरथो ज्ञेयः श्रीमान्सत्यपराक्रमः । तस्यात्मनश्च चत्वारो भेदास्ते बन्धवः स्मृताः ॥४०॥
रामसौमित्रिभरतशत्रुघ्ना एव चात्र हि । तुर्यावस्थस्तेषु वरः स त्वं दशरथात्मजः ॥४१॥
ततो जाग्रदवस्थश्च लक्ष्मणः सोऽत्र कथ्यते । स्वप्नावस्थस्तृतीयश्च भरतोऽपि निगद्यते ॥४२॥
अवरः सुषुप्त्यवस्थस्तु ज्ञेयः शत्रुघ्न एव सः । हृदयाकाशं तत्स्थानमयोध्याऽत्र स्मृता तु सा ॥४३॥
मनोवेगो बहिर्यात्रा विश्वामित्राध्वरे गमः । मनोदुर्वृत्तिघातश्च ताटिकाया वधोऽत्र सः ॥४४॥
मनोवेगस्य यो भंगः स धनुर्भंग उच्यते । मायायोगस्ततस्तस्य मत्पाणिग्रहणं स्मृतम् ॥४५॥
पूर्वसंस्कारनिग्रहो जामदग्नेर्विनिग्रहः । ततः कुबुद्धिहेतोर्हि कैकेय्या वरदानतः ॥४६॥

हुआ ? अच्छा, अब बताओ कि मैं कौन हूँ ? मुझे तुमने अपने मनमें क्या समझा है ? मैं तुम्हारे मुँहसे यह सुनना चाहता हूँ । तुमने मुझे जाना या नहीं ? यदि तुम्हें हमको जाननेमें अब भी कुछ कसर होगी तो मैं समझाऊँगा ॥ २९ ॥ ३० ॥ इस प्रकार रामचन्द्रजीकी बातें सुनकर सीताजी और भी आन्दित हो गयीं और रामचन्द्रसे कहने लगीं ॥ ३१ ॥ सीताजी बोलीं–हे रघुनन्दन ! हे रावणके गर्वको नष्ट करनेवाले राम ! आपने मुझे जो यह ज्ञानकी पिटरी दी है, उसे मैंने अपनी ज्ञानदृष्टिसे खूब गौर करके देखा और मुझे आपका ज्ञान-प्राप्त हो गया ॥३२॥ आप निर्गुण और निराकार हैं । फिर भी मेरे साथ संसारमें आपने जो-जो लीलाएँ की हैं, उनका उद्देश्य एकमात्र लोकहित है । मैंने इस पिटारीमें जो-जो देखा है, वह बतलाती हूँ । आपने पन्द्रह श्लोकोंमें मुझे जो उत्तम ज्ञान दिया है, उसे मैं आपके सम्मुख प्रकट करती हूँ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ उससे संसारके समस्त अज्ञानियोंका उपकार होगा अर्थात् उन्हें भी ज्ञानकी प्राप्ति हो जायेगी ॥ ३५ ॥ मनुष्योंको समझानेके लिए आपने इस जगतीतलमें जो-जो चरित्र किये हैं, उनपर अच्छी तरह विचार करनेसे निःसन्देह आत्मज्ञानकी प्राप्ति हो सकती है ॥३६॥ सच्चिदानन्दस्वरूप विष्णु भगवान् ही सागर हैं । भगवान् जो पृथ्वीका भार उतारनेकी इच्छा करते हैं, वही उस सागरकी तरंगें हैं । उसका ही एक बिन्दु आत्मांशरूप होकर बाहर आ जाता है । वही आत्मा कहलाता है । उसकी बुद्धिरूपा जननी कौसल्या हैं । शुद्ध और सतोगुणमय अन्तःकरण उस आत्माका पिता होता है, सो साक्षात् श्रीदशरथजी हैं । उस आत्माके चार भेद आपने बतलाये हैं । वे चार भाई राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नरूप होकर विद्यमान हैं । उनमें तुरीयावस्थाको श्रेष्ठ कहा है । सो इन चारों भाइयोंमें बड़े आप ही हैं ॥ ३७–४१ ॥ जाग्रदवस्थास्वरूप लक्ष्मणजी हैं, स्वप्नावस्थास्वरूप भरतजी तथा सुषुप्ति अवस्थास्वरूप शत्रुघ्नजी हैं । हृदयाकाश स्थान जो आपने बतलाया है, वह यही अयोध्या है ॥४२॥ मनोवेगका दूर होना जो आपने कहा, वही मानों विश्वामित्रके यज्ञमें आपकी यात्रा है । मनकी दुर्वृत्तियोंका घात ही ताड़का-वध है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ मनोवेगका भंजन ही जनकपुरमें धनुष टूटना है । वहाँ मेरा पाणिग्रहण होना ही मायाका

भवारण्येऽटनं प्रोक्तमटनं दंडकेऽत्र ते । दंभस्य निग्रहस्तत्र विराधस्यात्र निग्रहः ॥४७॥
आत्मनः पर्णकुटिका पंचभूतात्मकश्च सः । देहोऽयं पंचवटिका विश्रांत्यर्थं तवात्र सा ॥४८॥
कामस्य निग्रहः प्रोक्तः खरस्यात्र विनिग्रहः । क्रोधस्य निग्रहश्चापि दूषणस्यात्र निग्रहः ॥४९॥
लोभस्य मर्दनं तत्र त्रिशिरानिग्रहोऽत्र हि । तत्राशाकृंतनं प्रोक्तं बाणेनात्र विरूपणम् ॥५०॥
तस्याः सूर्पणखायाश्च मोहस्य निग्रहः स्मृतः । मृगमारीचघातोऽत्र शुद्धमायाश्रयस्ततः ॥५१॥
ममाश्रयस्ते वामांगे सात्त्विक्या दंडके वने । रजोरूपा तु या माया जठराग्नौ स्मृता शुभा ॥५२॥
मम रजःस्वरूपायाः प्रवेशश्चानलेऽत्र सः । तामस्याश्चैव मायाया वियोगश्च तदा स्मृतः ॥५३॥
मम तमःस्वरूपाया हरणं रावणेन हि । सुखालाभो महान्क्लेशस्त्वत्तो मद्विरहस्ततः ॥५४॥
शोकवेगस्ततः प्रोक्तः कबंधस्य वधोऽत्र सः । विवेकस्याश्रयस्तत्र सुग्रीवस्याश्रयोऽत्र सः ॥५५॥
भक्त्युद्रेकलाभश्च तव लाभो हनूमतः । अविवेकवधः प्रोक्तश्चात्र बालिवधस्तथा ॥५६॥
उत्साहेन ततः संगः सा विभीषणमैत्रिकी । अज्ञानतरणोपायः सेतुबंधो महोदधौ ॥५७॥
त्रिगुणाश्रयगेहं वै लिंगदेहाह्वये शुभे । त्रिकूटाचलसंस्थायां लंकायां रघुनन्दन ॥५८॥
मदस्य निग्रहस्तत्र कुंभकर्णवधस्त्वया । निग्रहो मत्सरस्यापि मेघनादवधोऽत्र सः ॥५९॥
तत्राहंकारघातश्च रावणस्य वधस्त्वया । मायानामैक्यता चापि त्रिविधा या ममैक्यता ॥६०॥
वियोगो लिंगदेहस्य लंकात्यागस्त्वयाऽत्र सः । हृदयाकाशगमगनमयोध्यागमनं पुनः ॥६१॥
आनंदैकसुखं तत्र राज्यभोगस्त्वया सोऽत्र हि । मायात्यागस्ततश्चैव वाल्मीकेराश्रमे मम ॥६२॥
त्यागोऽग्र भावि श्रीराम त्वया सोऽत्र प्रकाशितः । सात्त्विक्या ग्रहणं यच्च पुनर्मे ग्रहणं स्मृतम् ॥६३॥
सात्त्विक्या मायया सार्द्धं तवोद्योगो मया सह । ततश्च हृदयाकाशं महाकाशे विलापयेत् ॥६४॥

योग है ॥ ४५ ॥ परशुरामका दर्पभञ्जन ही पूर्वसंस्कारका निग्रह है। इसके अनन्तर कुबुद्धिरूपिणी कैकेयीके वरदानसे आपका दण्डकारण्यमें घूमना ही भवारण्यमें भटकना है। दम्भका रोक लेना ही विराधवध है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ पञ्चभूतात्मक आत्मरूपिणी पर्णकुटी जो आपने बतलायी, वह यह शरीर ही है। जो आपके विहार करनेके लिए एक उपयुक्त स्थान है ॥ ४८ ॥ कामका निग्रह करना ही खर राक्षसका वध है और क्रोधका निग्रह दूषणका वध है ॥४९॥ लोभका निग्रह त्रिशिराका वध रहा गया है। आशाका विच्छेद जो आपने बतलाया, वह ही सूर्पणखाका विरूप करना है। मारीच मृगका वध करना ही मोहका निग्रह है। दण्डकवनमें आपने जो सत्त्वगुणमयी मुझको अपने वामभागमें रहनेको कहा था, वह ही शुद्ध मायाका आश्रय है। रजोगुण-रूपसे मेरा अग्निमें प्रवेश करना ही तामसी मायाका वियोग है। तमोगुणरूपसे मेरा रावणके द्वारा हरण होना ही सुखाभाव है। तुम्हारा-हमारा वियोग होना ही महाक्लेश है ॥ ५०-५४ ॥ इसके बाद कबन्धका वध करना ही शोकभङ्ग है। सुग्रीवकी मित्रता ही आश्रय है ॥ ५५ ॥ भक्तिके उद्रेकका लाभ आपको हनुमान्‌जीका मिलना है। बालिका वध करना ही अज्ञानका वध करना है ॥ ५६ ॥ उसके बाद विभीषणके साथ मैत्री होना ही उत्साहका सङ्ग है। समुद्रमें सेतुबन्धन ही अज्ञानसे तरनेका उपाय है ॥ ५७ ॥ आपका त्रिकूट पर्वतपर डेरा डालना ही लिंगात्मक देहमें त्रिगुणका आश्रय करना है ॥ ५८ ॥ कुम्भकर्णका वध ही मदका निग्रह है। मेघनादका वध मत्सरका निग्रह है ॥ ५९ ॥ आपने जो रावणका वध किया है, वह ही अहंकारका नाश है। मायाकी एकता जो आपने कही, वह हम तीनोंका एकत्र हो जाना है ॥ ६० ॥ लङ्काको त्यागना ही लिंगदेहका वियोग है। फिर अयोध्याके लिए पयान करना ही हृदयाकाशका गमन है ॥ ६१ ॥ आपका राज्यभोग करना ही एकमात्र आनन्दका अनुभव करना है। फिर मायाका त्याग जो आपने बतलाया, सो भविष्यमें वाल्मीकिके आश्रममें मेरा त्याग देना ही होगा। सात्त्विकी मायाका ग्रहण जो आपने बतलाया, सो मेरा पुनर्ग्रहण कर लेना होगा ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ सात्त्विकी मायाके साथ उद्योग जो आपने कहा, सो मेरे साथ आपका

अयोध्यानगरीमग्रे वैकुण्ठं प्रति नेष्यसि । प्रवेशनं सागरे हि सच्चिदानन्दसंज्ञके ॥६५॥
नररूपं परित्यज्य विष्णुरूपप्रदर्शनम् । नृणां त्वया सैव मुक्तिः सायुज्यात्मन ईरिता ॥६६॥
एवं यद्यत्त्वया राम कृतं कर्म शुभाशुभम् । तत्सर्वं जनबोधाय सर्वेषां च हिताय हि ॥६७॥
कर्तव्यमप्यकर्तव्यं कर्मातीतस्य किं तव । निर्गुणस्यात्मरूपस्य सच्चिदानन्दरूपिणः ॥६८॥
इत्थं त्वयोपदिष्टा मे शुभा संज्ञानपेटिका । अहं तस्या विचारेण जीवन्मुक्ता न संशयः ॥६९॥
देहे रामायणं सर्वं यत्त्वया मम दर्शितम् । पञ्चदशश्लोकरत्नैः कण्ठे तद्धारवत्कृतम् ॥७०॥
श्लोकरत्नमयं यो वै कण्ठे हारं बिभर्ति हि । जीवन्मुक्तः क्षणादेव भविष्यति नरोत्तमः ॥७१॥
देहरामायणं नाम राम यत्कथितं त्वया । नेदृशं कथितं केन न कोऽप्यग्रे वदिष्यति ॥७२॥
मम प्रीत्योपदिष्टं हि त्वयैतद्रघुनन्दन । इत्थं कोऽपि न जानाति ब्रह्मादीनामगोचरम् ॥७३॥
गुह्यं रम्यं सुदुर्बोधं स्वल्पं ज्ञानप्रकाशितम् । देहरामायणं चैतच्छ्रवणात्पातकापहम् ॥७४॥
इति सीतावचः श्रुत्वा प्रहस्य राघवोऽब्रवीत् । विदेहतनये साध्वि धन्याऽसि गजगामिनि ॥७५॥
सम्यग्विचारिता बुद्ध्या त्वया सज्ञानपेटिका । किंचिन्न्यूनं त्वया नैव दृष्टमस्यां यथास्थितम् ॥७६॥
बुद्ध्या ज्ञानं मम ज्ञानं मोहजालनिकृन्तनम् । कथनीयमिदं देहरामायणं न कस्यचित् ॥७७॥
एतद्गुह्यतमं प्रोक्तं तव प्रीत्या विदेहजे । दांभिकाय न दातव्यं नास्तिकाय शठाय च ॥७८॥
अभक्ताय द्विजद्वेष्ट्रे परदाररताय च । मलिनायातिक्रूराय निंदकाय जडाय च ॥७९॥
कलौ चैतत्तु वै गुह्यं भविष्यति न संशयः । सहस्रेषु नरः कश्चिज्ज्ञास्यत्येतन्न संशयः ॥८०॥
सर्ववेदांतसारं हि मया ते समुदीरितम् । देहरामायणं चैतद्भुक्तिमुक्तिप्रदं वरम् ॥८१॥

विहार करना है। उसके बाद आपने हृदयाकाशको महाकाशमें मिला देनेको जो कहा है, वह ही आपका अयोध्याको अपने साथ वैकुण्ठ लोकमें ले जाना होगा। इस स्वरूपका परित्याग करके फिर अपने विष्णुस्वरूपको धारण करना ही सच्चिदानंदसंज्ञक सागरमें गोते लगाना होगा ॥६४॥६५॥ नररूपको छोड़कर विष्णुरूप दिखाना ही आत्माकी सायुज्य मुक्ति है ॥ ६६ ॥ इस प्रकार हे रामचन्द्रजी ! आपने इस संसारमें जो जो कर्म किये हैं, वे सब लोगोंको ज्ञानी बनाने और उनका कल्याण करनेके लिए ही हैं ॥ ६७ ॥ इसके सिवाय आप जो कुछ भी कर चलें, वह ही ठीक है। अकर्त्तव्य भी आपके लिये कर्तव्य ही है। क्योंकि आप कर्मसे अतीत हैं, निर्गुण हैं, सच्चिदानन्दरूप हैं ॥ ६८ ॥ इस प्रकार आपके द्वारा उपदिष्ट यह ज्ञानकी पिटारी है। इसपर बार-बार विचार करनेसे मैं तो जीवन्मुक्त हो गयी। इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥ ६९ ॥ इस शरीरमें आपने जो १५ श्लोकोंके रामायणका उपदेश दिया, उसे मैंने हारकी तरह अपने गलेमें डाल दिया है ॥ ७० ॥ इन श्लोकरूपी रत्नोंकी मालाको जो प्राणी अपने गलेमें डालेगा, वह पुरुषश्रेष्ठ क्षणमात्रमें जीवन्मुक्त हो जायगा ॥ ७१ ॥ हे राम ! आपने यह जैसा देहरामायण कहा है, वैसा न अब तक किसीने कहा है और न भविष्यमें कोई कहेगा ॥ ७२ ॥ हे रघुनन्दन ! इसे आपने केवल मेरे अनुरागसे प्रकट किया है। इस देहरामायणको कोई भी नहीं जानता। क्योंकि यह ब्रह्मादिक देवताओंको भी अलभ्य है ॥ ७३ ॥ यह गूढ़, रम्य और दुर्बोध ज्ञान थोड़ेमें आपने मुझे बतलाया है। इस देहरामायणके श्रवणसे सब पातक नष्ट हो जाते हैं ॥ ७४ ॥ इस तरह सीताकी बात सुनकर रामचंद्रजीने हँसकर कहा—हे विदेहतनये ! तुम साध्वी हो, धन्य हो। तुमने मेरी ज्ञानकी पिटारीको खूब देखा और इसका जो वास्तविक स्वरूप था, सो भी जान लिया। बुद्धिदृष्टिसे देखनेवालोंके लिये यह देहरामायण मोहका नाश करनेवाला है। यह रामायण जैसे तैसे मनुष्योंसे कहनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ ७५–७७ ॥ हे प्रिये सीते ! तुम्हारे अनुरागसे ही मैंने आज इसे तुम्हें बतलाया है। इसे पाखण्डी, नास्तिक तथा दुष्ट पुरुषोंसे मत कहना ॥ ७८ ॥ उन्हें भी न बतलाना, जो ब्राह्मणोंसे द्वेष करते हैं, दूसरेकी बहू-बेटियोंको बुरी दृष्टिसे देखते हैं, जो मलिन प्रकृतिके क्रूर, निन्दक एवं जड़ स्वभावके हैं ॥७९॥ कलियुगमें यह गुप्त रहेगा। हजारों प्राणियोंमें एक-आध मनुष्य ही इसे जान सकेंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ८० ॥ यह समस्त

इत्युक्त्वा राघवः सीतां पर्यंके रत्नमण्डिते । सुष्वाप सीतया रात्रौ दासीभिर्वीजितः सुखम् ॥८२॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विलासकाण्डे
देहरामायणं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः

(सीताके विविध अलङ्कारोंका वर्णन)

श्रीरामदास उवाच

चतुर्नाड्यवशिष्टायां निशायां रघुनायकम् । उद्बोधनार्थं संप्राप्ता रतिशालाबहिः स्थिताः ॥ १ ॥
वन्दिनो मागधाः सूता नर्त्तक्यश्च नटादयः । वादयामासुर्वाद्यानि ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ २ ॥
जगुर्मङ्गलगीतानि स्तोत्राणि विविधानि च । प्राभातिकीं स्तुतिं प्रोचुः कलकण्ठैर्मनोरमैः ॥ ३ ॥

विघ्नेश्वरः सकलविघ्नविनाशदक्षो दक्षात्मजा भगवती हि सरस्वती च ।
दम्भाष्टभैरवगणा नव दिव्यदुर्गा देव्यः सुरास्तु नृपते तव सुप्रभातम् ॥ ४ ॥
भानुः शशी कुजबुधौ गुरुशुक्रमन्दा राहुः सकेतुरदितिर्दितिरादितेयाः ।
शक्रादयः कमलभूः पुरुषोत्तमेन्द्रोः रुद्रः करोतु सततं तव सुप्रभातम् ॥ ५ ॥
पृथ्वी जलं ज्वलनमारुतपुष्कराणि सप्ताद्रयोऽपि भुवनानि चतुर्दशैव ।
शैला वनानि सरितः परितः पवित्रा गङ्गादयो विदधतां तव सुप्रभातम् ॥ ६ ॥
दिक्चक्रमेतदखिलं दिगिभा दिगीशा नागाः सुपर्णभुजगा नगवीरुधश्च ।
पुण्यानि देवसदनानि विलानि दिव्यान्यव्याहतं विदधतां तव सुप्रभातम् ॥ ७ ॥
वेदाः षडङ्गसहिताः स्मृतयः पुराणं काव्यं सदागमपथो मुनयोऽपि दिव्याः ।
व्यासादयः परमकारुणिका ऋषीणां गोत्राणि वै विदधतां तव सुप्रभातम् ॥ ८ ॥

वेदान्तका निचोड़ मैंने तुम्हें बतला दिया । यह देहरामायण भुक्ति तथा मुक्ति दोनोंका फल देनेवाला है ॥ ८१ ॥ इतना कहकर रामचन्द्रजी सीताके साथ रत्नजटित पलङ्गपर सो गये और दासियाँ पंखा झलने लगीं ॥ ८२ ॥
इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'-भाषाटीकासमन्विते विलासकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

श्रीरामदासजी कहने लगे—जब चार घड़ी रात बाकी रह जाती थी, तभी भगवान्‌को जगानेके लिए बंदीजन, मागध, सूत, नाचनेवाली वेश्याएँ और नट आदि लोग रतिशालाके बाहर आकर बाजे बजाते थे और नर्तकियाँ नाचती थीं ॥ १ ॥ २ ॥ अन्य लोग भी मङ्गल-गायन, विविध प्रकारके स्तोत्र पाठतथा अपने कोमल कण्ठसे प्रातःकालकी स्तुतियाँ किया करते थे । वे कहते थे—॥ ३ ॥ हे नृपते! समस्त विघ्नसमूहको नष्ट करनेमें निपुण विघ्नेश्वर (गणेशजी), दक्षकुमारी भगवती पार्वती, सरस्वती, अभिमानकी मूर्ति अष्टभैरव-गण, नौ दिव्य दुर्गाएँ तथा अन्यान्य देवतागण ये सब आपका प्रभात मङ्गलमय करें ॥ ४ ॥ सूर्य, चंद्रमा, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु, दिति तथा अदितिके पुत्र इंद्रादि देवता, ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये सब आपका प्रभात मङ्गलमय करें ॥ ५ ॥ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, तड़ाग, सप्त पर्वत, चतुर्दश भुवन, शैल, वन और भुवनविख्यात गङ्गा आदि नदियाँ आपका प्रभात मङ्गलमय करें ॥ ६ ॥ समस्त दिक्चक्र (दसों दिशाएँ), दिग्गज, दिक्पाल, नाग, सुपर्ण, पर्वतोंकी लताएँ, पवित्र देवालय और गिरिकन्दराएँ ये सब सर्वदा आपका प्रभात मङ्गलमय करें ॥ ७ ॥ षडङ्ग सहित चारों वेद, स्मृति, पुराण, काव्य, अच्छे-अच्छे शतपथ ब्राह्मण आदि ग्रन्थ, व्यास आदि दिव्य मुनिगण तथा ऋषियोंके गोत्र आपका प्रभात मङ्गलमय करें ॥ ८ ॥

इति बंदिजनैः सूतैः स्तोत्रैर्गीतादिभिः स्तुतः । नानापक्षिसमूहैश्च पूर्वोक्तैः पंजरस्थितैः ॥ ९ ॥
स्तुतो वादित्रनिनदैर्नववाद्यस्वनैरपि । सुप्रबुद्धो बभूवाथ रामचन्द्रः ससीतया ॥१०॥
आदौ प्रबुद्धा सा सीता पश्चाद्बुद्धो रघूत्तमः । रामः सुरान्मुनींस्तातं मातरं सरयूं गुरुम् ॥११॥
चिंतामणिं कामधेनुं चिंतयामास चेतसि । ततः सीताऽपि सा दुर्गां गंगां वाणीं रघूत्तमम् ॥१२॥
चिंतयामास कौसल्यां गुरुपत्नीं स्वमातरम् । ततो नत्वा रामचन्द्रं विनयावनता स्थिता ॥१३॥
आवश्यकं तु संपाद्य कृत्वा शौचविधिं क्रमात् । दंतशुद्धिं चकाराथ रामचन्द्रः सविस्तरम् ॥१४॥
आवश्यकं तु संपाद्य कृत्वा शौचविधिं क्रमात् । हुत्वाऽग्निहोत्रविधिना कृत्वा देवार्चनं गृहे ॥१५॥
ददौ दानान्यनेकानि ब्राह्मणेभ्यो यथाक्रमम् । एतस्मिन्नंतरे स्नात्वा सीता देवी प्रपूज्य च ॥१६॥
देवानग्नीन्द्विजान्नत्वा श्वश्रूर्नत्वा यथाक्रमम् । ततो नत्वा रामचन्द्रं तत्पार्श्वे यत्नतः स्थिता ॥१७॥
अथ रामो वसिष्ठस्य मुखात्पौराणिकीं कथाम् । सीतया मातृभिर्युक्तो बंधुभिश्च सुहृज्जनैः ॥१८॥
सम्यक् श्रुत्वैकचित्तेन पूजयामास तं गुरुम् । ततो नत्वा गुरुं रामो गुरुपत्नीं च मातरम् ॥१९॥
सर्वा मातृश्च विप्रांश्च पंडितान् वैदिकान् मुनीन् । योगनिष्ठांस्तपोनिष्ठान् विप्रान् ज्योतिर्विदस्तथा॥२०॥
मीमांसकांस्तार्किकांश्च मंत्रशास्त्रविशारदान् । धर्मशास्त्रविदश्चैव वंद्यानन्यान् वयोधिकान् ॥२१॥
पूजयामास श्रीरामः सीतया प्रणनाम तान् । अथ सीता हेमपात्रे पूजोपकरणानि सा ॥२२॥
गृहीत्वा स्वसखीभिश्च नत्वा सुरभिमर्चयत् । नानोपचारैः सम्पूज्य पक्वान्नैर्नवनिर्मितैः । २३॥
विचित्रैः पायसाद्यैश्च सा तां धेनुमतोषयत् । ततः प्रदक्षिणां कृत्वा प्रार्थयामास जानकी ॥२४॥
कामधेनो नमस्तुभ्यं पक्वान्नादीनि वेगतः । दिव्यान्नानि भूसुरेभ्यो रामादिभ्यस्त्वमर्पय ॥२५॥
इति सा प्रार्थनां कृत्वा कामधेनोस्तु जानकी । तदधो रुक्मपात्राणि स्थापयामास कोटिशः ॥२६॥

इस प्रकार बहुतसे बन्दीजन, मागध, सूत आदि तथा पालतू पक्षियोंके मृदु वचनों द्वारा जगाये जानेपर सीताके साथ-साथ रामचन्द्रजी सोकर उठ जाते थे ॥ ९ ॥ १० ॥ पहले सीताजी उठतीं, फिर रामचन्द्रजी जागते थे। सोकर उठनेपर रामचन्द्रजी देवताओंको, मुनियोंको, पिताको, माताको, सरयू, गुरु (वसिष्ठ), चिन्तामणि और कामधेनुको मन ही मन स्मरण करते थे। महारानी सीताजी भी दुर्गा, गङ्गा, सरस्वती, रघूत्तम (दशरथजी), अपनी माता, गुरुपत्नी अरुन्धती और अपनी सास कौसल्या आदिका सवेरे सो उठकर स्मरण किया करती थीं। इसके अनन्तर नम्रतापूर्वक रामचन्द्रजीको प्रणाम करके वे अपने नित्यकर्ममें लग जाती थीं ॥ ११-१३ ॥ उधर रामजी भी शौचादि कृत्योंसे निवृत्त होकर अच्छी तरह दातौन करते थे ॥ १४ ॥ तदनन्तर रामतीर्थपर जाकर स्नानादि नित्यनियम करके घरपर लौट आते और अग्निहोत्रविधिके साथ देवताओंका पूजन करते थे ॥ १५ ॥ तब ब्राह्मणोंको दान देते थे। इसी बीच सीताजी भी स्नान करके देवीपूजनसे निवृत्त होकर देवता, अग्नि, ब्राह्मणों और कौसल्या आदि सासुओंको क्रमशः प्रणाम करनेके पश्चात् रामचन्द्रजीकी पदवन्दना करतीं और उनके पास जा बैठती थीं ॥ १६ ॥ १७ ॥ तदनन्तर रामचन्द्रजी गुरु वसिष्ठके मुखसे पुराणोंकी कथाएँ सुनते थे। उस समय सब माताएँ, भाई तथा मित्रमण्डल रामचन्द्रजीके साथ ही रहता था ॥ १८ ॥ खूब सावधानीके साथ कथा सुनकर राम गुरुवसिष्ठकी पूजा करते थे। फिर गुरु, गुरुपत्नी तथा अपनी माताओंको प्रणाम करके माताओं, ब्राह्मणों, पंडितों, वैदिकों, मुनियों, योगनिष्ठ तथा तपोनिष्ठ, ब्राह्मणों, ज्योतिषियों, मीमांसकों, तार्किकों, मंत्रशास्त्रमें निपुण विद्वानों और वयोवृद्ध धर्मशास्त्रियोंकी सीताके साथ-साथ रामचन्द्रजी विधिवत् पूजा करते थे। इसके पश्चात् सीताजी एक सुवर्णके थालमें पूजनकी सामग्रियाँ लेकर ॥ १९-२२ ॥ सखियोंके साथ सुरभी (कामधेनु) की पूजा करती थीं और अनेक पकवान तथा विचित्र रीतिसे तैयार किये गये हविष्यान्नोंको खिलाकर उसे प्रसन्न करती थीं। फिर प्रदक्षिणा करके इस प्रकार कामधेनुकी स्तुति करती हुई कहती थीं—॥ २३ ॥ २४ ॥ हे कामधेनो ! आपको

दिव्यान्नैः परिपूर्णानि चकार सुरभिस्त्वपि ।
ततः शीघ्रं हेमपात्रैर्गृह्यान्नानि पृथग्जवात् ॥
परिवेषणार्थं सन्तुष्टा ययौ नूपुरगर्जिता ॥२७॥

एतस्मिन्नन्तरे रामश्चोपाहारार्थमादरात् । विप्रानिष्टान्मन्त्रिणश्च समाहूय सहस्रशः ॥२८॥
उपाविशद्भोजनस्य शालायां तैः समन्वितः । रुक्मपीठे तु सर्वे ते नेमिरेत्रोपमाः स्थिताः ॥२९॥
पीतकौशेयवस्त्राद्यैर्भूषिता रुक्ममण्डनैः । पूजिता राघवेणापि गन्धमाल्यादिभिर्मुदा ॥३०॥
स्त्रीभी रुक्मत्रिपदासु रुक्मपात्राणि च पृथक् । रंगावलीविचित्रायां भूमौ न्यस्तानि तत्पुरः ॥३१॥
हेमोद्भवानि पानीयपात्राण्यपि पृथक् पृथक् । सोमपात्राणि चित्राणि रत्नदीपयुतानि च ॥३२॥
स्थापयामासुः श्रीरामबन्धुपत्न्यस्त्वरान्विताः । एतस्मिन्नन्तरे सर्वैः श्रुतो मंजुलनिःस्वनः ॥३३॥
नूपुराणां किंकिणीनां कंकणानां मनोरमः । रत्नमौक्तिकमालानां घर्षणादुत्थितो महान् ॥३४॥
तं मंजुलस्वनं श्रुत्वा कस्यायं श्रूयते स्वनः । इति संदिग्धचित्तास्ते व्यग्रनेत्रैरितस्ततः ॥३५॥
अपश्यन् ब्राह्मणाद्याश्च तावत्सीतां व्यलोकयन् । तडित्पुंजोपमां दिव्यां शतकोटिरविप्रभाम् ॥३६॥
यस्यांगुलिषु सर्वत्र पादयोर्विविधानि च । मत्स्यकच्छपनक्रादिचिह्नितान्युज्ज्वलानि च ॥३७॥
ददृशू रत्नचित्राणि हैमान्याभरणानि ते । तत ऊर्ध्वं किंकिणीनां पादयोर्नूपुराणि च ॥३८॥
शृंखला विविधा रम्यास्तथा गुर्जरदेशजाः । नानानूपुरभेदाश्च कंकणान्युज्ज्वलानि च ॥३९॥
रत्नकंकणगर्भाणि दिव्यरुक्कोद्भवानि च । ददृशुस्ते हि सीताया माणिक्यचित्रितानि च ॥४०॥
तस्याः कट्यां ददृशुस्ते पीतकौशेयमुज्ज्वलम् । मुक्ताजालरुक्मतंतुपुष्पराजिविराजितम् ॥४१॥
नवीनं गतिचांचल्यात्कृतमंजुलनिःस्वनम् । आदर्शबिंबसंयुक्तं सुगन्धामोदमोदितम् ॥४२॥
वस्त्रोपरि ददृशुस्ते रशनां रुक्मतन्तुजाम् । रत्नकङ्कणगर्भाभिः किंकिणीभिर्विराजिताम् ॥४३॥

नमस्कार है। कृपा करके आप साधु-ब्राह्मणोंके लिए पक्वान्न तथा दिव्यान्नका प्रबन्ध कर दें। जानकीजी इस प्रकार प्रार्थना करके करोड़ों सुवर्णके पात्र कामधेनुके पास मँगवाकर रखवा देती थीं और कामधेनु उन सबको विविध प्रकारके पकवानोंसे भर दिया करती थीं। उन्हीं हेमपात्रोंमेंसे सब पदार्थ ले-लेकर युवतियां नूपुरके शब्दसे उस यज्ञमण्डपको शब्दायमान करती हुई अभ्यागतोंको परोसती थीं ॥ २५–२७ ॥ इसके अनन्तर रामचन्द्रजी अपने साथ हजारों ब्राह्मणों तथा हित-मित्रोंको सादर बुलाकर पाकशालामें सुवर्णके पीढ़ोंपर बिठ- समय पीले कौशेय वस्त्र तथा सुवर्णसे विभूषित विप्रगण एवं मित्रमण्डलका रामचन्द्रजी अनेक उपचारोंसे पूजन करते थे ॥ २८–३० ॥ वहाँ सुवर्णकी तिपाइयोंपर घड़ोंमें जल भर-भरकर रक्खा था। पास ही जल पीनेके लिए छोटे-छोटे बहुतसे सुवर्णके बर्तन रक्खे हुए थे। उनको झटपट उठा-उठाकर रामचन्द्रजीकी भ्रातृवधुओंने लाकर उनके सामने रख दिया। इतनेमें सबको एक मनोहर ध्वनि सुनाई दी। जो नूपुर, किंकिणी और कंकणके संघर्षसे निकला हुआ शब्द मालूम पड़ता था ॥ ३१–३४ ॥ उस मञ्जुल शब्दको सुनकर यह कैसा शब्द सुनाई दे रहा है, इस तरह सोचते हुए व्यग्र नेत्रोंसे लोग इधर-उधर देखने लगे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ कुछ देर बाद लोगोंने सीताजीको आते देखा। जो अनेक विद्युत्पुञ्ज एवं सैकड़ों सूर्यकी भाँति प्रकाशमयी थीं। जिनके पाँवोंकी अंगुलियोंमें मछली-कछुए आदिके आकारवाले देदीप्यमान आभूषण पड़े थे ॥ ३७ ॥ रत्नोंकी चमकसे चित्र-विचित्र सुवर्णके आभूषण सुशोभित हो रहे थे। किंकिणीके ऊपर दोनों पैरोंमें नूपुर थे। उसके ऊपर विविध प्रकारकी सुन्दर मेखलायें पड़ी थीं। अनेक तरहके नूपुर और नाना प्रकारके उज्ज्वल कंकण हाथोंमें पड़े हुए थे। सीताजीकी कमरमें एक रेशमी वस्त्र था। जिसमें मोतियोंकी झालर लगी हुई थी और सुवर्णके तारोंसे फूल-पत्तीकी चित्रकारी बनी हुई थी ॥३८–४१॥ गतिकी चंचलतावश उसमेंसे एक मधुर ध्वनि निकल रही थी। उनकी साड़ीमें जगह-जगह मयूर, सिंह, वृष,

केकिसिंहवृषव्याघ्रमृगचित्रविचित्रिताम् । पीतरक्तहरिन्नीलकृष्णमाणिक्यमण्डिताम् ॥४४॥
तत ऊर्ध्वं ददृशुस्ते पदकान्युज्ज्वलानि हि । रंभाफलोपमान्येव हैमान्याभरणानि च ॥४५॥
सकांचनशृंखलानि काचद्रवयुतानि च । नानारत्नविचित्राणि मुकुरैर्मंडितान्यपि ॥४६॥
नानामाणिक्ययुक्तानि दीप्तिमन्त्युज्ज्वलानिहि ततो ददृशुस्ते दिव्यान् रुक्महारान् विचित्रितान् ॥ ४७॥
नवरत्नयुतान्हारान्मुक्ताहारांश्च शृंखलाः । मूर्तिमाला रुक्मजाश्च यवमाला विचित्रिताः । ४८॥
पुष्पमालाः कांचनजाः सारिका रत्नमण्डिताः रुक्मगुञ्जान्विता माला हेमधात्रिफलान्विताः ॥४९॥
प्रवालमणिमुक्तासम्मिश्रिताश्चित्रचित्रिताः । चंपसूक्ष्मकलिकया सदृशा हेममालिकाः ॥५०॥
कण्ठे मंगलसूत्रं च पेटिका रत्नभूषिता । कांचनानां सुसूक्ष्माणां मणीनां विविधानि च ॥५१॥
गुच्छैः कण्ठभूषणानि मुक्तागुच्छयुतान्यपि । ददृशुस्ते हि सीतायाः कण्ठे हैमान्यनेकशः ॥५२॥
रशनासदृशान्येव ग्रीवायां भूषणान्यपि । प्रवालमणिमाणिक्यरचितान्युज्ज्वलानि च ॥५३॥
मुक्तागुच्छान् काचगुच्छान् मणिगुच्छैर्विचित्रितान् ।
प्रवालमणिगुच्छांश्च रत्नपुष्पविगुंफितान् ॥५४॥
ततो ददृशुस्ते सर्वे मैथिलीकुचकञ्चुकीम् । हेमतन्तुभवां चित्रां मुक्तामाणिक्यगुंफिताम् ॥ ५५॥
आदर्शबिंबसंयुक्तां पुष्पराजिविराजिताम् । मयूरशुकवृक्षैश्च लवंगैस्तन्तुनिर्मितैः ॥ ५६ ॥
चित्रितां श्रमघर्मेणार्द्रां संलग्नां दृढं तनौ । ततो ददृशुर्भुजयोः केयूरे रत्नमंडिते ॥५७॥
वज्रकंकणसादृश्ये हेममाणिक्यनिर्मिते । रत्नचित्रविचित्राश्च भुजयोः पेटिकाः शुभाः ॥५८॥
हेमतन्तुभवैर्लंबमानगुच्छैः सुमण्डिताः । प्रवालमणिमुक्तानां नानागुच्छैर्युता अपि ॥५९॥
तदधः करयोः सर्वे ददृशुर्भूषणानि ते । रत्नमाणिक्यमुक्ताभिश्चित्रितौ हेमसम्भवौ ॥६०॥
करचूडौ दीप्तिमंतौ हेमपुष्पादिचित्रितौ । काचकंकणध्यस्थौ चन्द्रसूर्योपमौ त्विषा ॥६१॥

व्याघ्र और मृग आदिके चित्र बने थे। पीले, लाल, हरे, नीले और काले मणि स्थान-स्थानपर जड़े हुए थे ॥ ४२-४४ ॥ उसके ऊपर लोगोंने देखा कि भाँति-भाँतिके आभूषण पड़े हैं । कहीं सोनेकी जंजीरें हैं, कहीं काँचका काम बना है और कहीं तरह-तरहके रत्नोंकी सजावट है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ कई तरहके मणियोंके आभूषण देदीप्यमान हो रहे हैं । नौ रत्नोंसे जड़ा हुआ हार है। मोतियोंकी माला है। सोनेकी जंजीरें हैं । मोतीमाला, सुवर्ण एवं यवकी मालायें पड़ी हुई हैं ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ फूलोंकी माला, कञ्चनकी माला, कञ्चन और गुञ्जाकी मिश्रित माला, सुवर्णनिर्मित आँवलेकी माला, प्रवाल तथा अन्यान्य मणियोंसे मिश्रित माला, चंपाकी कलीके समान बनी हुई सुवर्णकी माला, गलेका मंगलसूत्र, रत्न-जटित पेटी, सुवर्ण तथा सूक्ष्म मणियोंके बने हुए गुच्छे और मोतियोंके झुब्बोंको लोगोंने सीताके गलेमें देखा ॥ ४९-५२ ॥ ठीक करधनीके समान ही सीताकी ग्रीवाके आभूषण भी दीख पड़ते थे। उनमें भी प्रवाल और मणि-माणिक्य आदि जड़े थे। मोतियोंके गुच्छे, काँचके गुच्छे और रत्नोंके गुच्छोंसे वे रंग-बिरंगे मालूम होते थे । इसके अनन्तर लोगोंने सीताजीकी चोली देखी। वह भी सुवर्णके तारोंसे बनी, मुक्ता-मणि-माणिक आदिसे सजी और फूलोंसे गुम्फित थी। जिसमें मयूर और तोतोंके चित्र बने थे, ऐसे वृक्षोंसे चित्रित एवं स्वेदबिन्दुओंसे भींगी तथा अंगमें चिपटी हुई वह चोली थी। इसके बाद सीताके रत्नमण्डित बाजूबन्दपर लोगोंकी दृष्टि पड़ी ॥ ५३-५७ ॥ वह भी विविध प्रकारके रत्नोंसे जटित थी और उनकी आभासे चित्र-विचित्र मालूम देती थी। फिर जिसमें जरीके काम किये हुए थे, सीताकी उस कमरपेटिकापर लोगोंकी दृष्टि पड़ी ॥ ५८ ॥ उसमें भी सुवर्णके तारोंके बड़े-बड़े गुच्छे लटक रहे थे । जगह-जगहपर प्रवाल-मणि-मुक्ता आदिकोंके गुच्छे लटके दीख रहे थे ॥ ५९ ॥ फिर दोनों हाथोंमें जो और आभूषण थे, उन्हें लोगोंने देखा। वे भी रत्न-माणिक और मोती आदिसे चित्रित सुवर्णके बने थे ॥ ६० ॥ हाथोंके दोनों कंकण सुवर्णके पुष्पसे सजे हुए

तद्ध्वाधः कंकणानि हेमजानि घनानि च । रत्नमाणिक्यमुक्ताभिश्चित्रितान्युज्ज्वलानि च ॥६२॥
प्रवालमणिमुक्तानां करहारादिचित्रितान् । करयोः सारिके दिव्ये ह्यूर्ध्वाधो रत्नमण्डिते ॥६३॥
तद्ध्वं कंकणान्येव पुष्पवल्ल्यंकितानि हि । दंतराज्युपमादीनि रत्नहेमोद्भवानि च ॥६४॥
अंगुलीषु ददृशुस्ते मुद्रिका रुक्मनिर्मिताः । रत्नमाणिक्यमुक्ताभिर्नीलमारकतैरपि ॥६५॥
प्रवालचन्द्रकांतैश्च सूर्यकांतैर्विचित्रिताः । नानापुष्पोपमा दिव्याः प्रतिपर्वसमाश्रिताः ॥६६॥
ततो ददृशुः सीताया रम्यं घ्राणेऽतिसोज्ज्वलम् । दिव्यं मयूरं चित्रं च वररुक्मविनिर्मितम् ॥६७॥
मणिमाणिक्यमुक्ताभिर्वररत्नैः सुमण्डितम् । लंबितैर्मौक्तिकादीनां वरगुच्छैः सुवेष्टितम् ॥६८॥
ततो ददृशुः सीतायाः कर्णयोर्भूषणानि ते । मकरध्वजसादृश्ये ताटंके रत्नचित्रिते ॥६९॥
मणिमाणिक्यमुक्ताभिर्गुम्फिते सोज्ज्वले वरे । रत्नपुष्पादिभिश्चित्रैश्चित्रिते रविभास्वरे ॥७०॥
ततो भ्रमरिके दिव्ये रुक्मरत्नविचित्रिते । मुक्ताभिर्गुम्फिते रम्ये हेमपुष्पाणि वै तथा ॥७१॥
कर्णयोः शृंखलाश्चित्रा ददृशू रुक्मनिर्मिताः । मुक्तागुच्छैर्गुम्फिताश्च रत्नमाणिक्यमण्डिताः ॥७२॥
आकर्णाभ्यां च सीमन्तपर्यन्तं भालपार्श्वयोः । हारवद्रुक्मजालानि माणिक्यसहितानि हि ॥७३॥
मुक्तागुच्छैर्गुम्फितानि वैदूर्यचित्रितान्यपि । ततस्तद्ध्वं सीताया ददृशुः शिरसि द्विजाः ॥७४॥
सीमन्तस्योत्तरे याम्ये केशेषु शशिभास्करौ । रुक्मजौ रत्नवैदूर्यमणिमुक्ताविचित्रितौ ॥७५॥
नीलकाश्मीरकांतैश्च विद्रुमैरतिशोभितौ । चन्द्रसूर्याविव स्वीयभासा दीपयतो दिशः ॥७६॥
निटिले तिलकं रत्नमणिमुक्ताविराजितम् । हैमं दिव्यमुज्ज्वलं च कोटिसूर्यसमप्रभम् ॥७७॥
ततो ददृशुः सीमत मुक्ताहारैर्महोज्ज्वलम् । नानारत्नविचित्रं च सवेणितिलकावधि ॥७८॥
चूडामणिं च ददृशुस्ते जनकेन समर्पितम् । नानारत्नविचित्रं च मुक्तागुच्छविराजितम् ॥७९॥

थे। काँचकी बनी हुई चूड़ियोंके मध्यमें वे सूर्य और चन्द्रमाकी नाईं मालूम पड़ते थे ॥ ६१ ॥ उनके ऊपर-नीचे सुवर्णके मोटे-मोटे कड़े पड़े थे। वे भी नाना प्रकारके रत्नोंसे विचित्र दीप्ति धारण कर रहे थे ॥ ६२ ॥ उन्हींके ऊपर प्रवाल-मणि मुक्ता आदि रत्नोंसे एक-एक दिव्य सारिकाएँ बनी थीं ॥ ६३ ॥ उनके भी ऊपर रत्ननिर्मित फूलों और लताओंसे जटित कंकण पड़े थे ॥ ६४ ॥ उँगलियोंमें सुवर्णकी बनी रत्न, माणिक्य, नीलम, मरकत मणि आदिसे जटित अनेक अंगूठियाँ थीं। वे भी प्रवाल, चन्द्रकान्त और सूर्यकान्त आदि मणियोंसे विचित्र मालूम होती थीं ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ इसके अनन्तर सब लोगोंने सीताकी नासामणिको देखा, जिसमें एक दिव्य स्वर्णमयूर बना हुआ था। वह भी नाना प्रकारके मणियोंसे अलंकृत था ॥ ६७ ॥ उसमें भी मणि-माणिक और मोतियोंके झुब्बे लटक रहे थे ॥६८॥ इसके बाद लोगोंने सीताके कर्णाभूषणोंको देखा। जिनमें मकरध्वजके सदृश विविध रत्नोंसे चित्रित झुमके थे। उनमें भी मणि-माणिक और मोतियोंके झुब्बे लटक रहे थे। रत्ननिर्मित पुष्पोंसे वे सूर्यके समान देदीप्यमान हो रहे थे ॥ ६९ ॥ ७० ॥ फिर लोगोंने सीताके कानोंमें पड़ी दो भ्रमरिकाओंको देखा। वे भी सुवर्णकी बनी तथा रत्नोंके जड़ावसे चित्र-विचित्र मालूम होती थीं ॥ ७१ ॥ फिर सबोंने सीताकी उस कर्णशृङ्खलाको देखा, जो सुवर्णकी बनी तथा रत्नजटित थी और उसमें भी मोतियोंके गुच्छे लटक रहे थे ॥ ७२ ॥ कानसे लेकर सीमन्त पर्यन्त ललाटके अगल-बगल स्वर्ण-मणिक्यके आभूषण हारके समान मालूम पड़ते थे ॥ ७३ ॥ इसके अनन्तर सबोंने सीताके मस्तककी ओर देखा, जहाँ केशमें सूर्य और चन्द्रमा दिखाई पड़ते थे। वे भी सुवर्ण-रत्न-वैदूर्य-मणि-मुक्तासे चित्रित थे ॥७४॥७५॥ नीलम, कश्मीर कांतादिक मणियोंसे वे अतिशय शोभित हो रहे थे। वे अपनी अनुपम कान्तिसे दूसरे सूर्य-चन्द्रमाके समान दसों दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे ॥ ७६ ॥ ललाटमें रत्नों और मणि-मुक्ताओंसे बना हुआ तिलक था। वह भी सुवर्णका बना था और कोटि सूर्यके समान उसका प्रकाश था ॥ ७७ ॥ इसके अनन्तर उन्होंने सीताके सीमन्तमें अतिशय दीप्तिमान् एक चूड़ामणि देखा, जो वेणीसे लेकर तिलक पर्यन्त अपनी छटा दिखा रहा था ॥ ७८ ॥

ततो ददृशुः शिरसि मुक्ताजालानि भूसुराः । हेमन्ततन्तुगुंफितानि रत्नपुष्पयुतान्यपि ॥८०॥
मणिवैदूर्यकाश्मीरविद्रुमैश्चित्रितानि हि । तदूर्ध्वं पुष्पजालानि सुगंधीनि व्यलोकयन् ॥८१॥
ततो वेण्यां भूषणानि ददृशुस्ते वराणि हि । नानापक्ष्युपमान्येव माणिक्यचित्रितानि हि ॥८२॥
पल्लवांतरवर्तीन्यतिदीप्त्युज्ज्वलानि च । हेमतन्तुमयान् गुच्छान् मुक्ताहारविमिश्रितान् ॥८३॥
लम्बमानान् ददृशुस्ते मणिमाणिक्यसंयुतान् । वेण्यग्रेसंस्थितान्रम्यान्पुष्पापीडसमन्वितान् ॥८४॥
एवं सीतां ददृशुस्ते श्रमन्यस्तविभूषणाम् । सर्वालङ्काररहितां तां द्रष्टुं कोऽपि न क्षमः ॥८५॥
दिव्यालंकाररत्नानां प्रभया हतलोचनाः । वामहस्तेन पात्रं च दर्वीं दक्षिणसत्करे ॥८६॥
दधानां पद्मचरणां रत्नोत्पलकरां वराम् । पद्मास्यां पद्मपत्राक्षीं पद्मगर्भस्वरूपिणीम् ॥८७॥
दिव्यकर्पूरगंधैश्च चन्दनैरपि चर्चिताम् । स्फुरन्मंजीरचरणां दिव्यकंकणमण्डिताम् ॥८८॥
स्वपदालक्तवर्णेन गतिं दर्शयतीं निजाम् । रत्नांगदधरां सीतां ददृशुस्ते द्विजादयः ॥८९॥
गजेंद्रगमनां रम्यां दिव्यपुष्पैः सुशोभिताम् । दिव्यमंदारकुसुममालाभिश्च सुशोभिताम् ॥९०॥
कस्तूरीकृततिलकां कुंकुमेन सुशोभिताम् । हरिद्रया कज्जलाद्यैर्मण्डितां च स्मिताननाम् ॥९१॥
इति दृष्ट्वा जानकीं तेऽभूवन् चित्रोपमास्तदा । आत्मानं न विदुः सर्वे सीतासौंदर्यविस्मिताः ॥९२॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विलासकांडे
सीताऽलंकारवर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

इसके अनन्तर उन राजाओंने सिरपर सुशोभित मोतियोंको देखा, जो सुवर्णके तारमें गुँथे थे और उनके बीच-बीचमें रत्ननिर्मित पुष्प पड़े हुए थे ॥ ७९ ॥ ८० ॥ वे भी मणि-वैदूर्य काश्मीर-विद्रुम आदिसे चित्रित थे। उसके बाद उनके ऊपर लगे हुए सुगंधित फूलोंको देखा ॥ ८१ ॥ तदनन्तर वेणीमें लगे हुए सुन्दर आभूषणोंके ऊपर लोगोंकी दृष्टि पड़ी, जो विविध प्रकारके उन माणिक्य-चित्रित पक्षियों जैसे दीखते थे, जो पत्तोंके भीतर बैठे हुए अतिशय दीप्तिमान् हो रहे हों सुवर्णके तारोंसे बने गुच्छे मोतियोंके हारसे मिले तथा मणि-माणिकसंयुक्त थे। वे वेणीके अग्रभागमें लटके थे और उनमें नाना प्रकारके फूल गुँथे हुए थे ॥ ८२-८४ ॥ सीताने बोझके डरसे बहुतसे आभूषणोंको निकाल दिया था। फिर भी सब प्रकारके अलङ्कारोंको धारण किये हुएके सदृश दीखनेवाली सीताको लोगोंने देखा सही, किन्तु कोई भी अच्छी तरह नहीं देख सका ॥ ८५ ॥ क्योंकि उन अलंकारोंकी प्रभाके आगे लोगोंकी दृष्टि ही नहीं ठहरती थी। सीताके बाएँ हाथमें एक पात्र था और दाहिने हाथमें कलछी थी ॥ ८६ ॥ उनके चरण कमलसरीखे थे। रत्नोंसे बने हुए कमलकी नाईं सीताके हाथ थे। कमलके समान मुख, पद्मपत्रके समान आँखें तथा कदलीके खम्भेके भीतरी भागके समान कोमल स्वरूप था। दिव्य कर्पूर तथा चन्दनसे उनका समस्त शरीर चर्चित था। रुमझुम करता हुआ मंजीर पाँवोंमें था और दिव्य कंकण सीताके पाँवोंमें पड़े थे ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ रक्तवर्णके चरणोंसे वे अपनी मन्द गति दिखा रही थीं। रत्ननिर्मित बिजायठ हाथमें पड़े थे। इस प्रकारकी सीताको लोगोंने देखा ॥ ८९ ॥ गजेन्द्रके समान उसकी मन्द गति थी। दिव्य पुष्पोंसे सुशोभित तथा दिव्य मंदार विरचित मालाओंसे अलंकृत होकर कस्तूरीका तिलक लगाये हुए थीं, उनकी आँखोंमें काजल लगा था और वे मन्द-मन्द मुसका रही थीं। इस प्रकारकी सीताको देखकर देखनेवाले चित्रलिखित जैसे हो गये और उनके सौन्दर्यसे विस्मित होकर वे सब अपने आपको भूल गये ॥९०-९२॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे 'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते विलासकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

(रामसीताका जलविहार)

श्रीरामदास उवाच

अथ सीता क्षणेनैव चकार परिवेषणम् । हेमपात्रेषु सर्वेषां पक्वान्नैर्विविधैर्मुदा ॥ १ ॥
कामधेनूद्भवैश्चैव मण्डकान् पूर्णपूरितान् । वटकान् फेनिकांश्चापि पायसान्युज्ज्वलानि च ॥ २ ॥
पर्पटकान् लड्डुकांश्च कूष्माण्डवटकांस्तथा । सुमृष्टतंडुलकृतान् दधिक्षीरं घृतं मधु ॥ ३ ॥
पृथक्कांचनद्रोणेषु जानकी पर्यवेषयत् । शर्कराः श्वेतवर्णाश्च तथैव खंडशर्कराः । ४ ॥
मरिचाद्युपचारैश्च संस्कृतं तक्रमुत्तमम् । घृतपाचितशाकाश्च ह्युपशाका रुचिप्रदाः ॥ ५ ॥
तिलसम्मिश्रवटकानार्द्रकं बीजपूरकम् । आम्रादीनां रसांश्चापि रंभादीनि फलान्यपि ॥ ६ ॥
एवमादीन्यनेकानि चोष्यनि विविधानि च । तथा लेह्यानि पेयानि जानकी पर्यवेषयत् ॥ ७ ॥
ततो रामः सुहृन्मित्रैः कथां कुर्वन् सुखेन सः । अकरोदुपहारं च करशुद्धिं विधाय सः ॥ ८ ॥
सर्वेषां निजहस्तेन ददौ तांबूलमुत्तमम् ।स्वयं भुक्त्वाऽथ तांबूलं वासांसि परिधाय सः ॥ ९ ॥
बद्ध्वा वस्त्राणि सर्वाणि दृष्ट्वादर्शे निजं मुखम् ।आरुह्य शिबिकां दिव्यां मुक्तागुच्छविराजिताम्॥१०॥
हैमीं रत्नादिभिश्चित्रां ययौ निजगृहाद्बहिः । बन्धुभिः सचिवैरिष्टैस्तैस्तैः सर्वत्र वेष्टितः ॥११॥
स्तुतो वन्दिजनैः सर्वैर्ययौ स जानकीगृहम् । तत्र नत्वाऽथ कौसल्यां तथा मातर्यथाक्रमम् ॥१२॥
आशीर्भिरीडितस्ताभिर्ययौ रामः सभां वराम् । तत्र सिंहासने स्थित्वा मंत्रिभिर्लक्ष्मणादिभिः ॥१३॥
राजकार्याणि सर्वाणि चकार नीतिमच्चरः । शशास राज्यं धर्मेण बुद्धिमांश्चारुलोचनः ॥१४॥
चारैर्ज्ञात्वा स्थितिं सर्वां स्वराज्यस्य च सर्वथा । शशास राज्यं धर्मेण राघवो दीर्घलोचनः ॥१५॥
अथ सीतोपहारं स्वसखीभिश्चोर्मिलादिभिः । देवराणां कामिनीभिः स्वसृभिश्चाकरोत्सुखम् ॥१६॥
करशुद्धिं विधायाथ भुक्त्वा तांबूलमुत्तमम् । परिधाय हरिद्वस्त्रं तथा रक्तां तु कञ्चुकीम् ॥१७।

श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! इसके अनन्तर सीताने क्षण भरमें सबके आगे रक्खे हुए सुवर्णके पात्रोंमें विविध प्रकारके पकवान परोसे । वे पकवान कामधेनुके द्वारा उत्पन्न किये हुए थे । उनमें मण्डक, पूरनपूरी, वटक, फेन, दूधकी बनी खीर आदि, पापड़, लड्डू, कुम्हड़ापाग, चिउड़ा, दही, दूध, घी, शहद आदिकोंको जानकीजीने अलग-अलग स्वर्णनिर्मित पात्रोंमें परोसा ॥ १–३ ॥ सफेद शक्कर, लाल शक्कर, जीरा मिर्च आदि मसाला डालकर बना हुआ रायता, घीमें छौंके हुए नाना प्रकारके शाक, चटनी, तिलकी बनी हुई टिकिया, सूखा बीजपूरक, आमके रस, केले आदिके फल, इसी प्रकार चूसने लायक तरह-तरहके अँचार, चाटने लायक कितनी ही तरहकी चटनी और पीनेके लायक तस्मई आदि वस्तुओंको सीताजीने परोसा ॥ ४–७ ॥ इसके बाद रामचन्द्रजीने मित्रोंके साथ बातें करते हुए भोजन किया और हाथ धोकर सबको अपने हाथसे पान दिया । फिर स्वयं भी पान खाया और कपड़े बदले ॥ ८ ॥ ९ ॥ इसके बाद सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र बाँधकर आइनेमें मुख देखा और मोतियोंके गुच्छोंसे सजाई हुई पालकीपर सवार होकर घरसे बाहर निकले । बान्धव, मन्त्री, मित्र तथा दूत, ये सब चारों ओरसे रामचन्द्रजीको घेरे हुए थे ॥ १० ॥ ११ ॥ बंदीजन रास्तेमें भगवान्‌की स्तुति करते चलते थे । इस तरह सबको अपने साथ लिये हुए वे माताके भवनमें जा पहुँचे, वहाँ माता कौसल्या तथा अन्य माताओंको प्रणाम करके उनसे आशीर्वाद लिया और उन माताओंको भी साथ लिये हुए सभाभवनमें पहुँचे । वहाँ मन्त्रियों तथा लक्ष्मणादिक भ्राताओंके साथ सिंहासनपर बैठे ॥ १२ ॥ १३ ॥ वहाँपर राज्यसम्बन्धी समस्त कार्योंको खूब अच्छी तरह सोच-विचारकर किया । रामचन्द्रजी गुप्तचरों द्वारा अपने राज्यके सब समाचार मालूम करके धर्मपूर्वक शासन करते थे ॥ १४ ॥ उधर सीताजीने भी अपनी देवरानियों, बहिनों तथा सखियोंके साथ भोजन किया, हाथ धोया और ताम्बूलका उत्तम बीड़ा खाया । हरे रंगकी साड़ी तथा लाल रङ्गकी चोली जिसमें सुवर्णके

हेमतन्तुसुपुष्पाढ्यां मुक्ताजालविगुम्फिताम् । गेहान्तर्वर्त्युपवनशालायां संस्थिताऽभवत् ॥१७॥
सखीभिर्वेष्टिता रम्या धृताऽधोंकोपवर्हणा । ततो दिव्यानलङ्काराञ्जिजदेहे दधार सा ॥१८॥
ये मया कथिता नैव पूर्वन्यस्तान् श्रमेण तान् । कस्तेषां वर्णने सक्तो भवेदत्र नरोत्तमः ॥१९॥
चतुरास्यः कुण्ठितोऽभूत्पञ्चास्यश्च षडाननः । उच्चैःश्रवाश्च सप्तास्यः सहस्रास्योऽपि वर्णने ॥२०॥
श्रुत्वा सीतामुपवने गतां ते जलयन्त्रिणः । जलयन्त्राणि सर्वाणि चक्रुर्मुक्तानि वेगतः ॥२१॥
रत्नमञ्चकसस्था सा सीता चामरवीजिता । जलयन्त्रकौतुकानि ददर्श नगवीरुधः ॥२२॥
एतस्मिन्नन्तरे रामो राजकार्याणि कृत्स्नशः । कृत्वा ययौ सभायाः स निजगेहं तु बन्धुभिः ॥२३॥
तदा दुन्दुभिनिर्घोषा नववाद्यस्वना अपि । शङ्खानां गोमुखानां च भेरीणां तुमुलस्वनाः ॥२४॥
बभूवुर्यत्र शब्दाश्च तूर्यादीनां स्वनाः शुभाः । ननृतुर्वारनार्यश्च तुष्टुवुर्मागधादयः ॥२५॥
तं स्वनं जानकी चापि श्रुत्वा चोपवने स्थिता । सम्भ्रमेण समुत्तीर्य मञ्चकाधो वरानना ॥२६॥
वामहस्ते झर्झरीं तां ह्युपपात्रं च दक्षिण । धृत्वा करे सा वैदेही रामं प्रत्युज्जगाम वै ॥२७॥
एतस्मिन्नंतरे रामस्त्यक्त्वा तां शिविकां बहिः । विसर्ज्य सकलाँल्लोकान् विवेश बन्धुभिर्गृहे ॥२८॥
एतस्मिन्नन्तरे दास्यः शतशो रुक्मभूषिताः । राघवाग्रे दुद्रुवुस्ताः स्वस्वकर्मसु तत्पराः ॥२९॥
काचित्तं व्यजनेनैव वीजयामास वेगतः । दधार चामरे काचित्काचिदासनमुत्तमम् ॥३०॥
काचित्तांबूलपात्रं सा काचिन्निष्ठीवनस्य च । पात्रं दधार काचित्तु जलकुम्भं मनोरमम् ॥३१॥
काचिद्दधार वस्त्राणां कोशं काचित्तु कार्मुकम् । काचिद्दधार तूणीरं काचित्खड्गं दधार सा ॥३२॥
एवमादीन्यनेकानि तदोपकरणानि ताः । जगृहू रामचन्द्रं तं वेष्टयामासुरादरात् ॥३३॥
ततो रामः शनैःपद्भ्यां ययौ जनकनन्दिनीम् । स्थितां तत्र प्रतीक्षन्तीं पतिं जलरुहेक्षणम् ॥३४॥

तारोंसे जगह-जगह बेल-बूटे बने थे, उसे पहिना और सबके साथ भवनके भीतर ही बने हुए उपवनमें जाकर बैठीं ॥ १५-१७ ॥ वहाँ सखियोंने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया और सीताने विविध प्रकारके आभूषण पहने ॥ १८ ॥ जिन थोड़ेसे अलंकारोंको मैं बड़े परिश्रमके साथ खोजकर पहले कह आया हूँ, उन्हें यहाँ पूर्ण-रूपसे वर्णन करनेमें कौन श्रेष्ठ पुरुष समर्थ होगा ॥ १९ ॥ सीताकी उस अलौकिक शोभाका वर्णन करनेमें चतुरानन ब्रह्मा, पञ्चवक्त्र शिव, षडानन स्वामिकार्तिकेय, सात मुखवाले उच्चैःश्रवा और हजार मुखवाले शेषनाग-का भी बुद्धि कुण्ठित हो गयी ॥ २० ॥ जलयंत्रके अधिकारियोंने जब सुना कि सीताजी उपवनमें आ गयी हैं, तब उन्होंने सब फौवारोंको बड़े वेगके साथ छोड़ दिया ॥ २१ ॥ तदनन्तर मणिकी बनी हुई चौकीपर बैठकर सीता फौवारोंके कौतुक तथा वृक्षोंकी शोभा देखने लगीं और दासियाँ सीताके ऊपर चँवर डुलाने लगीं ॥२२॥ इतनेमें रामचन्द्र भी राज्यसम्बन्धी सब काम करके भाइयोंके साथ अपने भवनसे आये ॥ २३ ॥ उस समय दुन्दुभीके शब्द, नवीन बाजोंकी ध्वनि और शङ्ख, गोमुख, भेरी आदिका घनघोर शब्द होने लगा ॥ २४ ॥ विविध वाद्ययन्त्रोंके शब्द और तुड़ही आदिकी ध्वनि सुनाई देने लगी, वेश्यायें नाचने लगीं और बन्दीजन भगवान्‌की स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥ उन बाजोंके स्वर सुनकर सीता भी घबड़ाहटके साथ चौकीपरसे उतरकर बाँयें हाथमें झारी तथा एक उपपात्र लेकर रामकी ओर चलीं ॥ २६ ॥ २७ ॥ तबतक रामचन्द्रजी भी पालकीसे उतरे और सब लोगोंको विदा करके भ्राताओंके साथ घरके भीतर गये ॥ २८ ॥ इतनेमें विविध प्रकारके अलङ्कारोंको पहने हुए सैकड़ों दासियाँ अपना-अपना काम करनेके लिये दौड़ पड़ीं ॥ २९ ॥ कोई भगवान्‌को पंखा झलने लगी। किसीने चमर ले लिया। कोई आसन बिछाने लगी। किसीने पानदान, किसीने उगालदान, किसीने सुन्दर जलपात्र और किसीने कपड़े रखनेकी पेटी सम्हाल ली। किसी दासीने रामजीका धनुष ले लिया। किसीने तरकस लिया और किसीने तलवार ले ली ॥३०-३२॥ इस तरह रामकी सब वस्तुओंको सब दासियोंने चारों ओरसे घेरकर सम्हाल लिया ॥ ३३ ॥ इसके बाद

गृहांगणाराममध्ये संस्थितां सस्मिताननाम् । दृष्ट्वात्मानं विलज्जन्तीं सुनासां चारुलोचनाम् ॥३५॥
कटाक्षैश्चारु पश्यन्तीं सखीभिः परिवेष्टिताम् । तां दृष्ट्वा राघवश्चापि किंचित् कृत्वा स्मिताननम् ॥३६॥
चकाराचमनं सम्यक् सीतार्पितजलेन सः । ततः स्थित्वाऽऽसने पीत्वा जलमग्रे ययौ पुनः ॥३७॥
जलयन्त्रसमीपस्थां शालां सीतासमन्वितः । तस्यां सिंहासने स्थित्वा लक्ष्मणं प्राह राघवः ॥३८॥
गच्छ भोजनशालां त्वं सर्वानाहूय वेगतः । ब्राह्मणादीनुर्मिलादिनारीणां त्वरयस्व हि ॥३९॥
सर्वं कृत्वा यथायोग्यं ततो मां कुरु सूचनाम् । तथेति रावचनाद्भरतेन स शत्रुहा ॥४०॥
लक्ष्मणस्त्वरितो गत्वा सर्वानाहूय वेगतः । वसिष्ठादिमुनीन्मित्रमन्त्रिणः सुहृदस्तथा ॥४१॥
त्वरयामासोर्मिलां च मांडवीं भरतप्रियाम् । श्रुतकीर्तिं च सौमित्रिः श्रीरामवचनात्तदा ॥४२॥
एतस्मिन्नन्तरे रामः केसरादिविनिर्मितैः । चित्ररागैः पूरितानि जलयन्त्राण्यनेकशः ॥४३॥
कारयित्वा तेषु सीतां बाहुपाशैर्दृढं मुदा । धृत्वाऽक्षिपत्पृथग्दास्यादिषु पश्यत्सु वै सुखम् ॥४४॥
ततः स्वयं पपातोच्चैर्जलयंत्रेषु वै पृथक् । जलक्रीडां स मैथिल्या चकार रघुनन्दनः ॥४५॥
भुजाभ्यां स समालिंग्य तां मुहुः प्राक्षिपन्मुदा । रञ्जयामास वैदेहीं सुरागाञ्जलिसेचनैः ॥४६॥
ततः सुगन्धतैलानि तथा परिमलानि हि । नानासुगन्धद्रव्याणि माङ्गल्यानि बहूनि च ॥४७॥
दासीभिः शीघ्रमानीय तावुभौ हि परस्परम् । ववर्षतुः सुमार्द्रैश्च क्रीडाद्रव्यैर्मनोरमैः ॥४८॥
कराभ्यां जलयंत्राणि मिथस्तौ संमुमोचतुः । रामाक्षिसंज्ञया दास्यः सीतासख्योऽपि सूचिताः ॥४९॥
वस्त्रभित्तिबहिर्द्वारं गत्वा तस्थुर्विलज्जिताः । काश्चिद्द्वारेषु तस्थुस्तास्तूष्णीं प्रमुदिताननाः ॥५०॥
अदृष्ट्वाऽयं ततः सीतारामौ रहसि सादरम् । जलयन्त्रेषु तौ क्रीडां चक्रतुः सुचिरं मुदा ॥५१॥
मुष्टिभ्यां जानकी रामं ताडयामास कौतुकात् । सोऽपि तां ताडयामास मुष्ट्या पुष्पसमानया ॥५२॥

रामजी धीरे-धीरे सीताजीकी ओर चले, जो पहले ही से खड़ी-खड़ी रामचन्द्रजीके आनेकी प्रतीक्षा कर रही थीं। जिनका मस्तक रामको देखकर लज्जासे झुका हुआ था, वे सीता गृहांगणमें बने बगीचेमें बैठी थीं। मुसकाता हुआ उनका मुख था। रामचन्द्रजीने देखा कि सुन्दर आँखों और सुडौल नासिकावाली सीता हमें देखकर लजा रही हैं। उनके चारों ओर सखियाँ घेरे खड़ी हैं और रह-रहकर सीता अपनी कनिखियोंसे हमको देखती जाती हैं। इस प्रकारकी सीताको देखकर रामचन्द्रजी मुसकाते हुए उनके पास पहुँचे और सीताके हाथसे प्राप्त जलको लेकर आचमन किया। फिर आसनपर बैठे, जल पिया और सीताके साथ उस बँगलेकी तरफ चले, जो फौवारोंके बीचमें बना हुआ था। वहाँ पहुँचकर राम एक दिव्य सिंहासनपर बैठे और लक्ष्मणसे कहने लगे-॥ ३४-३७ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम भोजनशाला जाओ और सब ब्राह्मणों तथा उर्मिलादिक नारियोंसे कहो कि जल्दी भोजन तैयार करें। जैसा मैंने बतलाया है, वैसा करनेके बाद फिर हमें सूचना दो। 'बहुत अच्छा' कहकर लक्ष्मण शत्रुघ्न तथा भरतको साथ लेकर भोजनशालामें पहुँचे। वहाँ वसिष्ठादि मुनियों, मन्त्रियों तथा मित्रोंको बुलाकर शीघ्र तैयार होनेको कहा ॥ ३८-४१ ॥ तदनन्तर लक्ष्मणने मांडवी, श्रुतकीर्ति, उर्मिला आदिको रामचन्द्रजीके आज्ञानुसार यह सन्देश दिया कि तुम शीघ्र भोजनकी तैयारी करो ॥ ४२ ॥ इसके अनन्तर रामचन्द्रजीने केसरादि विविध रङ्गसे रञ्जित जलवाले एक बड़ेसे हौजमें सीताजीको गोदमें लेकर फेंक दिया। सखियाँ हँसती हुई देख रही थीं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर वे स्वयं भी उसमें कूद पड़े और सीताके साथ जलक्रीड़ा करने लगे ॥४५॥ वे बार-बार सीताको उठा-उठाकर जलमें फेंकते, फिर स्वयं कूदते और सीतापर जल उछालते थे। तदनन्तर दासियों द्वारा सुगन्धित तैल तथा विविध प्रकारके परिमल मँगाकर आपसमें एक दूसरेपर डालने लगे। वे हाथमें पिचकारी लेकर एक दूसरेपर केसर आदि मिले हुए जलकी वर्षा करते थे ॥४६-४९॥ रामचन्द्रजीके संकेतसे सखियाँ लज्जाके मारे वहाँसे हट गयीं और दूसरी जगह जा बैठीं। उनमेंसे कुछ स्त्रियाँ प्रसन्नतापूर्वक तम्बूसे बने हुए घेरेके फाटकपर जा बैठीं। इस प्रकार एकान्तमें सीताके साथ रामचंद्रजी बहुत देरतक क्रीड़ा करते रहे ॥ ५० ॥ ५१ ॥ कभी खेल-खेलमें सीताजी रामचन्द्रको मुक्का मार देती थीं,

चुचुम्ब तस्या बिंबोष्ठं चूर्णयामास तत्कुचौ । मुक्त्वा तत्कञ्चुकीबंधमालिंग्य हृदयेन ताम् ॥५३॥
मुमोच कच्छं श्रीरामः सीतायाः स्वकरेण सः । उड्डीय वस्त्रं हस्तेन तद्रम्भोरू ददर्श सः ॥५४॥
ततः करेण तन्नीवीं रामश्चाकर्षयन्मुदा । सीताप्याकर्षयद्वेगाद्रामनीवीं स्मिताननना ॥५५॥
एवं परस्परं क्रीडां चक्रतुर्दम्पती मुदा । कः समर्थस्तयोः क्रीडां सविस्तारां निवेदितुम् ॥५६॥
एतस्मिन्नन्तरे रामं भोजनार्थं तु सूचनाद् । कर्तुं ययौ स सौमित्रिः समाहूय सुहृज्जनान् ॥५७॥
निषेधितः स दासीभिर्वनद्वाराद्बहिः स्थितः । ता ऊचुः समयो नायं रामं गन्तुं च न क्षणम् ॥५८॥
स्थिरो भवात्र सौमित्रे रामो रहसि सीतया । करोति जलयन्त्रेषु जलक्रीडां यथासुखम् ॥५९॥
पुनस्ताः प्राह सौमित्रिर्युष्माभिर्वचनेन मे । निवेदनीयं रामाय सूचनार्थं हि लक्ष्मणः ॥६०॥
समागतस्त्वामस्तीति ततो यास्याम्यहं गृहम् । ततस्तासु तदा त्वेका दासी गत्वा रघूत्तमम् ॥६१॥
वस्त्रभित्तेर्बहिः स्थित्वा भयभीताऽतिलज्जिता । कथयामास सौमित्रेर्द्वारि ह्यागमनं शनैः ॥६२॥
तद्दासीवचनं श्रुत्वा जलयंत्रात्तु जानकीम् । बहिःकृत्वा निर्गतश्च रामस्तुष्टमनाः स्वयम् ॥६३॥
जलैरुष्णैः प्रभुः स्नात्वा देहमुद्वर्तनादिभिः । सुगंधद्रव्यरागादीन् कृत्वा दूरं प्रियान्वितः ॥६४॥
पीतकौशेयवासांसि परिधायाथ दम्पती । ददतुश्चार्द्रवस्त्राणि हेमतंत्वंकितानि च ॥६५॥
दासीभ्यश्चाथ दासेभ्यो रागाद्यैश्चित्रितानि हि । तौ जग्मतुः पुष्पचितमार्गेणाप्यशनगृहम् ॥६६॥
तत्र पूर्वोपचाराधिकैर्नानोपचारकैः । ऊर्मिलादिभिरन्नं यत्कामधेनुसमुद्भवम् ॥६७॥
दर्वीभिः स्वर्णजाभिश्च पात्रेषु परिवेषितम् । मुनीश्वरैश्च गुरुणा सहन्मित्रसमन्वितः ॥६८॥
मन्त्रिभिर्बन्धुभिश्चापि रामोऽन्नंस्तोषमाप सः । तत्पात्रं वीजयामास जानकी चामरेण सा ॥६९॥
सविनोदैश्चाटुवाक्यैः रञ्जयामास राघवम् । एवं कृत्वा भोजनं तु कृत्वा तांबूलचर्वणम् ॥७०॥

तब राम भी हँसते हुए फूलके समान कोमल मुक्केसे सीताको मार देते थे ॥ ५२ ॥ सीताके बिम्बसदृश लाल होठोंको रामचन्द्रजीने कई बार चूमा, उनके कुचोंका मर्दन किया और चोलीका बन्द खोलकर अपनी छातीसे लिपटाया ॥ ५३ ॥ रामने सीताकी काँछ खोलकर वस्त्रोंको हटा दिया, जिससे कदलीके खम्भेके समान उनकी कोमल जंघाएँ दिखाई पड़ने लगीं ॥ ५४ ॥ तब सीताने भी मुसकाकर रामकी धोती खोल डाली। इस तरह राम और सीतामें विविध प्रकारकी क्रीड़ाएँ होती रहीं। सीता और रामकी क्रीड़ाके सविस्तार वर्णन करनेकी सामर्थ्य भला किसमें है ? हे शिव ! यह संक्षिप्तरूपमें मैंने तुम्हें बतलाया है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ इसके अनन्तर भोजन तैयार होनेकी सूचना पहुँची। तब लक्ष्मणने रामचन्द्रके मित्रों आदिको भी बुलवा लिया ॥ ५७ ॥ लक्ष्मण रामको बुलानेके लिए क्रीड़ाभवनके फाटकपर पहुँचे, तैसे ही सखियोंने उन्हें रोका और कहा कि अभी रामचन्द्रजीके पास जानेकी आज्ञा नहीं है। क्योंकि वे इस समय जलक्रीड़ा कर रहे हैं ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ उनसे लक्ष्मणने कहा—अच्छा, तुम्हीं जाकर रामसे कहो कि द्वारपर लक्ष्मण भोजनकी सूचना देनेके लिए खड़े हैं ॥ ६० ॥ तुम्हारे ऐसा कह देनेपर मैं अन्दर चला जाऊँगा। लक्ष्मणके आज्ञानुसार उनमेंसे एक दासी रामके समीप गयी और लजाती हुई परदेकी ओटसे धीरे-धीरे उनसे लक्ष्मणके आनेकी खबर सुनायी ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ दासीकी बात सुनकर रामने प्रसन्नमनसे सीताको जलयन्त्रके बाहर निकाला और स्वयं भी निकल आये ॥ ६३ ॥ तब गरम जलसे सीता और रामने शरीरमें लगे हुए सुगन्धित उबटन आदिको धोया ॥ ६४ ॥ उसके बाद रेशमके पीले कपड़े पहने। उन बहुमूल्य गीले कपड़ोंको दास-दासियोंको दे दिया। फिर पुष्पोंसे सुशोभित मार्गसे चलकर दोनों भोजनशालामें जा पहुँचे ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ वहाँ पूर्वोक्त भोजन-सामग्रीसे भी अधिक कामधेनुसे उत्पन्न तथा उर्मिला आदिके द्वारा सुवर्ण-पात्रोंमें सुवर्णके ही चमचोंसे परोसे हुए व्यञ्जनोंको अनेक मुनियों, मित्रों, मन्त्रियों एवं बन्धु-बान्धवोंके साथ खाते हुए रामचन्द्रजी बहुत प्रसन्न हुए। भोजन करते समय सीताजी पंखा झलती हुई बीच-बीचमें चित्त प्रसन्न करनेवाली कितनी

सीतासमर्पितं रामस्तस्थौ शृण्वन् कथाः सुखम् । मन्त्रिभिर्बन्धुभिर्मित्रैर्गेहांतः सदसि प्रभुः ॥७१॥
सीताऽपि भोजनं कृत्वा दिव्यालंकारमण्डिता । निद्राशालां समासीना सखीभिः परिवेष्टिता ॥७२॥
चकार सारिभिः क्रीडां दासीभिर्वीजिता मुदा । कुर्वन्ती रघुनाथस्य प्रतीक्षां द्वारलोचना ॥७३॥

इति श्रीमच्छतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यागकाण्डे
जलक्रीडावर्णनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

(राम तथा सीताकी दिनचर्या)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामो बंधुभिश्च निद्राशालां ययौ मुदा । स्तुतो बंदिजनाद्यैश्च विवेशैकांतमन्दिरम् ॥ १ ॥
विसर्ज्य लक्ष्मणादींश्च दासीभिः परिवारितः । ददर्श जानकीं निद्राशालायां रघुनंदनः ॥ २ ॥
साऽपि ज्ञात्वाऽऽगतं रामं सारिक्रीडां विहाय च । प्रत्युज्जगाम रामाय सखीभिर्नूपुरस्वना ॥ ३ ॥
नत्वा रामं करे धृत्वा मंचके संन्यवेशयत् । दत्त्वा पातुं जलं तस्मै ददौ तांबूलमुत्तमम् ॥ ४ ॥
ततश्चकार श्रीरामो निद्रां सीतासमन्वितः । दासीभिर्वीजितश्चापि पर्यंके रत्नभूषिते ॥ ५ ॥
मुहूर्तमात्रादुत्थाय घृताधोंकोपबर्हणा । तस्थौ सीता मंचकाधस्ततो रामोऽप्यबुध्यत ॥ ६ ॥
दृष्ट्वा समुत्थितं रामं दत्त्वा पातुं जलं पुनः । ददौ सीताऽय तांबूलं राघवायातिहर्षिता ॥ ७ ॥
रामदास्यस्तथा रामं वीजयामासुरादरात् । केकिपक्षसमुद्भूतैश्चामरै रुक्मभूषितैः ॥ ८ ॥
सीतादास्यस्तथा सीतां वीजयामासुरादरात् । धेनुपुच्छोद्भवैर्दिव्यैश्चामरैर्हेममंडितैः ॥ ९ ॥
ततः सीताकरं धृत्वा द्राक्षावल्या सुमण्डपम् । ययौ रामोऽङ्गणोद्भूतं तस्थौ तदध आसने । १०॥

ही बातें भी करती जाती थीं। इस प्रकार भोजन करके रामने सीताके हाथोंका दिया हुआ पान खाया ॥ ६७-७० ॥ तदनन्तर मन्त्रियों, बन्धुओं तथा मित्रादिकोंके साथ विविध प्रकारकी बातें कहते-सुनते हुए सभाभवनमें पधारे ॥ ७१ ॥ तदनन्तर सीताने भी भोजन किया, कपड़े बदले और नाना प्रकारके अलंकारोंको पहनकर अपने शयनागारमें जा बैठीं। वहाँ सीताकी सखियाँ भी उन्हें चारों ओरसे घेरकर बैठ गयीं ॥ ७२ ॥ सीता वहाँ बैठी हुई सारिका (मैना) के साथ खेलतीं तथा इधर-उधरकी बातें करती हुई रामचन्द्रजीके आनेकी प्रतीक्षा कर रही थीं। यह सब करते हुए भी सीताकी आँखें रामको देखनेके लिए द्वारपर ही लगी हुई थीं ॥ ७३ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे वाल्मीकीये 'ज्योत्स्ना'भाषाटीकायां विलासकांडे पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीरामदासने कहा—सभाभवनमें कुछ देर बैठनेके अनन्तर राम अपने बन्धुओंके साथ प्रसन्नतापूर्वक शयनागारकी ओर चले। बंदीजन भगवान्‌की स्तुति करने लगे। निद्राशालाके पास जाकर रामने लक्ष्मण आदिको विदा कर दिया। दासियोंके साथ वे भीतर गये और वहाँ बैठी हुई सीताको देखा ॥ १ ॥ २ ॥ सीताने भी जब देखा कि रामजी आ गये हैं, तब अपनी मैनाके साथका खेल बन्द करके धीरे-धीरे उनकी ओर बढ़ीं। उन्हें प्रणाम किया और हाथ पकड़कर पलंगपर बैठा लिया। फिर पीनेके लिए जल दिया और उत्तम ताम्बूल खिलाया ॥ ३ ॥ ४ ॥ इसके बाद रामचन्द्रजी रत्नभूषित पलंगपर सो गये और दासियाँ पंखा झलने लगीं ॥ ५ ॥ क्षण भरके बाद सीता पलंगसे नीचे उतरीं, तब रामजी भी जाग गये ॥ ६ ॥ सीताने जब देखा कि वे भी उठे हैं, तब फिर पीनेके लिए जल और खानेको पान दिया ॥ ७ ॥ रामकी दासियाँ रामको और सीताकी दासियाँ सीताको पंखा झल रही थीं। उन दासियोंके हाथमें मोरके पंखोंका बना हुआ पंखा था और उसमें सुवर्णकी मूठ लगी हुई थी ॥ ८ ॥ कुछ देर बाद रामचन्द्रजी सीताका हाथ अपने हाथमें पकड़े हुए एक अंगूरी लताओंके बने सुन्दर मण्डपमें पहुँचे और उसके आँगनमें एक आसनपर बैठे

उपबर्हणसंस्पृष्टः सीतावामस्थितो मुदा । हस्त्यश्वोष्ट्रमंत्रिराजदूतैः कृत्रिमनिर्मितैः ॥११॥
हेमरत्नहस्तिदन्तसंभृतैरतिचित्रितैः । क्रीडां बुद्धबलेनैव चकार सीतया सुखम् ॥१२॥
ततः पक्षिकुलैः सर्वैः पंजरस्थैः ससीतया । क्रीडां चकार श्रीरामो दासीभिर्वीजितो मुहुः ॥१३॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सीतयाऽऽकारिताः पुरा । समाययुर्वारनार्यो ननृतुः शतशस्तदा ॥१४॥
चक्रुर्गीतं सस्वरं ताः षड्जस्वरसमन्वितम् । ततस्ताभ्यो ह्यलङ्कारान् दत्त्वा वस्त्राणि जानकी १५॥
विसर्जयामास ताः सर्वास्ततो राघवमब्रवीत् । स्थित्वा प्रासादवर्येऽद्य कौतुकं हट्टजं त्वया ॥१६॥
द्रष्टुमिच्छाम्यहं राम शीघ्रमुत्तिष्ठ राघव । तत्सीतावचनाद्रामः प्रासादं प्रति सीतया ॥१७॥
गत्वा दिव्यासने स्थित्वा गवाक्षै रुक्मभूषितैः । रत्नोद्भवकपाटैश्च मुक्ताजालविराजितैः ॥१८॥
राजवीथ्यां हट्टजातं ददर्श जनकौतुकम् । सीतायै दर्शयामास कौतुकानि स राघवः ॥१९॥
स्वीयदक्षिणहस्तस्य तर्जन्या मुदिताननः । एतस्मिन्नन्तरे हट्टे द्विजपत्नी तु सीतया ॥२०॥
दृष्ट्वाऽलङ्कारवस्त्राद्यैर्हीना कटिघृताऽर्भका । गच्छन्ती राजमार्गेण कृशा भिक्षार्थमुद्यता ॥२१॥
तां तादृशीं निरीक्ष्याथ दास्याहूय विदेहजा । पप्रच्छ भूषणाद्यैस्त्वं किमर्थं रहिता ह्यसि ॥२२॥
सा प्राह तीर्थयात्रार्थं त्यक्त्वा मां तातलालिता । तातगेहे गतो भर्ता ततोऽपि जरठो मृतः ॥२३॥
गुरुगेहेऽवंतिकायां वर्त्तेते भ्रातरौ मम । न पोषकः कोऽपि गेहेऽधुना सीतेऽस्ति वै मम ॥२४॥
तस्मान्न सन्त्यलङ्कारवासांसि जनकात्मजे । इति तस्या वचः श्रुत्वा रामास्यं सन्निरीक्ष्य सा २५॥
निजालङ्कारवासांसि ददौ तस्यै विदेहजा । ब्राह्मणीं सा पुनः प्राह गच्छ त्वं लक्ष्मणं प्रति ॥२६॥
हेममुद्रा लक्षमितास्त्वं गृहाण ममाज्ञया । तथेति जानकीं पृष्ट्वा सा ययौ लक्ष्मणं तदा ॥२७॥

॥ ९ ॥ १० ॥ रामकी पीठपर तकिया लगी थी और सीता रामके वामभागमें बैठी थीं। वहाँ नकली हाथी, घोड़े, ऊँट, मंत्री और राजदूत आदिके खिलौने रक्खे हुए थे। उनके साथ राम तथा सीताने बड़ी देरतक खेलवाड़ किया। उनमें बहुतसे खिलौने सुवर्ण, हाथीदाँत एवं रत्नोंके बने हुए थे और उनपर बढ़िया रँगाई की हुई थी ॥ ११ ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर पिंजड़ेमें बैठे हुए बहुतसे पक्षियोंके साथ रामने क्रीड़ा की। उस समय भी दासियाँ पंखा झल रही थीं ॥ १३ ॥ इसके बाद सीता द्वारा बुलाई हुई बहुत-सी नर्तकियाँ आकर वहाँ नाचने-गाने लगीं ॥ १४ ॥ वे वेश्यायें षड्जस्वरमें सुन्दर गीत गा-गाकर बहुत देर तक उन्हें सुनाती रहीं। इसके बाद सीताने उनको बहुतसे वस्त्र-अलंकार आदि दे-देकर विदा किया ॥ १५ ॥ उनको विदा करके सीता रामसे कहने लगीं—आज हमारी यह इच्छा है कि आपके साथ छतपर बैठकर बाजारका कौतुक देखूँ ॥ १६ ॥ उठिए और जल्दी चलिए। तदनुसार राम सीताके साथ प्रासादपर गये ॥ १७ ॥ वहाँ एक दिव्य आसनपर बैठकर सुवर्णके बने हुए झरोखोंसे जिनमें विविध प्रकारके रत्नोंके दरवाजे लगे थे और मोतियोंकी झालरें लटकी हुई थीं ॥ १८ ॥ उनमेंसे ही वे राजमार्गके जनसमुदायका कौतुक देखने लगे और सीताको भी दाहिने हाथ-की तर्जनी अंगुलीके संकेतसे दिखाने लगे ॥ १९ ॥ इसी बीच सीताने देखा कि एक ब्राह्मणकी पत्नी वस्त्र-अलङ्कारको त्यागे नङ्गी चली आ रही है। उसकी कमरपर एक बच्चा है, उसकी दुबली-पतली देह है और उसके आकारसे मालूम पड़ता है कि वह भिक्षा माँगनेके लिए बाजार आयी है ॥ २० ॥ २१ ॥ उसको यह दशा देखकर सीताने दासी द्वारा उसे अपने पास बुलवाया और पूछा कि तुम इस तरह बिना वस्त्र और आभूषणके बाजारमें किसलिए घूम रही हो ? ॥ २२ ॥ उसने कहा कि मेरे पतिदेव घरमें मुझे अकेली छोड़कर तीर्थ-यात्राके लिए चले गये। मैं अपने पिताकी बड़ी दुलारी बेटी थी। इसलिए अपना घर छोड़कर पिताके पास गयी तो वहाँ पिताजी वृद्धावस्थाके कारण परलोक चले गये थे ॥ २३ ॥ अवन्तीपुरीमें मेरे पिताके कई छोटे-छोटे बच्चे अर्थात् मेरे भाई हैं, किन्तु मेरा तथा बच्चोंका पालन करनेवाला इस संसारमें कोई नहीं है ॥ २४ ॥ इसी कारण हे जनकात्मजे ! मेरे पास वस्त्र और आभूषण नहीं हैं, जिन्हें मैं पहनूँ। इस प्रकार उसकी बातें सुनकर सीताने एक बार रामकी ओर देखा और अपने सब वस्त्राभूषण उतारकर उस विप्रपत्नीको

पूर्वाधिकानलंकारान् स्वदेहे जानकी पुनः । दधार दिव्यवासांसि हेमतंतूद्भवानि सा ॥२८॥
लक्ष्मण ब्राह्मणी गत्वा सीतावाक्यं न्यवेदयत् । ददौ तस्यै लक्ष्मणोऽपि हेममुद्रास्तथैव सः ॥२९॥
सीतावक्याल्लक्ष्मिता मृषा मेने न तद्वचः । कः समर्थो रामराज्ये मृषां वक्तुं भवेदिति ॥३०॥
अथ सीताऽपि सौमित्रिं स्वां दासीं प्रेष्य वै तदा । अयोध्यायां तथा राष्ट्रे घोषयामास दुन्दुभिम् ॥३१॥
सप्तद्वीपेषु सर्वत्र पृथग्वर्षेषु सादरम् । काचिन्नारी पुमान् वापि विना सद्वस्त्रभूषणैः ॥३२॥
दृष्टश्चारैर्मया ज्ञातो यद्देशे यत्पुरे कदा । तद्राजश्चास्तु मे दण्डो रामस्यापि विशेषतः ॥३३॥
इति मच्छिक्षितं ज्ञात्वा स्वकोशैः स्वांयराष्ट्रके । वस्त्रालङ्कारभूषाभिर्भूषणीया द्विजादयः ॥३४॥
सप्तद्वीपनृपतयश्चेत्थं सीतासुशिक्षितम् । गजदुन्दुभिघोषेण श्रुत्वा चक्रुस्तथैव च ॥३५॥
तदारभ्य जगत्यां न कश्चिद्विगतभूषणः । नारी वा पुरुषो वाऽऽसीत् कुत्राप्यवनिजामयात्॥३६॥
एवं नानाकौतुकानि भूम्यां सीताऽकरोन्मुदा । अथ रामः सभां गत्वा पुनर्यामे चतुर्थके ॥३७॥
चकार राजकर्माणि धर्मेणैव स्वबन्धुभिः । नटनाटकवेश्यानां कौतुकानि महांति च ॥३८॥
ददर्श स सभामध्ये स्तुतो मागधवंदिभिः । ततः सर्वान्विसृज्याथ ययौ सीतागृहं प्रभुः ॥३९॥
सायसंध्यादिकं कृत्वा हुत्वा होमं यथाविधि । ततो गंधादिभिः पूज्य ब्राह्मणांश्चापि राघवः ॥४०॥
नानोपहारनैवेद्यं दत्त्वा तेभ्यः स्वयं प्रभुः । कृत्वोपहारं श्रीरामः श्रुत्वा पौराणिकीं कथाम् ॥४१॥
कीर्तनैर्हरिदासानां वेश्यानां नर्तनैरपि । पौरोदिताभिर्वार्त्ताभिर्गायकानां च गायनैः ॥४२॥
सार्धयामां निशां नीत्वा ययौ निद्रास्थलं शनैः । ततो रत्नप्रकाशैः स जगाम जानकीं प्रति ॥४३॥

दे दिये और कहा कि तुम लक्ष्मणके पास चली जाओ और उनसे मेरे आज्ञानुसार एक लाख स्वर्णमुद्रा ले लो। 'बहुत अच्छा' कहकर वह ब्राह्मणी लक्ष्मणके पास गयी ॥ २५–२७ ॥ इसके अनन्तर सीताने फिर उससे दूने गहने पहन लिये और सुवर्णके तारोंसे बने हुए बहुतसे सुन्दर वस्त्रोंको भी धारण किया ॥ २८ ॥ उधर ब्राह्मणी लक्ष्मणके पास गयी और सीताकी आज्ञा सुनायी। लक्ष्मणने जानकीके कथनानुसार उसे एक लाख स्वर्णमुद्रायें दे दीं ॥२९॥ ब्राह्मणीकी बातपर लक्ष्मणको कुछ भी संदेह नहीं हुआ। क्योंकि रामचन्द्रजीके राज्यमें किसीको झूठ बोलनेका साहस ही कैसे हो सकता था ॥ ३० ॥ इसके पश्चात् सीताने लक्ष्मणके पास एक दासी द्वारा यह कहला भेजा कि मेरी आज्ञासे अयोध्याके समस्त राज्यमें ढिंढोरा पिटवा दो और सातों द्वीपों तथा भिन्न-भिन्न देशोंमें भी कहला दो कि कोई स्त्री और पुरुष ऐसा न दिखायी दे कि जिसके शरीरपर बढ़िया वस्त्र और आभूषण न हों ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ मेरे गुप्तचर इस बातकी टोह लेनेको सर्वत्र घूमते रहें। यदि कहीं किसी देश या किसी राष्ट्रमें कोई वस्त्राभूषणविहीन देखा जायगा तो उस देशके राजाको मेरा तथा रामचन्द्रजीकी आज्ञाके अनुसार घोर दण्ड भुगतना पड़ेगा ॥ ३३ ॥ मेरी यह आज्ञा सुनकर सब राजे अपने देशकी प्रजाको अपने खजानेके द्रव्यसे उत्तम वस्त्राभूषण तैयार करवाकर बँटवा दें। समस्त ब्राह्मणादि द्विजातियोंको अच्छे-अच्छे वस्त्र-अलङ्कारोंसे अलंकृत करायें ॥ ३४ ॥ तदनुसार सातों द्वीपोंके नृपतियोंने राजदुन्दुभि द्वारा घोषित सीताजीकी उस घोषणाको सुन-सुनकर विधिवत् उसका पालन किया ॥ ३५ ॥ तबसे साताके भयसे जगतीतलमें कोई ऐसा मनुष्य नहीं दिखाई देता था, जो सुन्दर वस्त्राभूषण न पहने हो ॥ ३६ ॥ इस प्रकार सीताजीने पृथ्वीमण्डलमें न जाने कितने कौतुक किये। तदनन्तर चौथे प्रहर रामचन्द्र अपने भ्राताओंके साथ सभाभवनमें गये ॥ ३७ ॥ वहाँ धर्मपूर्वक राज्यके आवश्यक कार्य सम्पन्न किये। फिर नटोंके नाटक और वेश्याओंके विविध प्रकारके नृत्य देखे, बन्दीजनोंकी स्तुतियाँ सुनीं और सबको विदा करके फिर सीताजीके भवनको लौट गये ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ शामको संध्यादिक नित्यकृत्य करके विधिवत् हवन किया। गन्धादिक अनेक उपचारोंसे शिवजी तथा ब्राह्मणोंकी पूजा की ॥ ४० ॥ उन सबको विविध पकवानोंका नैवेद्य देकर स्वयं भोजन किया। पुराणोंकी कथायें सुनीं। तदनन्तर भगवद्भक्तोंका कीर्तन सुना और वेश्याओंके नृत्य देखे। जनपदवासियोंके कुशल-प्रश्न पूछे और

साऽपि प्रत्युज्जगामाथ रत्नदीपैः सखीयुता । ततः स सीतया रामः पर्यङ्के रत्नचित्रिते ॥४४॥
चकार सीतया क्रीडां रंजयामास जानकीम् । ततस्तौ दंपती निद्रां चक्रतुर्वीजितौ मुहुः ॥४५॥
दासीभिर्व्यजनैश्चित्रैश्चामरैर्हेमभूषितैः । एवं रामेण सा सीता सुखमाप पतिव्रता ॥४६॥
सीतया राघवश्चापि सुखमाप विशेषतः । एवं नानाकौतुकानि प्रत्यहं रघुनंदनः ॥४७॥
चकार सीतया सार्द्धं परिपूर्णमनोरथः । कदा चंद्रस्य ज्योत्स्नायामंगणे सद्म नः प्रभुः ॥४८॥
चकार सीतया निद्रां कदा प्रासादमस्तके । कदा प्रासादान्तरे वाऽपि गवाक्षपवनैः शुभैः ॥४९॥
सुखमाप कदा रामः कदा रहसि मंदिरे । कदा कनकशृङ्खलासवितानसुमंचके ॥५०॥
कदा द्राक्षामंडपाधो जलयंत्रसमीपतः । काचभूम्यां रुक्मभूम्यां मणिभूम्यां कदाऽपि वा ॥५१॥
स्फटिकादिसुभूम्यां हि कदा सुष्वाप राघवः । कदा स पुष्पके वाऽपि रंगशालान्तरे कदा ॥५२॥
कदा स चित्रशालायां कदोशीरमये गृहे । कदा पुष्पमये गेहे कदा रंभावने वरे ॥५३॥
कदा पुष्पवाटिकायां कदा वृक्षोर्ध्वसद्मनि । शृङ्खलावृक्षसंबद्धदोलके रत्नचित्रिते ॥५४॥
कदा काष्ठमये दिव्ये मंचके रत्नभूषिते । कदा चकार तुलसीवाटिकायां रघूत्तमः ॥५५॥
निद्रां जनकनंदिन्या सभायामथवा कदा । कदा द्वारोर्ध्वप्रासादे कदैकस्तंभसद्मनि ॥५६॥
कदा स्वगृहदेहल्यां कदा वृंदावनेऽपि च । एवं स सीतया रेमेऽयोध्यायां रघुनंदनः ॥५७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे विलासकाण्डे वाल्मीकीये
सीतारामयोर्दिनचर्यावर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

(रामके द्वारा देवांगनाओंको वरदान)

श्रीरामदास उवाच

एकदा राघवं द्रष्टुं तथा स्नातुं मधावपि । शिष्यैः समाययौ व्यासो मुनिभिः परिवेष्टितः ॥ १ ॥

गायकोंके गायन सुनते-सुनते आधी रात बिताकर वे शयनागारमें शयन करनेको चले। हीरे आदि रत्नों द्वारा प्रकाशित मार्गसे चलते हुए राम सीताके पास पहुँचे ॥ ४१-४३ ॥ सीता भी रत्ननिर्मित दीपोंके प्रकाशमें अपनी अनेक सखियोंके साथ रामचन्द्रके पास गयीं और राम सीताके साथ एक रत्नजटित पलङ्गपर बैठ गये ॥ ४४ ॥ रामने कुछ देर तक सीताको प्रसन्न करनेके लिए कुछ खेल किया। फिर दोनों सो गये और दासियाँ पंखा झलने लगीं ॥ ४५ ॥ इस तरह रामके द्वारा सीता तथा सीताके द्वारा राम विविध प्रकारका आनन्द लूटते रहे। जिनकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो चुकी थीं, ऐसे भगवान् रामचन्द्रजीकी यह नित्यकी दिनचर्या थी। उनके यहाँ नित्य ऐसे-ऐसे कौतुक हुआ करते थे। कभी विशाल भवनके आँगनमें, कभी प्रासादपर और कभी खिड़कीदार बढ़िया कमरेमें राम सोते थे ॥ ४६-४९ ॥ कभी जहाँ अनेक प्रकारके मणियोंकी शृङ्खलायें लटकती थीं, ऐसे चाँदनीवाले किसी एकान्त कमरेके सुन्दर मंचपर, कभी अंगूरकी झाड़ीके नीचे, कभी जलयंत्रके समीप, कभी काचभूमिपर और कभी स्फटिकादिसे निर्मित सुन्दर मणिभूमिपर रामचन्द्रजी शयन करते थे ॥ ५० ॥ ५१ ॥ कभी पुष्पक विमानपर, कभी रङ्गशालामें, कभी चित्रशालामें, कभी खसकी टट्टियोंवाले घरोंमें, कभी फूलोंके घरमें, कभी कदलीवनमें, कभी पुष्पवाटिकामें, कभी वृक्षके ऊपर बनी हुई झोपड़ीमें, कभी वृक्षमें बँधी जंजीरोंसे बने हुए झूलेपर, कभी काष्ठोंके बने हुए दिव्य मंचपर और कभी तुलसीकी बनी हुई वाटिकामें रामचन्द्रजी शयन करते थे ॥ ५२-५५ ॥ कभी रामचन्द्रजी सीताके साथ सभाभवनमें, कभी द्वारके किसी एक ऊँचे प्रासादपर, कभी केवल एक स्तम्भपर बने हुए मकानमें, कभी अपने घरकी देहलीपर और कभी वृन्दावनमें सीताके साथ शयन करते थे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते विलासकांडे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

समागतं मुनिं श्रुत्वा तं प्रत्युद्गम्य राघवः । ननाम शिरसा भक्त्या निनाय निजमंदिरम् ॥ २ ॥
दत्त्वा वरासनं तस्मै द्विजेभ्यश्चापि वै पृथक् । दत्त्वाऽऽसनानि दिव्यानि चकार पूजनं पृथक् ॥ ३ ॥
कामधेनूद्भवै रत्नैर्मणिभ्यां संभवैरपि । व्यासं तं भोजयामास मुनिभिर्जानकीपतिः ॥ ४ ॥
तांबूलं दक्षिणां दत्त्वा प्रबद्धकरसम्पुटः । पप्रच्छ कुशलं तस्मै व्यासाय रघुनन्दनः ॥ ५ ॥
सीता तं वीजयामास व्यासं सत्यवतीसुतम् । एतस्मिन्नन्तरे व्यासो रामाय कुशलं निजम् ॥ ६ ॥
निवेद्य पृष्ट्वा तत्क्षेमं तमाह कौतुकात्पुनः । राम राम महाबाहो यथा राज्यं त्वया भुवि ॥ ७ ॥
भुज्यते न तथाऽन्येन केनापि पृथिवीभृता । पुरा भुक्तं न कोऽप्यग्रे भोक्ष्यते पृथिवीपतिः ॥ ८ ॥
अन्यत्तेऽत्र महद्वैर्यमेकपत्नीव्रतं प्रति । दृष्ट्वातिविस्मयश्चित्ते जायते मे रघूत्तम ॥ ९ ॥
कः सहेतात्र तारुण्यकामदावानलं नृपः । पदस्थे यौवने चापि त्वमेवास्मिन्व्रते क्षमः ॥१०॥
इति व्यासवचः श्रुत्वा रामो व्यासं वचोऽब्रवीत् । मया त्रयः कृताः संति नियमा मुनिसत्तम ॥११॥
मुखाद्विनिर्गतं वाक्यमेकमेव विनिश्चितम् । न क्रियते मृषा तच्च नोच्यते ह्यपरं पुनः ॥१२॥
अन्यत्सीता विनाऽन्या स्त्री कौसल्यासदृशी मम । न क्रियते परा पत्नी मनसाऽपि न चिंतये ॥१३॥
तथा यं हन्तुमिच्छामि बाणेनैकेन कोपतः । निहन्यते तदैकेन नान्यं बाणं सृजाम्यहम् ॥१४॥
इत्थं त्रयः कृताः पूर्वं नियमास्त्वत्र भो मुने । सत्या एव भवंत्वग्रेऽखंडितास्तव वाक्यतः ॥१५॥
तथैवास्त्विति सोऽप्याह व्यासः श्रीराघवं तदा । पुनराह मुनिः श्रीमान् व्यासः श्रीराघवं प्रति ॥१६॥
एकपत्नीव्रतस्यास्य फलेनापरजन्मनि । त्वं कृष्णरूपेण बह्वीर्नारीर्भोक्ष्यसि राघव ॥१७॥
तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा विहस्य राघवोऽब्रवीत् । बह्वीश्च कामिनीर्भोक्तुं कृष्णरूपधरोऽप्यहम् ॥१८॥

श्रीरामदास बोले—एक बार रामचन्द्रजीका दर्शन करने तथा चैत्र रामनवमीको स्नान करनेके लिए अपने शिष्योंके साथ व्यासजी अयोध्यामें आये। उनके साथ बहुतसे मुनि भी थे ॥ १ ॥ मुनिका आगमन सुनकर राम स्वयं अगवानी करनेके लिए गये। उनके पास पहुँचकर रामचन्द्रजीने बड़ी भक्तिके साथ प्रणाम किया और अपने भवनमें ले गये ॥ २ ॥ उन्होंने व्यासजीको एक उत्तम आसनपर बिठाया। इसके पश्चात् अन्य ऋषियों एवं शिष्योंको भी सुन्दर आसनपर बैठाकर और विधिपूर्वक कामधेनु तथा रत्नों द्वारा उत्पन्न वस्तुओंसे उन मुनियोंकी अलग-अलग पूजा की और सब मुनियोंके साथ व्यासजीको रामने भोजन कराया ॥ ३ ॥ ४ ॥ बादमें तांबूल और दक्षिणा दी। तब रामने हाथ जोड़कर भगवान् व्याससे कुशल-मङ्गल पूछा ॥ ५ ॥ सीताजी उस समय व्यासजीको पंखा झल रही थीं। इसके बाद व्यासजीने रामको अपना कुशल-मङ्गल सुनाया और कहने लगे—हे महबाहो राम ! आप जैसा राज्य इस पृथ्वीपर कर रहे हैं, वैसा किसी राजाने नहीं किया और भविष्यमें भी कोई नहीं करेगा ॥ ६-८ ॥ इसके अतिरिक्त आप जैसे महिपालका एक पत्नीव्रत पालन करना देखकर मेरे मनमें तो बड़ा आश्चर्य होता है ॥ ९ ॥ इस जगत्में ऐसा कौन राजा है, जो तरुणाईमें कामरूपी दावानलको सहनेमें समर्थ हो। ऐसे ऊँचे पदपर रहकर जवानीके उमङ्गमें एकपत्नीव्रतधारी केवल आप ही हैं ॥ १० ॥ इस प्रकार व्यासजीकी बात सुनकर रामने कहा—हे मुनिसत्तम ! मैंने अपने लिए तीन नियम बना लिये हैं। एक यह कि—॥ ११ ॥ एक बार मेरे मुखसे जो बात निकल जाय, वह ध्रुव होती है। प्राणसङ्कट आनेपर भी बात नहीं बदलेंगे। दूसरी बात यह कि—सीताको छोड़कर संसारकी समस्त स्त्रियाँ मेरे लिये कौसल्याके समान माता हैं। दूसरी स्त्रीको मैं अपने मनसे भी नहीं सोचता ॥ १२ ॥ १३ ॥ तीसरी बात यह कि—मैं जिसे क्रोध करके मारना चाहता हूँ, उसपर केवल एक बाण छोड़ता हूँ। उसीसे उसे मार डालता हूँ, दूसरा बाण नहीं उठाता ॥ १४ ॥ हे मुनिराज ! ऐसा मैंने नियम बना रक्खा है। आपके आशीर्वादसे मेरे ये नियम अखंडित भावसे चल रहे हैं। वेदव्यासने कहा—हे राजन् ! जैसी आपकी इच्छा है, वैसा ही होगा। और सुनिये, जो आप इन जन्ममें एकपत्नीव्रतका पालन कर रहे हैं, इसके फलसे दूसरे जन्ममें आप बहुत-सी स्त्रियाँ पायेंगे ॥ १५-१७ ॥ इस कार व्यासजीकी बात सुनकर रामने कहा—हे महामुने !

द्वारिकायां यदाऽग्रे हि द्वापरे मुनिसत्तम । येन व्रतेन दानेन नियमेनाथवा मुने ॥१९॥
बहुनारीर्निश्चयेन प्राप्स्यामीति वदस्व माम् । इति रामवचः श्रुत्वा व्यासो राघवमब्रवीत् ॥२०॥
सम्यक्पृष्टं त्वया राम दानं ते प्रवदाम्यहम् । एकपत्नीव्रतादेव यद्यपि त्वं च स्त्रीर्बहु ॥२१॥
लभिष्यसि तथाप्यद्य दानं तव वदाम्यहम् । सीताभारसुवर्णेन मूर्तिमेकां रघूत्तम ॥२२॥
एवं षोडशमूर्तीश्च कारय त्वं पृथक् पृथक् । देहि त्वं सरयूनद्यास्तीरे विप्रेभ्य आदरात् ॥२३॥
वस्त्रालङ्कारभूषाद्यैर्दक्षिणाभिश्च ताः शुभाः । अनेन बहुनारीस्त्वं लभिष्यस्यन्यजन्मनि ॥२४॥
तथेति राघवश्चापि मूर्तीः कृत्वा मनोरमाः । ददौ ताः सरयूनद्यां ब्राह्मणेभ्यस्तु षोडश ॥२५॥
ततस्ते ब्राह्मणास्तुष्टा रामायाशीर्ददुर्मुदा । दत्तमेकगुणं राजन् सहस्रगुणितं पुरा ॥२६॥
अस्माकं वचनाद्दानफलं तव भविष्यति । षोडशस्त्रीसहस्राणि त्वं लभिष्यसि निश्चयात् ॥२७॥
तथास्त्वित्याह रामोऽपि ततो विप्रान्व्यसर्जयत् । प्रणम्य पूजितं व्यासं ददावाज्ञां रघूद्वहः ॥२८॥
अथैकदा रामचन्द्रः सीतया सरयूतटे । मधुमासे वस्त्रगेहे स्थितः क्रीडां चकार सः ॥२९॥
एतस्मिन्नंतरेऽयोध्यां नानादेशनिवासिनः । रामतीर्थे मधौ स्नातुं समाजग्मुः सहस्रशः ॥३०॥
सुरा यक्षाः किन्नराश्च गन्धर्वाः पन्नगा नगाः । वल्ल्यश्च सरितः सर्वास्तीर्थानि मुनयो नृपाः ॥३१॥
अप्सरसः पन्नगाश्च खगाः क्षेत्राणि वानराः । अथैका देवपत्न्यो ज्ञात्वाऽस्पृश्यां विदेहजाम् ॥३२॥
परस्परं ताः समेत्य निशीथे राघवं प्रति । समाजग्मुर्दिव्यवस्त्ररत्नाभरणभूषिताः ॥३३॥
रामसौंदर्यसंभ्रान्ताः कामबाणप्रपीडिताः । ता दृष्ट्वा रामदूतास्ते पप्रच्छू रक्षणस्थिताः ॥३४॥
यूयं किमर्थं संप्राप्ता निशीथेऽत्र भयावहे । कथयध्वं हि नः सर्वं मा शङ्कां कुरुतात्र हि ॥३५॥
ता ऊचू राघवं द्रष्टुं समायाता वयं स्त्रियः । अधुना चेद्राघवस्य दर्शनं न भविष्यति ॥३६॥

आगे द्वापरमें कृष्णरूपसे मैं बहुत सी स्त्रियोंके साथ भोग करूँगा सही, लेकिन वह कौन-सा ऐसा व्रत अथवा दान है, जिसको करनेसे मैं आगेके जन्ममें बहुत-सी नारियोंको पा सकूँगा ॥ १८ ॥ १९ ॥ व्यासदेवने कहा—हे राम ! आपने बहुत ठीक प्रश्न किया है। मैं आपको वह दान बतलाता हूँ। यद्यपि एक नारीव्रतके पुण्यसे ही आपको कितनी ही स्त्रियाँ मिलेंगी । तथापि वह दान बताये देता हूँ। सीताके समान भारके सुवर्णकी एक मूर्ति बनवाइये। फिर उसी तरह सोलह मूर्तियाँ तैयार करा लें और उन्हें विविध प्रकारके वस्त्रों-भूषणोंसे भूषित करके सरयू नदीके तटपर ब्राह्मणोंको दान दे दीजिये ॥ २०–२३ ॥ ऐसा करनेसे आप अगले जन्ममें बहुत-सी स्त्रियाँ पायेंगे ॥ २४ ॥ रामचन्द्रने उसे स्वीकार किया। तदनुसार उन्होंने सीताकी सोलह मूर्तियाँ बनवायीं और सरयू नदीके तटपर ब्राह्मणोंको दान दिया ॥ २५ ॥ उन ब्राह्मणोंने प्रसन्न होकर रामको यह आशीर्वाद किया कि आप इस समय जो कुछ हम लोगोंको दे रहे हैं, सो सहस्रगुणा होकर आपको प्राप्त हो ॥ २६ ॥ हम लोगोंके आशीर्वादसे आपको यह फल अवश्य प्राप्त होगा। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आपको भविष्यमें सोलह हजार स्त्रियाँ मिलेंगी ॥ २७ ॥ रामजीने भी कहा कि 'ठीक है, ऐसा ही हो' और उन विप्रोंकी तथा व्यासजीकी भली-भाँति पूजा करके विदा किया ॥ २८ ॥ एक बार राम चैत्रमासमें सरयू-तटपर सीताजीके साथ पटगृह (तम्बू) में विहार कर रहे थे। तभी चैत्र रामनवमीपर सरयूस्नान करनेके लिये हजारों यात्री अयोध्या आ पहुँचे ॥ २९ ॥ ३० ॥ बहुतसे देवता, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, पन्नग, पर्वत, नदियाँ, समस्त तीर्थ, मुनि, राजे, अप्सरायें, खग, क्षेत्र, वानर आदि वहाँ स्नान करनेके निमित्त आये। एक दिन देवताओंकी स्त्रियाँ, जब कि सीताजी मासिक धर्ममें थीं, तब आपसमें सलाह करके विविध प्रकारके वस्त्राभूषण पहनकर रामचन्द्रजीके पास गयीं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ वे सबकी सब रामके सौन्दर्यको देखकर पगली हो गयी थीं। उन्हें देखकर रक्षकोंने पूछा—॥ ३३ ॥ ३४ ॥ तुम लोग कौन हो ? आधी रातके समय यहाँ किस लिये आयी हो ? साफ-साफ बतला दो, घबड़ाओ नहीं ॥ ३५ ॥ उन्होंने कहा कि हम सब स्त्रियाँ रामचन्द्रको

जातो वधस्तदाऽस्माकं जीवितानि नदीजले । इति तासां वचः श्रुत्वा दूतास्ते राघवं जवात्॥३७॥
दास्या निवेदयामासुः स्त्रीवृत्तं तत्सविस्तरम् । श्रुत्वा दासीमुखाद्रामः सैकते मञ्चके स्थितः ॥३८॥
समाहूय स्त्रियः सर्वा ददर्श रघुनायकः । ताश्चापि दृष्ट्वा श्रीरामं मेनिरे कृतकृत्यताम् ॥३९॥
ततस्ता राघवं नत्वा लज्जयाऽधोमुखाः स्त्रियः । पीडिताः कामबाणैश्च तस्थुः श्रीरामसन्निधौ ॥४०॥
ताः पप्रच्छ राघवोऽप्यागमनस्याथ कारणम् । ता राघव तदा प्रोचुः सर्वं वेत्सि त्वमीश्वर ॥४१॥
ज्ञात्वा तासां रामचन्द्रो हृद्गतं प्राह ताः पुनः । एकपत्नीव्रतं मेऽस्ति चैतज्जन्मनि भोः स्त्रियः ॥४२॥
न ज्ञेयं मे मृषा वाक्यं गम्यतां स्वस्थलं जवात् । माऽभूदधर्मो मद्राज्ये राज्ञां वै निरयप्रदः ॥४३॥
इति राघववाग्बाणैर्भिन्नमर्मस्थलाः स्त्रियः । ययुर्मूर्छां क्षणादेव सिकतायां सहस्रशः ॥४४॥
ता मूर्छाविह्वला दृष्ट्वा रामो विह्वलमानसः । नारीः संतोषयन् प्राह हे नार्यः श्रूयतां मम ॥४५॥
वाक्यं खेदापहं वोऽद्य द्वापरे कृष्णरूपधृक् । अहं व्रजे भविष्यामि नन्दगोपेशपालिते ॥४६॥
तदा देवास्तु गोपाला भावि मद्वरदानतः । भविष्यन्ति सुरेशश्च नन्दस्तत्र भविष्यति ॥४७॥
भविष्यथ तदा यूयं गोपिकाः सकला व्रजे । युष्माकं पूरयिष्यामि यथेच्छं वाञ्छितं तदा ॥४८॥
रासक्रीडां हि युष्माभिः करिष्यामि न संशयः । वृन्दावने तु कालिंद्यां सैकते निशि वै चिरम् ॥४९॥
भवध्वं स्वस्थचित्ताश्च गच्छध्वं स्वस्थलं मुदा । इति रामवचोरूपसुधया जीविताः स्त्रियः ॥५०॥
किंचित्तुष्टहृदो रामं नत्वा जग्मुर्निजं स्थलम् । एतस्मिन्तरे तत्र मधुस्नानार्थमादरात् ॥५१॥
मायापुर्याः समायाता रम्या गुणवती शुभा ।

श्रीरामचन्द्र उवाच

का सा प्रोक्ता गुणवती किंशीला कस्य कन्यका ॥५२॥

देखनेके लिए आयी हैं। यदि इसी समय हमको रामके दर्शन नहीं मिलेंगे तो हम सब इस सरयू नदीमें कूदकर अपने प्राण दे देंगी। ऐसी बात सुनकर दूतगण तुरन्त रामके पास दौड़े ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ वहाँ पहुँचकर उन्होंने दासियों द्वारा रामचन्द्रजीके पास सब समाचार कहलाया और स्त्रियोंके उस वृत्तान्तको दासियोंने विस्तारपूर्वक रामको सुना दिया। दासियोंके मुखसे यह सुनकर रामने उन सब देवाङ्गनाओंको बुलवाया। पास पहुँचकर स्त्रियोंने भगवान्‌को देखा। देवाङ्गनाओंने उनकी उस सलोनी छविको देखकर अपनेको कृतकृत्य समझा ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ उन्होंने लज्जित होकर भगवान्‌को प्रणाम किया और कामबाणसे पीडित होकर वहाँपर बैठ गयीं ॥ ४० ॥ रामने उनके आगमनका कारण पूछा। उन्होंने कहा—आप सबके ईश्वर हैं, भला आपसे कौन बात छिपी रह सकती है। आप सब कुछ जानते हैं ॥ ४१ ॥ उनके मनकी बात जानकर रामने कहा—हे हे स्त्रियो! इस जन्ममें तो मैं एकपत्नीव्रतधारी हूँ ॥ ४२ ॥ मैं जो कह रहा हूँ, उसे मिथ्या मत समझना। अच्छा, अब तुम लोग अपने-अपने डेरेपर जाओ। ऐसा करो कि जिससे मेरे द्वारा किसी प्रकारका अधर्म न हो। क्योंकि जिस राजाके राज्यमें अधर्म होता है, उसे नरकगामी होना पड़ता है ॥ ४३ ॥ इस तरह रामकी बातें सुनकर कामबाणसे पीडित वे हजारों स्त्रियाँ क्षणभरमें मूर्छित हो गयीं ॥ ४४ ॥ उनको मूर्छित देखकर विह्वलमनस्क रामचन्द्रजी उनको सन्तोष देते हुए कहने लगे—हे नारियो! मेरी बात सुनो, इस तरह अधीर मत होओ ॥ ४५ ॥ जो मैं कहता हूँ, उसे सुनकर तुम्हारा सब खेद दूर हो जायेगा। द्वापरमें मैं कृष्णरूपसे गोपेश नन्द द्वारा पालित व्रजमें जन्म लूँगा। उस समय समस्त देवता मेरे आशीर्वादसे गोप होंगे, इन्द्र नन्दरूपसे जन्म लेंगे और तुम सब उन गोपालोंकी गोपियाँ होओगी। उस समय मैं तुम लोगोंकी समस्त कामनाएँ पूर्ण करूँगा ॥ ४६–४८ ॥ वृन्दावनमें यमुनाकी रेतीमें रात्रिके समय तुम लोगोंके साथ मैं रासक्रीड़ा करूँगा ॥ ४९ ॥ अब तुम लोग स्वस्थ होकर अपने-अपने स्थानको जाओ। इस तरह रामके वचनरूपी सुधासे जीवित और किंचित् सन्तुष्ट होकर वे अपने-अपने स्थानको लौट गयीं। इसके अनन्तर माया-

तद्वदस्व सविस्तारं कस्यासीत्प्रमदा पुरा । इति शिष्यवचः श्रुत्वा रामदासोऽब्रवीत्पुनः ॥५३॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विलासकाण्डे
देवपत्नीवरदानं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

(पिंगला वेश्याके कारण रामपर सीताका कोप)

श्रीरामदास उवाच

आसीत्कृतयुगस्यांते मायापुर्यां द्विजोत्तमः । आत्रेयो देवशर्मेति वेदवेदांगपारगः ॥ १ ॥
आतिथेयोऽग्निशुश्रूषी सौरव्रतपरायणः । सूर्यमाराधयन्नित्यं साक्षात्सूर्य इवापरः ॥ २ ॥
तस्यातिवयसश्चासीन्नाम्ना गुणवती सुता । अपुत्रः स स्वशिष्याय चन्द्रनाम्ने ददौ सुताम् ॥३॥
तमेव पुत्रवन्मेने स च तं पितृवद्वशी । तौ कदाचिद्वनं यातौ कुशेध्महरणाय वै ॥ ४ ॥
हिमाद्रिपादे वेगेन चेरस्तुस्तावितस्ततः । तावत्तौ राक्षसं घोरमपश्येतां पुरःस्थितम् ॥ ५ ॥
भयविह्वलसर्वाङ्गावसमर्थौ पलायितुम् । निहतौ रक्षसा तेन कृतांतसमरूपिणा ॥ ६ ॥
तौ तत्क्षेत्रप्रभावेण धर्मशीलतया पुनः । वैकुण्ठभुवनं यातौ नीतौ विष्णुगणैस्तदा ॥ ७ ॥
यावज्जीवं तु यत्ताभ्यां सूर्यपूजादिकं कृतम् । कर्मणा तेन सन्तुष्टो विष्णुस्ताभ्यां बभूव ह ॥ ८ ॥
शैवाः सौराश्च गाणेशा वैष्णवाः शक्तिपूजकाः । तमेव प्राप्नुवन्तीह वर्षापः सागरं यथा ॥ ९ ॥
एकः स पंचधा जातः क्रियया नामभिः किल । देवदत्तो यथा कश्चित्पुत्राद्याह्वाननामभिः ॥१०॥
ततश्च तौ तद्भवनाधिवासिनौ विमानयानौ रविवर्चसावुभौ ।
तत्तुल्यरूपौ हरिसन्निधानगौ दिव्यांगनाचन्दनभोगभोगिनौ ॥११॥

पुरीसे एक गुणवती नामकी सुन्दरी स्त्री वहाँ चैत्रस्नानके निमित्त आयी। विष्णुदासने पूछा—हे गुरो! वह गुणवती कौन थी, किसकी पुत्री थी और उसका शील-स्वभाव कैसा था? वह पहले किसकी स्त्री थी? सो कृपया विस्तारपूर्वक आप मुझे बतलाइए। इस प्रकार विष्णुदासकी बात सुनकर श्रीरामदासने फिर कहना आरम्भ किया ॥ ५०–५३ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते विलासकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

श्रीरामदासने कहा—बहुत दिनोंकी बात है कि जब सत्ययुगके अन्तमें मायापुरीमें सब वेदवेदांगपारङ्गत अत्रिगोत्रका देवशर्मा नामक एक ब्राह्मण रहता था ॥ १ ॥ वह अतिथिपूजक, अग्निसेवी, सूर्यकी आराधना करनेवाला तथा दूसरे सूर्यकी नाईं तेजस्वी था ॥ २ ॥ उसको वृद्धावस्थामें एकमात्र गुणवती नामकी कन्या प्राप्त हुई थी, उसके कोई पुत्र नहीं था। सो उसने गुणवतीका विवाह चन्द्र नामके अपने एक शिष्यके साथ कर दिया ॥ ३ ॥ देवशर्मा चन्द्रको पुत्रके समान मानता था। उसी तरह चन्द्र भी देवशर्माको अपने पिता सदृश समझता था। एक दिन वे दोनों कुशा तथा समिधा लानेके लिए जंगलमें गये ॥ ४ ॥ जाते-जाते वे दोनों हिमवान् पर्वतके समीप पहुँचे और इधर उधर घूमने लगे। उसी समय उन्होंने अपने सामने एक बड़े भारी राक्षसको देखा ॥ ५ ॥ उसे देखकर भयसे उनके अंग शिथिल हो गये, जिससे भागनेकी सामर्थ्य नहीं रही और यमराजके समान उस विकराल राक्षसने उनको मार डाला ॥ ६ ॥ वे दोनों उस क्षेत्रके प्रभाव तथा अपनी धर्मशीलतासे विष्णुलोक गये। विष्णुके गण उन्हें वहाँ लिवा ले गये थे ॥ ७ ॥ उन्होंने जन्मभर सूर्यादि देवताओंका पूजन किया था। इस कारण उनपर विष्णुभगवान् बहुत प्रसन्न हुए ॥ ८ ॥ इस संसारमें शैव, सौर, गाणेश, वैष्णव तथा शक्ति-पूजक ये सब भगवान्के समीप उसी तरह जाते हैं, जैसे वर्षाका जल समुद्रमें जाता है ॥ ९ ॥ वह अकेला ईश्वर-नाम और कर्मके प्रभावसे पाँच रूपोंमें विभक्त होता है। जैसे अकेला देवदत्त किसीका पुत्र, किसीका भाई, किसीका चाचा कहलाता है। लेकिन वास्तवमें वह देवदत्त ही रहता है ॥ १० ॥ इसके अनन्तर

ततो गुणवती श्रुत्वा रक्षसा निहतावुभौ । पितृभर्तृजदुःखार्ता विललाप भृशातुरा ॥१२॥
सा गृहोपस्करान्सर्वान्विक्रीय शुभकर्मकृत् । तयोश्चक्रे यथाशक्ति परलोकक्रियां तदा ॥१३॥
तस्मिन्नेव पुरे वासं चक्रे प्रसृतिजीविनी । विष्णुभक्तिपरा शांता सत्यशौचा जितेन्द्रिया ॥१४॥
व्रताष्टकं तया सम्यगाजन्ममरणात्कृतम् । एकादशीव्रतं सम्यक् सेवनं कार्तिकस्य च ॥१५॥
माघे चैत्रे माधवेऽपि स्नानानि प्रतिवत्सरम् । संमार्जनं विष्णुगेहे स्वस्तिकादिनिवेशनम् ॥१६॥
नित्यं विष्णोः पूजनं च भक्त्या तत्परमानसा । इत्थं व्रताष्टकं सम्यक् सा चकारातिभक्तितः ॥१७॥
एकदा सा गुणवती पौराणिकमुखेन हि । श्रुत्वा महत्फलं शिष्य साकेते सरयूजले ॥१८॥
चैत्रस्नानस्य कैवल्यदायकं जनसंयुता । ययौ श्रीरामनगरीं रामतीर्थेऽवसच्छुभा ॥१९॥
सैकदा राघवं द्रष्टुं सरयूसैकतस्थितम् । वासोगेहे रहः पत्न्या ययौ बंधुसमन्वितम् ॥२०॥
पूजापात्राणि हस्ताभ्यां बिभ्रती द्वारसंस्थिता । प्रतीहारेण रामाय वेदिता सा विवेश ह ॥२१॥
वासोगेहं ददर्शाथ सीतया रघुनायकम् । रत्नमंचकसलग्नं धृतार्धोकोपबर्हणम् ॥२२॥
क्रीडन्तं सारिभिः पाशैः सीतया लक्ष्मणेन च । कैकेयीतनयाभ्यां च सखीभिः परिवारितम् । २३॥
मयूरपिच्छसम्भूतचामरैः परिवीजितम् । रत्नचित्ररुक्मभवे नूपुरे पदयोर्वरे ॥२४॥
बिभ्रन्तं रशनां कट्यां रत्नरुक्मविभूषिताम् । रत्नरुक्मभवे दिव्यकङ्कणे करयोर्वरे ॥२५॥
बिभ्रन्तं भुजयोर्दिव्यकेयूरे रत्नभूषिते । कण्ठदेशे कौस्तुभं च हृदि चिंतामणिं शुभम् । २६॥
बिभ्रन्तं विविधान्हारान् रत्नमाणिक्यनिर्मितान् । तथाजालरुक्मजांश्च मुक्ताहारान् विचित्रितान् २७॥

वे दोनों वैकुण्ठभुवनमें रहने लगे । उन्हें विमानकी सवारी मिली थी और सूर्यके समान उनका तेज था। विष्णुके समान उनका रूप था और उनके शरीरमें दिव्य चन्दन लगा रहता था ॥ ११ ॥ इसके पश्चात् जब गुणवतीने सुना कि मेरे पिता और पति दोनों किसी राक्षस द्वारा मार डाले गये हैं। तब उसे अतिशय दुःख हुआ और वह विलाप करने लगी ॥ १२ ॥ फिर घरमें जो कुछ माल-मताह था, सब बेच डाला और अपनी शक्तिके अनुसार उनकी पारलौकिकी क्रिया पूर्णकी। तबसे वह भीख माँगकर खाती हुई उसी नगरमें रहकर अपना जीवन बिताने लगी। गुणवती विष्णुकी भक्ति करती हुई सत्य-शौच-जितेन्द्रियतादि गुणोंसे पूर्ण हो गयी ॥ १३ ॥ १४ ॥ उसने अपने जीवन भरमें केवल आठ व्रत किये थे। वह एकादशी व्रत, कार्तिकका सेवन, मार्गशीर्ष, चैत्र तथा माघमें प्रतिवर्ष स्नान किया करती थी। वह विष्णुके मन्दिरमें बुहारी देती तथा स्वस्तिकादि रचती थी ॥ १५ ॥ १६ ॥ भक्तिसे और सावधान हृदयसे वह नित्य विष्णुका पूजन करती थी। इस तरह इन आठों व्रतोंको श्रद्धासमेत करती रही। हे शिष्य! एक दिन उसने एक पौराणिकसे सुना कि चैत्रमासमें अयोध्याके सरयूजलका बड़ा माहात्म्य है और चैत्रमासमें तो वहाँ स्नान करनेसे सहज ही में मुक्ति मिल जाती है। यह सुनकर बहुतसे आदमियोंको साथ लेकर गुणवती चैत्रस्नानके लिए अयोध्या आयी और उसी पावन नगरीमें टिक गयी ॥ १७–१९ ॥ एक दिन गुणवती जहाँ सरयूकी रेतीमें रामचन्द्रजी डेरा डाले हुए थे, वहाँ जा पहुँची। उस समय रामचन्द्रजी पटगृहके किसी एकान्त कमरेमें लक्ष्मण और सीताके साथ बैठे थे। फाटकपर पहुँचकर गुणवतीने प्रतीहारी द्वारा सन्देश भेजा और स्वयं पूजापात्र हाथमें लिये बाहर ही खड़ी रही। प्रतीहारीके लौटनेपर वह अन्दर गयी ॥ २० ॥ २१ ॥ वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि रामचन्द्र सीताके साथ रत्नजटित मञ्चपर बैठे थे और तकिया लगी थी ॥ २२ ॥ भगवान् राम सीता, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न सारिका और पाँसेके साथ खेल रहे थे। सखियाँ चारों ओरसे घेरकर खड़ी थीं ॥ २३ ॥ मयूरके पखनोंके बने हुए पंखे चल रहे थे। उनके दोनों पाँवोंमें रत्नजटित नूपुर और कमरमें रत्नजटित मेखला पड़ी थी । दोनों हाथोंमें जड़ाऊ कंकण पड़े थे ॥ २४ ॥ २५ ॥ हाथोंमें सुवर्णके रत्नभूषित दिव्य केयूर थे । कंठमें कौस्तुभमणि तथा हृदयमें चिन्तामणि था। राम विविध रत्नोंके जड़ाऊ हार पहने थे। सुनहले तथा चित्र-विचित्र मोतियोंके हार उनके गलेमें पड़े थे ॥ २६ ॥ २७ ॥

तुलसीकाष्ठहारांश्च पुष्पहाननेकशः । प्रवालमणिहारांश्च शृङ्खलाः कांचनोद्भवाः ॥२८॥
पदकानि विचित्राणि रत्नमाणिक्यवंत्यपि । रंभाफलाब्जसदृशानलंकारान्विचित्रितान् ॥२९॥
रत्नमाणिक्यसंयुक्तान्मुकुरैरतिमंडितान् । नीलमारकतैश्चित्रान्रामनामांकितानपि ॥३०॥
अंगुलीष्वपि बिभ्रन्तं हस्तयोर्मुद्रिकाः शुभाः । रत्नमाणिक्यमुक्ताभिश्चित्रा रुक्मविनिर्मिताः ॥३१॥
रामनामांकिताश्चापि पवित्रा उज्ज्वला अपि । रत्नमुक्ताहेममये कर्णयोः कुंडले वरे ॥३२॥
बिभ्रन्तं महिसादृश्यानलंकाराननेकशः । बिभ्रन्तं रविसादृश्यं मुकुटं रत्नचित्रितम् ॥३३॥
नानामणिसमायुक्तं कलशैरतिशोभितम् । मुक्ताप्रवालवैदूर्ययुक्तं हेममयं वरम् ॥३४॥
एवं गुणवती रामं कोटिसूर्यसमप्रभम् । हेमवर्णं महारम्यं कंजपत्रायतेक्षणम् ॥३५॥
सोमाननं कंजहस्तं दृष्ट्वा तं प्रणनाम सा । तां समुत्थापयद्रामस्तया सम्यक् प्रपूजितः ॥३६॥
तद्दत्तैरुपहाराद्यैः सुप्रीतस्तां तदाऽब्रवीत् । वरं वरय मामद्य यत्ते मनसि वर्तते ॥३७॥
इति रामवचः श्रुत्वा सा तुष्टा राममब्रवीत् । राम राजीवपत्राक्ष यथेमास्ते सहस्रशः ॥३८॥
दास्यः संति तथा मां त्वमंगीकर्तुमिहार्हसि । इति तद्वचनं श्रुत्वा राघवः प्राह सस्मितः ॥३९॥
कथं त्वं ब्राह्मणी चेत्थं वदस्यद्य शुभव्रते । मत्सेवां कर्तुमिच्छाऽस्ति तव तर्हि वदाम्यहम् ॥४०॥
शृणुष्व त्वं गुणवति कृष्णरूपधरो ह्यहम् । द्वापरे द्वारकायां हि भविष्याम्यन्यजन्मनि ॥४१॥
भजिष्यसि तदा मां त्वं स्त्रीरूपेण न संशयः । सत्राजिद्देवशर्मा ते भविष्यति पिता पुनः ॥४२॥
यश्चन्द्रनामा सोऽक्रूरो भविष्यति सखा मम । सत्यभामेति नाम्ना त्वं भविष्यसि प्रिया मम ॥४३॥
तदा कुरुष्व दास्यं मे यत्ते मनसि वर्तते । इति रामवचः श्रुत्वा तुष्टा गुणवती मुहुः ॥४४॥
नत्वा श्रीराघवं सीतां ययौ सा स्वस्थलं प्रति । चैत्रस्नानानन्तरं सा हरिद्वारं ययौ जनैः ॥४५॥

वे तुलसीके काठकी माला, फूलोंकी माला, प्रवाल और मणिकी बनी माला पहने हुए थे। गलेमें विचित्र प्रकारके पदक पड़े थे, जिनमें रत्न और मणिका काम किया हुआ था। रंभाफल तथा कमलकी नाईं उनका आकार था। उनमें जगह-जगह रत्न और मणिसे जड़े हुए छोटे-छोटे शीशे लगे हुए थे। नील मस्तकमणिसे वह चित्र-विचित्र मालूम पड़ता था। उसमें जहाँ-तहाँ रामके नाम लिखे हुए थे ॥ २८-३० ॥ वे दोनों हाथोंकी उँगलियोंमें सुन्दर अंगूठियाँ पहने थे, वे भी रत्न-मुक्ता-माणिक आदिसे जटित एवं सोनेकी बनी हुई थीं ॥ ३१ ॥ उनमें भी रामका नाम लिखा था और वे अंगूठियाँ बड़ी पवित्र तथा उज्ज्वल थीं। रत्न तथा मुक्तासे जटित कुण्डल उनके कानोंमें झूल रहे थे। वे पृथ्वीके समान बहुतसे अलंकार तथा सूर्यके समान तेजस्वी हार धारण किये थे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ मुकुटमें विविध प्रकारके रत्नोंके कलश लगे रहनेसे वह और भी सुन्दर लग रहा था। उसमें भी जगह-जगह मुक्ता-प्रवाल-वैदूर्य आदिका सुन्दर काम बना हुआ था ॥ ३४ ॥ इस तरह करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी तथा सुवर्णकी भाँति जिनका वर्ण था, कमलपत्रके समान जिनके नेत्र थे, चन्द्रमाके समान जिनका मुख था और कमलकी भाँति हाथ थे, ऐसे रामको गुणवतीने देखा और प्रणाम किया। रामचन्द्रने उसे उठाया और उसने विविध प्रकारके उपचारोंसे रामकी पूजा की ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ और भेंट दिये। जिससे राम अतिशय प्रसन्न होकर कहने लगे कि "तुम्हारी जो इच्छा हो सो वर माँग लो" ॥ ३७ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर वह बोली—हे राजीवपत्राक्ष राम! जैसे आपकी ये हजारों दासियाँ हैं, वैसे ही मुझे भी अपनी एक दासी बना लीजिए। उसकी ऐसी बात सुनकर मुसकराते हुए राम कहने लगे—॥ ३८ ॥ ३९ ॥ तुम ब्राह्मणी होकर ऐसी अशुभ बात क्यों कह रही हो? यदि तुम्हें मेरी सेवा करनेकी इच्छा है, तो मैं बतलाता हूँ ॥ ४० ॥ हे गुणवती! सुनो, द्वापरयुगमें मैं कृष्णरूप धारण करके अवतार लूँगा। तब द्वारिकामें तुम मेरी स्त्री होकर इच्छानुसार मेरी सेवा करोगी। इसमें कुछ भी संशय नहीं है। उस समय देवशर्मा यादवश्रेष्ठ सत्राजित् तुम्हारा पिता होगा, चन्द्र अक्रूरनामका मेरा मित्र होगा और तुम सत्यभामा नामकी मेरी पटरानी होओगी

आयुःशेषं समाप्याथ गंगायां कुणपं निजम् । सत्वरं स्नानसमये त्यक्त्वा नाकं चिरं गता ॥४६॥
ततः कालांतरेणासीत्सत्राजित्तनया भुवि । बभूव पत्नी कृष्णस्य द्वापरे द्वारकापुरि ॥४७॥
एकदा पिंगलानाम्नी वेश्या रात्रौ विनिद्रितम् । सीतया दिव्यपर्यंके ययौ सा राघवं रहः ॥४८॥
विहाय नूपुरादीनि स्वनवंति पदोः शनैः । इतस्ततो निरीक्षन्ती दिव्यवस्त्रादिभूषिता ॥४९॥
सीताभयात्प्रकंपन्ती कामबाणप्रपीडिता । मण्डिता पुष्पमालाद्यैर्भूषणैरतिशोभिता ॥५०॥
अज्ञाता द्वारपालैः सा निद्रितैर्मञ्चकं ययौ । स्वकरेण पदस्पर्शं कृत्वा रामं प्रबोधयत् ॥५१॥
तदा प्रबुद्धः श्रीरामस्तां ददर्श पुरःस्थिताम् । सा धृत्वा तत्पदे गाढं प्रार्थयामास राघवम् ॥५२॥
राम राजीवपत्राक्ष मया तेऽद्यापराधितम् । त्वं क्षमस्व कृपां कृत्वा मयि चानुग्रहं कुरु ॥५३॥
तत्तस्या वचनं श्रुत्वा ज्ञात्वा तां कामपीडिताम् । तां समाश्वसितुं प्राह राघवः कञ्जलोचनाम् ॥५४॥
एकपत्नीव्रतं मेऽस्मिन्भवे त्वं वेत्सि पिंगले । अतस्त्वत्कामपूर्त्यर्थं वदामि तच्छृणुष्व हि ॥५५॥
यदाऽहं मथुरामग्रे व्रजाच्छ्रीकृष्णरूपधृक् । यास्यामि मातुलं कंसं हत्वा स्थास्यामि तत्पुरीम् ॥५६॥
तदा भजिष्यसि त्वं मां कुब्जारूपेण पिंगले । गच्छ दासस्वरूपेण तिष्ठ त्वं कंसवेश्मनि ॥५७॥
आयुःक्षये त्विमं देहं विसृज्य बहुभुक्तकम् । इत्युक्त्वा पिंगलां रामो ददावाज्ञां भयात्स्त्रियाः ॥५८॥
शिक्षयामास द्वारस्थान्दासान्दासीर्विनिद्रिताः । ततः सीतां प्रबोध्याथ वेश्यावृत्तं न्यवेदयत् ॥५९॥
तच्छ्रुत्वा जानकी रुष्टा त्यक्त्वा पर्यङ्कमुत्तमम् । राघवं प्राह सक्रोधा कथं नाहं प्रबोधिता ॥६०॥
तदैवाद्य मया ज्ञातमेकपत्नीव्रतं मृषा । भुक्त्वादौ पिंगलां तूष्णीं त्वयाऽहं बोधिता ततः ॥६१॥

॥ ४१–४३ ॥ उस समय जैसी तुम्हारी इच्छा होगी, वैसा मेरा सेवा कर लेना। इस प्रकार रामकी बात सुनकर गुणवती बहुत प्रसन्न हुई ॥ ४४ ॥ वह रामचन्द्र तथा सीताको प्रणाम करके अपने डेरेपर लौट गयी। इस प्रकार वह अयोध्यामें चक्रस्नान करके अपने साथियोंके साथ हरिद्वार चली गयी। वहाँपर उसकी जितनी आयु शेष थी, उसे समाप्त करके एक दिन स्नान करनेको गंगाजी गयी और वहीं शरीर त्यागकर स्वर्गलोकको चली गयी ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ जन्मान्तरमें गुणवती सत्राजित्की पुत्री होकर जन्मी और कृष्णकी पत्नी बनकर द्वारकामें निवास करने लगी ॥ ४७ ॥ एक दिन पिंगला नामकी एक वेश्या रात्रिके समय रामचन्द्रके पास पहुँची। उस समय राम सीताके साथ एक दिव्य पलंगपर सो रहे थे। वह वहाँ गयी ॥ ४८ ॥ नूपुरादिक बोलनेवाले आभूषणोंको पैरोंसे उतारकर वह सुन्दर कपड़े पहने भयवश इधर-उधर देखती जा रही थी। सीताके भयसे उसके अङ्ग-अङ्ग काँप रहे थे और वह कामके बाणसे पीडित थी। उसने सुगन्धित फूलोंकी माला तथा अनेक आभूषण पहन रक्खा था, जिससे वह बड़ी सुन्दरी मालूम पड़ती थी ॥ ४९ ॥ ५० ॥ जिस समय द्वारपालगण निद्रित थे, तब चुपकेसे भीतर चली आयी और रामचन्द्रके मंचके पास जा पहुँची। उसने हाथसे रामके पैर छूकर उन्हें जगाया ॥ ५१ ॥ राम जाग गये और सामने उस पिंगला वेश्याको देखा, तब वह जोरसे रामके पैरोंको पकड़कर प्रार्थना करने और कहने लगी—हे राम! हे राजीवपत्राक्ष! आज मैंने बड़ा भारी अपराध किया है। मेरे ऊपर कृपा करके आप उसे क्षमा कर दें और मेरेपर दया करें ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ उसकी यह बातें सुनकर रामने समझ लिया कि यह कामपीडित है। तब उसे आश्वासन देनेके लिए कहने लगे—॥ ५४ ॥ हे पिंगले! तुम जानती होगी कि इस जन्ममें मैं एकपत्नीव्रतधारी हूँ। अतएव तुम्हारी कामवासनाकी शान्तिका जो उपाय बतलाता हूँ, उसे सावधान होकर सुनो ॥ ५५ ॥ जिस समय कृष्णरूपधारी मैं व्रजसे मथुरा जाऊँगा और कंसको मारकर उस पुरीमें ठहरूँगा। तब हे पिंगले! तुम कुब्जाके रूपसे मेरी सेवा करोगी। जाओ, मेरे आशीर्वादसे तुम इस शरीरकी शेष आयु बिताकर कंसके यहाँ दासी होओगी। स्त्री (सीता) के भयसे रामने केवल इतना कहकर उसे विदा कर दिया ॥ ५६–५८ ॥ तब उन्होंने द्वारपालों तथा दास-दासी आदिकोंको जगाकर डाँटा-फटकारा और सीताको जगाकर उस वेश्याका समस्त वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ५९ ॥ सो सुना तो क्रोधित होकर जानकी शय्या छोड़कर उठ खड़ी हुईं और रामसे कहने लगीं कि वह आयी थी, तब तुमने मुझे

तां विसृज्य चिरादद्य ज्ञातुं ते चरितं मया । मृषा त्वया प्रतिज्ञातं पुरा व्यासमुनेः पुरः ॥६२॥
एकपत्नीव्रतं मेऽस्ति कौसल्यासदृशी मम । अन्या स्त्रीति मृषा वाक्यं कत्थसे त्वं पुनः पुनः ॥६३॥
क्व गतं तद्वचस्तेऽद्य क्व गतं तद्व्रतं तव । अद्यैव जीवितं स्वीयं त्यजामि सरयूजले ॥६४॥

वेश्यायाः पृष्ठसंलग्नां शय्यां नाद्य स्पृशाम्यहम् ।
वेश्यासक्तं स्वामिनं त्वां दृष्ट्वा द्वेषो भवेत्त्वयि ॥६५॥

मृतायां मयि यद्भाव्यं वेश्यासक्तस्य ते भवेत् । वेश्यासक्तपार्थिवस्य चिरं राज्यं न तिष्ठति । ६६॥
इत्युक्त्वा राघवं नत्वा देहत्यागार्थमुद्यता । ययौ वेगेन सरयूं वस्त्रगेहात्तडिन्प्रभा ॥६७॥
गच्छंतीं राघवो दृष्ट्वा मुक्तकच्छः प्रदुद्रुवे । संभ्रमाज्जानकीं धृत्वा भुजाभ्यां सैकतेऽमले ॥६८॥
अब्रवीन्मधुरं वाक्यं मा रुष त्वं विदेहजे । शृणुष्व वचनं मे त्वं दिव्यं ते प्रवदाम्यहम् ।६९॥
मयि ते शपथैरद्य प्रत्ययो न भविष्यति । दुर्घटं यद्ब्रवीषि त्वं तद्दिव्यं प्रवदाम्यहम् ॥७०॥
वद शीघ्रं जनकजे मा क्रोधं भज भामिनि । इति रामवचः श्रुत्वा जानकी प्राह राघवम् ॥७१॥

जानक्युवाच

राम ब्रूयामहं किं ते येन दिव्यं ददामि ते । अनलस्त्वन्मुखोद्भूतो नयने शशिभास्करौ ।७२॥
वासस्ते जलधौ राम पृथ्वीयं विधृता त्वया । शेषस्तल्पस्तवैवाय लक्ष्मणस्तिष्ठते बहिः ॥७३॥
शास्त्राणि त्वन्नखजानि सर्वाण्यत्र न संशयः । यद्यत्पश्यामि तत्सर्वं तव रूपं न संशयः । ७४॥
न दुर्घटं ते दिव्यार्थं किंचित्पश्यामि राघव । किं ब्रूयामधुना तेऽत्र येन मे प्रत्ययो भवेत् ॥७५॥
एकमेवास्ति जानेऽहं तत्कुरुष्व रघूत्तम । इदानीमेव स्वगुरुं समाहूय रघूद्वह ॥७६॥

क्यों नहीं जगाया ? ॥ ६० ॥ आज तुम्हारा एकपत्नीव्रत मालूम हो गया । पिंगला आयी, उसके साथ चुपकेसे भोग कर लिया और जब वह चली गयी, तब मुझे जगाया ॥ ६१ ॥ बहुत दिनों बाद आज तुम्हारी यह पोल खुली है। उस दिन व्यासमुनिके सामने जो एकपत्नीव्रत धारण करनेकी कसम खायी थी, सो सब ढोंग था ॥ ६२ ॥ "नहीं सीते !" रामने नम्रतापूर्वक कहा--"वास्तवमें मैं एकपत्नीव्रतधारी हूँ। तुम्हारे सिवाय संसारकी समस्त स्त्रियाँ मेरे लिए कौसल्याके समान हैं। तुम व्यर्थ मेरे ऊपर रुष्ट हो रही हो" ॥ ६३ ॥ तब सीता और भी तमककर कहने लगीं कि तुम्हारी वह प्रतिज्ञावाली बात कहाँ गयी ? वह व्रत कहाँ गया ? आज ही मैं सरयूके जलमें डूबकर अपना जीवन समाप्त कर दूँगी ॥ ६४ ॥ मैं ऐसी शय्यापर अब नहीं सोना चाहती, जिसपर कि एक वेश्याकी पीठ लग चुकी है। तुम्हारे जैसे वेश्यासक्त राजाकी जो दशा होनी होगी, सो होगी। लेकिन यह समझ रखियेगा कि वेश्यासक्त राजाका राज्य ज्यादा दिन नहीं ठहरता ॥६५॥६६॥ इतना कहकर सीताने रामको प्रणाम किया और अपना देह त्याग करनेके लिए पटगृहसे बाहर होकर सरयूके तीरकी ओर चलीं ॥ ६७ ॥ सीताको जाती देखकर राम भी पीछेसे दौड़ पड़े और जलके पास पहुँचनेसे पहले ही उन्हें रेतीमें पकड़ लिया ॥ ६८ ॥ तब वे मीठी-मीठी बातोंमें कहने लगे-हे विदेहजे ! मेरे ऊपर इतना नाराज मत होओ। मेरी बात सुनो-यदि मेरी बातपर विश्वास न हो तो मैं शपथ खानेको भी तैयार हूँ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ हे सीते ! बोलो, क्या कहती हो ? हे भामिनि ! इस तरह क्यों कोप करती हो ? इस प्रकार रामकी बात सुनकर सीताने कहा—मैं तुम्हें कुछ कहती तो हूँ नहीं। फिर तुम कसम किसलिए खानेको तैयार हो ? क्यों दिव्य परीक्षा कराना चाहते हो ? फिर यदि मैं दिव्य परीक्षा लेना भी चाहूँ, तो कैसे लूँ ? अग्नि तुम्हारे मुखसे निकला है, सूर्य-चन्द्रमा तुम्हारे दोनों नेत्र हैं, समुद्र तुम्हारा निवासस्थान है, पृथ्वीको तुमने अपने ऊपर रख छोड़ा है, शेष तुम्हारी शय्या है, सो वे भी लक्ष्मणके रूपमें बाहर बैठे हुए हैं ॥ ७१-७३ ॥ इसमें कोई सन्देह नहीं है कि समस्त शास्त्र तुम्हारे नखसे जायमान हुए हैं, मैं जिधर देखती हूँ, जो कुछ भी देखती हूँ, सब तुम्हारा ही रूप है ॥ ७४ ॥ मैं कोई भी दुर्घट दिव्य (कसम) नहीं देखती,

पदयोस्तस्य शपथं कृत्वा ते प्रत्ययो मम । भविष्यति न संदेहस्तं कुरुष्व रघूत्तम ॥७७॥
इति सीतावचः श्रुत्वा प्रहस्य रघुनन्दनः । दास्या सौमित्रिमाहूय वसिष्ठं प्रैषयत्तदा ॥७८॥
लक्ष्मणः शिबिकारूढः पुरद्वारान्तिकं ययौ । रामवाक्याद्द्वारपोऽपि द्वारमुद्घाटयत्तदा ॥७९॥
गत्वा पुर्यां लक्ष्मणः स गुरोर्द्वारि स्थितोऽभवत् । वसिष्ठद्वारपो दास्या वसिष्ठाय न्यवेदयत् ॥८०॥
निशीथे लक्ष्मणं द्वारमागतं त्विति संभ्रमात् । अरुंधत्या वसिष्ठोऽपि तच्छ्रुत्वा विह्वलोऽभवत्॥८१॥
निशीथे लक्ष्मणश्चात्र किमर्थं मां समागतः । इति विह्वलचित्तः स समाहूयाथ लक्ष्मणम् ॥८२॥
पप्रच्छ गमनस्याथ कारणं मुनिसत्तमः । त नत्वा लक्ष्मणः प्राह रामेण स्मारितोऽसि हि ॥८३॥
कारणं नात्र जानामि समुत्तिष्ठाधुनैव हि । शिबिकाऽधिष्ठिता द्वाराद्बहिस्ते मुनिसत्तम ॥८ ॥
इति श्रुत्वा रामवाक्यमरुंधत्याऽतिप्रार्थितः । शिबिकायामरुंधत्या स्थित्वा शीघ्रं ययौ गुरुः ॥८५॥
तत्पृष्ठे शिबिकासंस्थः सौमित्रिस्त्वरितो ययौ । रत्नदीपप्रकाशश्च वेष्टितो वेत्रपाणिभिः ॥८६ ।
समागतं गुरुं ज्ञात्वा प्रत्युद्गम्य रघूत्तमः । दत्त्वासनं वसिष्ठाय सीतया प्रणनाम सः ॥८७।
कृत्वा पूजां सविस्तारं वस्त्रैराभरणादिभिः । कथयामास सकलं पिंगलावृत्तमादरात् ॥८८॥
कथयामास सीतायाः क्रोधवाक्यान्यपि प्रभुः । दिव्यं दातुं न किंचिच्च दृष्टाऽन्यत् सीतया मम ॥८९॥
विनिश्चितं ते पदयोर्दिव्यं तत्ते वदाम्यहम् । मनसाऽपि न भुक्ता सा मया वेश्याऽथवा परा ॥८०॥
इदं चेद्वचनं सत्यं स्पृशामि तर्हि त्वत्पदे । इत्युक्त्वा राघवः शीघ्रं वसिष्ठपदयोः करौ ॥९१॥
स्वीयौ संस्थाप्य शिरसा प्रणनाम गुरुं पुनः । तद्दृष्ट्वा लज्जिता सीता ज्ञात्वा शुद्धं रघूत्तमम् ॥९२॥

जिससे मेरे मनमें विश्वास हो ॥ ७५ ॥ बहुत कुछ सोच-विचारकर मैंने तो यही निश्चय किया है और आप भी वही करें। अभी अपने गुरु (वसिष्ठ) को बुलाकर यदि आप उनके पैरोंकी शपथ खा लें तो मुझे विश्वास हो जायगा। हे रघूत्तम! ऐसा करनेसे मेरे हृदयमें किसी प्रकारका संशय नहीं रह सकेगा। अतएव आप यही करें ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ इस प्रकार सीताका कथन सुनकर रामने तुरन्त दासी द्वारा लक्ष्मणको बुलवाया और वसिष्ठजीके पास भेजा ॥ ७८ ॥ पालकीपर चढ़कर लक्ष्मण राजद्वारपर पहुँचे। वहाँ पहरेदारोंसे फाटक खुलवाकर तुरन्त गुरु वसिष्ठके दरवाजेपर जा पहुँचे। द्वारपालने दासी द्वारा लक्ष्मणके आनेका सन्देश वसिष्ठके पास भेजवाया ॥ ७९ ॥ ८० ॥ आधी रातके समय लक्ष्मणको द्वारपर आना सुनकर वसिष्ठ तथा अरुन्धती दोनों घबराहटसे विह्वल हो गये ॥ ८१ ॥ वे सोचने लगे कि आधी रातको लक्ष्मण मेरे पास क्यों आये। इस प्रकार व्याकुलताके साथ उन्होंने लक्ष्मणको अपने पास बुलाया ॥ ८२ ॥ और आनेका कारण पूछा। वसिष्ठको प्रणाम करके लक्ष्मणने कहा कि आपको रामने स्मरण किया है ॥ ८३ ॥ आपको बुलानेका कारण मैं भी नहीं जानता। हाँ, यह जानता हूँ कि आप अभी उठकर मेरे साथ चल दें। बाहर पालकी तैयार है ॥ ८४ ॥ इस तरह लक्ष्मण द्वारा रामकी बात सुनकर अरुन्धतीके प्रार्थना करनेपर वसिष्ठ उन्हें भी अपने साथ लिये हुए झटपट चल दिये ॥ ८५ ॥ उनके पीछे-पीछे लक्ष्मणकी पालकी चली। जिस समय वसिष्ठ राजभवनमें पहुँचे, तब चारों ओर रत्नोंके दीपकोंका प्रकाश फैल रहा था। अनेक पहरेदार अपनी-अपनी नौकरीपर डटे हुए थे और बहुतसे वसिष्ठको घेरकर साथ चल रहे थे ॥ ८६ । जब रामने सुना कि गुरुजी आ गये हैं तो उठ तथा थोड़ी दूर आगे जाकर मिले और सीताके साथ उनको प्रणाम किया। फिर एक दिव्य आसनपर बिठाकर वस्त्राभूषणोंसे विधिवत् पूजन करनेके पश्चात् उस पिंगला वेश्याका वृत्तान्त कह दिया ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ फिर वह बातें भी बतलायीं, जो क्रोधमें सीताने रामको कही थीं। फिर कहने लगे कि सीताको विश्वभरके किसी भी शपथपर विश्वास नहीं है ॥ ८९ ॥ अन्तमें आपके चरणोंकी शपथ खिलानेपर राजी हुई हैं। मैंने कभी मनसे भी उस वेश्या तथा अन्य किसी स्त्रीके साथ व्रतभङ्ग नहीं किया है ॥ ९० ॥ यदि मेरी ये बातें सच हैं तो मैं आपके पैर छूकर शपथ खाता हूँ। ऐसा कहकर झटपट रामने वसिष्ठजीके पैर पकड़ लिये ॥ ९१ ॥ फिर अपना मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। यह देखकर सीता लज्जित हो

प्रणम्य मेऽपराधं तं क्षमस्वेति प्रसादयत् । ततः सीता गुरोः पत्न्यै ददौ चित्राणि भक्तितः ॥९३॥
भूषणानि वराण्येव दिव्यवस्त्राणि सादरम् । रामेण पूजितश्चापि वसिष्ठः पूर्ववत्क्रिया ॥९४॥
सहितः शिविकासंस्थस्तुष्टः स्वीयगृहं ययौ । ततः सीतां समालिंग्य रामो निद्रां चकार सः ॥९५॥
प्रभाते पिंगलां दास्या समाहूयाथ जानकी । धिग्धिक्कृत्वा सखीभिस्तां ताडयामास बंधिताम्॥९६ ।
सीतोवाच तदा वेश्यां यस्मान्मेद्यापराधितम् । भविष्यसि त्रिवक्रा त्वं मथुरायां हि कुत्सिता ॥९७॥
वेश्यया प्रार्थिता प्राह कृष्णस्त्वामुद्धरिष्यति ॥९८॥
श्रुत्वा तां बंधितां वेश्यां मोचयामास राघवः ।
एवं नानाकौतुकानि चकार रघुनंदनः । सीतां संरञ्जयामास स्वचरित्रैर्मनोरमैः ॥९९॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विलासकांडे सीताऽलंकारवर्णनं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः

(सूर्यग्रहणपर रामकी कुरुक्षेत्रयात्रा)

श्रीरामदास उवाच

एकदा सीतया रामः कुरुक्षेत्रं स्वबंधुभिः । ययौ सूर्योपरागे वै स्नातुं पुष्पकसंस्थितः ॥ १ ॥
तत्र देवाः सगन्धर्वाः किन्नराः पन्नगा ययुः । नानाऽऽश्रमेभ्यो मुनयः पार्थिवाश्च सहस्रशः ॥ २ ॥
तत्र स्नात्वा रवौ ग्रस्ते राघवः सीतया सह । चकार नानादानानि हस्त्युष्ट्ररथवाजिनाम् ॥ ३ ॥
ततस्ते पार्थिवाः सर्वे नानोपायनपाणयः । ययुस्ते राघवं द्रष्टुं राजपत्न्यश्च जानकीम् ॥ ४ ॥
अथ सीता राजपत्नीः समालिंग्य वरासने । सखीभिर्मुनिदारैश्च सुखं चोपाविशत्तदा ॥ ५ ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सीतया पूजिता स्थिता । लोपामुद्राऽब्रवीद्वाक्यं जानकीं रंजयन्मुदा ॥ ६ ॥
हे सीते कंजनयने धन्याऽसि गजगामिनि । किंचिद्वर्णय रामस्य पौरुषं श्रुतितोषदम् ॥ ७ ॥

गयीं और उन्हें विश्वास हो गया कि रामचन्द्रजी परम पवित्र हैं ॥ ९२ ॥ तब सीताने प्रणाम करके रामसे प्रार्थना की कि मेरी भूल थी, आप मुझे क्षमा करें। इसके अनन्तर सीताने गुरुपत्नी अरुन्धतीको विविध प्रकारके आभूषण वस्त्रादि दिये । रामचन्द्रजीने फिर वसिष्ठजीकी पूजा की। थोड़ी देर बाद गुरुपत्नीके साथ-साथ पालकीपर बैठकर वसिष्ठजी अपने घरको चले गये। तदनन्तर राम भी सीताका आलिंगन करके सो रहे ॥ ९३-९५ ॥ सबेरे दासी द्वारा सीताने पिंगला वेश्याको बुलवाया। उसे बार-बार धिक्कारा और बाँधकर सखियोंके हाथों पिटवाया ॥ ९६ ॥ इसके पश्चात् उस वेश्यासे कहा कि तूने आज बड़ा भारी अपराध किया है। इससे भविष्यमें जब तू जन्म लेगी, तब तेरे शरीरमें तीन कूबड़ होंगे और तुझसे सब घृणा करेंगे ॥ ९७ ॥ तदनन्तर उस वेश्याने अनेक प्रकारसे सीताकी प्रार्थना की। तब सीताने कहा—'अच्छा, जा तेरा उद्धार कृष्णके हाथों होगा'। उधर जब रामने सुना कि पिंगला बँधी पिट रही है, तब उसे छुड़वा दिया ॥ ९८ ॥ इस तरह राम विविध प्रकारके कौतुक करके अपने मनोहर चरित्रोंसे सीताको प्रसन्न करते रहते थे ॥ ९९ ॥ इति श्रीमदानन्द-रामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते विलासकाण्डे अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीरामदासने कहा—एक बार रामचन्द्रजी सीता तथा अपने समस्त भ्राताओंके साथ पुष्पक विमानपर सवार होकर सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्र गये ॥ १ ॥ वहाँ समस्त देवता, गन्धर्व, किन्नर, पन्नग तथा कितने ही आश्रमोंके मुनि और हजारों राजे आये हुए थे ॥ २ ॥ जब सूर्यग्रहण लगा, उस समय सीताके साथ रामने स्नान किया तथा हाथी-घोड़े-ऊँट और रथ आदि दान दिया ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर वहाँ आये हुए राजे अनेक प्रकारके उपहार ले-लेकर रामका दर्शन करने आये और रानियाँ भी सीताको देखनेके लिए उनके साथ आयीं ॥ ४ ॥ जब रानियाँ सीताके पास पहुँचीं तो उन्होंने बड़े आदरके साथ उन्हें उनकी सखियों और मुनिपत्नियोंके साथ एक सुन्दर आसनपर बिठलाया ॥ ५ ॥ सीताके विधिवत् पूजन कर लेनेके बाद मुनिपत्नियोंमेंसे अगस्त्यपत्नी लोपामुद्रा सीताको प्रसन्न करती हुई कहने लगीं—॥ ६ ॥ हे कमलनेत्रे

तत्तस्या वचनं श्रुत्वा वर्णयामास जानकी । स्वपाणिग्रहणात्पत्युः कुरुक्षेत्रावधिं कथाम् ॥ ८ ॥
लोपामुद्राऽपि तच्छ्रुत्वा विहस्य प्राह जानकीम् । सर्वं योग्यं कृतं सीते राघवेण महात्मना ॥ ९ ॥
एक एव वृथा क्लेशः कृतस्तेनेति वेद्म्यहम् । महान् श्रमः सेतुबंधे किमर्थं हि कृतः पुरा । १० ॥
कथं न कथितं कुम्भजन्मने राघवेण हि । क्षणात्तं चुलुके कृत्वा पीत्वेमं लवणार्णवम् ॥ ११ ॥
शुष्कं कृत्वा कपीन्मार्गोऽभविष्यदत एव हि । वृथा ते श्रमिताः सर्वे वानराः सेतुबंधने ॥ १२ ॥
इति तस्या वचः श्रुत्वा सगर्वं जानकी तदा । लोपामुद्रां विहस्याह लोपामुद्रे पतिव्रते । १३ ।
सम्यक्कृतं राघवेण यत्सेतोर्बंधनं वरम् । तत्कारणं वदाम्यद्य शृणु त्वं स्वस्थमानसा ॥ १४ ॥
शृण्वंत्विमाः समायाता मद्वाक्यं पार्थिवस्त्रियः । बाणेन शोषणीयश्चेत्सागरो राघवेण हि ॥ १५ ॥
भविष्यति तदा हत्या बहवश्चेति शंकितम् । उल्लंघनीयो जलधिश्चेद्रामेण विहायसा ॥ १६ ॥
तदा रामं मनुष्यं च कदा ज्ञास्यति रावणः । हनुमत्पृष्ठमारुह्य गन्तव्यं चेत्परे तटे ॥ १७ ॥
लंकां प्रति तदा रामपौरुषं किं वदन्ति हि । यदि तीर्त्वा प्रगन्तव्यं बाहुभ्यां राघवेण हि ॥ १८ ॥
नोल्लंघनीयं विप्रस्य मूत्रं चेति विशंकितम् । चेन्मुनिः कुंभजन्मा वै प्रार्थनीयः पतिस्तव ॥ १९ ॥
रामेण चुलुकं कर्तुं तदा तल्लवणांबुधेः । मंत्रितं राघवेणापि तदा हृदि सविस्तरम् ॥ २० ॥
पीतोऽयं जलधिः पूर्वं श्रुतं क्रोधादगस्तिना । मूत्रद्वाराद्बहिस्त्यक्तो यस्मात्क्षारत्वमागतः ॥ २१ ॥
सर्वथा मूत्रवत्क्षारः स कथं पातुमर्हति । स ऋषिर्मम वाक्येन चुलूकं तु करिष्यति ॥ २२ ॥
भविष्यति ममाकीर्तिः सर्वत्र जगतीतले । मूत्रपानं ब्राह्मणेन स्वकार्यार्थं निजोक्तिभिः ॥ २३ ॥
कारितं येन रामेण सोऽयं चेतीति शंकितः । न मुनिं प्रार्थयायास राघवो धर्मतत्परः ॥ २४ ॥
एवं संमंत्र्य रामेण स्वकीर्त्यै सेतुबंधनम् । कृतं केनापि न कृतं न कोऽप्यग्रे करिष्यति ॥ २५ ॥
येन रामेण जलधौ शिलाः संतारिताः पुरा । सोऽयं दाशरथी रामश्चेति ख्यातिं गतो भुवि ॥ २६ ॥

सीते ! हे गजगामिनि ! तुम धन्य हो। हमारे कानोंको आनन्द देनेवाले रामजीके किसी पौरुषका तो वर्णन करो ॥ ७ ॥ लोपामुद्राके यह कहनेपर सीताने अपने विवाहसे लेकर कुरुक्षेत्रकी यात्रा पर्यन्तका समस्त वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ८ ॥ लोपामुद्राने कथा सुनकर सीतासे कहा—हे सीते ! महात्मा रामचन्द्रने अबतक जो कुछ किया, वह बहुत ठीक किया। केवल एक बातमें चूक गये और उन्होंने इतना क्लेश उठाया। मैं नहीं समझ पाती कि लङ्कापर चढ़ाई करते समय रामने समुद्रमें सेतु बनानेका कष्ट क्यों किया ॥ ९ ॥ १० ॥ उन्होंने अगस्त्यजीसे क्यों नहीं कह दिया। वे एक अंजलीमें भरकर क्षणभरमें उस खारे समुद्रको पी जाते ॥ ११ ॥ समुद्र सूख जाता और कपियोंको लङ्का जानेके लिए मार्ग मिल जाता। नाहक सेतु बाँधनेके लिए उन्होंने उन वानरोंको कष्ट दिया ॥ १२ ॥ इस प्रकार लोपामुद्राकी बात सुनकर सगर्व वाणीमें सीताजी कहने लगीं—हे पतिव्रते लोपामुद्रे ! रामने जो सेतु बाँधा, वह बहुत अच्छा किया। मैं उनका कारण भी बतलाती हूँ, आप सावधान होकर सुनें ॥ १३ ॥ १४ ॥ यहाँ आयी हुई ये राजरानियाँ भी शान्तचित्तसे मेरी बात सुनें। यदि राम अपने बाणसे समुद्रको सुखाते तो बहुतसे प्राणियोंकी हत्या होनेकी आशङ्का थी। यदि राम आकाशमार्गसे समुद्रको लांघ जाते तो रावण और वानर यह कैसे जानते कि राम मनुष्य हैं। यदि हनुमानजीकी पीठपर बैठकर चले जाते ॥ १५–१७ ॥ तब रामका क्या पराक्रम देख पड़ता ? यदि हाथोंसे तैरते हुए उस पार चले जाते ॥ १८ ॥ तब उन्हें यह ख्याल होता कि ब्राह्मणके मूत्रको कैसे लाँघूँ। यदि आपके पति अगस्त्यसे उसे पीनेकी प्रार्थना करनेकी सोचते तो यह विचार होता कि एक बार अगस्त्य इस समुद्रको पी चुके हैं और मूत्रमार्गसे बाहर निकाला है। इसीसे यह खारा है ॥ १९–२१ ॥ उसी मूत्रके समान खारे समुद्रको अगस्त्यजी कैसे पियेंगे। मान लिया जाय कि रामके कहनेसे अगस्त्यजी समुद्रको पी जाते तो संसारमें रामका बड़ा अपयश होता कि रामने अपना मतलब साधनेके लिए एक ब्राह्मणको मूत्र पिलाया। इन्हीं बातोंको सोचकर धर्मात्मा रामने अगस्त्यसे समुद्र पीनेको नहीं कहा ॥ २२–२४ ॥ इन बातोंको खूब अच्छी तरह सोच-विचारकर ही रामचन्द्रजीने अपनी कीर्तिवृद्धिके लिए समुद्रपर सेतु

इति सीतावचोभिः सा लोपामुद्रा जिता तदा । तूष्णीमास क्षणं नारीसभायां लज्जिताऽभवत् ॥२७॥
ततो विहस्य वैदेही लोपामुद्रां प्रपूजयत् । मुनिपत्नीश्च संपूज्य प्रार्थयामास तां मुहुः ॥२८॥
मयाऽपराधितं तेऽद्य तत्क्षमस्व पतिव्रते । स्नेहात्प्रसंगतश्चोक्तं त्वदग्रे रामपौरुषम् । २९॥
स्वद्भर्तुराशिषा रामे पौरुषं चेति वेद्म्यहम् । इति संप्रार्थ्य ताः सर्वा मुनिपत्नीर्व्यसर्जयत् ।।३०॥
पूजिता नृपपत्नीभिर्ययौ सीता रघूत्तमम् । ततो रामोऽपि पृथ्वीशैः पूजितो गजवाजिभिः ॥३१॥
ययौ स नगरीं तुष्टः सीतया गरुडे स्थितः । ये ये समागतास्तत्र कुरुक्षेत्रे रविग्रहे ॥३२॥
ते सर्वे स्वस्थलं जग्मू रामदर्शनहर्षिताः । रामोऽपि नगरीमध्ये पुरस्त्रीभिर्मुहुः पथि ॥३३॥
नीराजितः कुंभदीपैर्ययौ निजगृहं मुदा । रेमे जनकनन्दिन्या चिरकालं यथासुखम् ॥३४॥
एवं रामेण साकेतपुर्यामवनिकन्यया । नानाक्रीडाकौतुकानि कृतान्यतिमहान्त्यपि ॥३५॥
यथा कृता राघवेण सुखं क्रीडा च सीतया । तथैवोर्मिलया रेमे लक्ष्मणोऽपि यथासुखम् ॥३६॥
मांडव्या भरतश्चापि रेमे रामो यथा स्त्रिया । तथैव श्रुतकीर्त्याऽपि शत्रुघ्नः क्रीडनं व्यधात् ॥३७॥
एवं ते स्वीयपत्नीभिः पौराः क्रीडाः प्रचक्रिरे । तथैव विविधद्वीपान्नानादेशनिवासिनः ॥३८॥
रेमिरे तेऽपि पत्नीभिः स्वीयाभिर्मुदिताः सुखम् । सीतया राघवो रेमे यथा गौर्या स शंकरः ॥३९॥
रामे शासितराज्येऽत्र न कोऽपि जगतीतले । परदाररतो वेश्यागामी मादकवस्तुभुक् ॥४०॥
न दरिद्री नैव रोगी चिन्ताग्रस्तो न विह्वलः । न पापात्मा जडो नासीन्न चौरो नापि हिंसकः ॥४१॥
एवं शिष्य मया प्रोक्तं विलासचरितं वरम् । सीतया रामचंद्रस्य साकेते सौख्यदं नृणाम् ॥४२॥
विलासकाण्डमेतद्वै यः पठिष्यति मानवः । प्रातः काले च मध्याह्ने निशायां रामसन्निधौ ॥४३॥

बंधवाया था। जिस कामको न तबतक किसीने किया था और न आगे कोई कर सकेगा, उसे उन्होंने कर दिखाया ॥ २५ ॥ अब सब कोई परस्पर कहते हैं कि जिन रामने समुद्रमें शिला तैरा दिया था, वे ही ये दशरथके पुत्र राम हैं ॥ २६ ॥ इस प्रकार सीताकी बातोंसे लोपामुद्रा परास्त हो गयीं। थोड़ी देरके लिए उस नारीसभामें चुपचाप बैठी हुई वे कुछ लज्जित-सी हो गयीं ॥ २७ ॥ फिर हँसकर सीताने लोपामुद्रा तथा अन्यान्य मुनिपत्नियोंकी पूजा की और बारम्बार प्रार्थना करके कहा—॥ २८ ॥ मैंने जो धृष्टता की है, उसे आप क्षमा करें। आपके स्नेह तथा प्रसंग आ जानेपर मैंने इस प्रकार रामके पौरुषका वर्णन किया है ॥ २९ ॥ हमारे पतिदेव राममें जो कुछ पराक्रम है, वह सब आपके स्वामी अगस्त्यजीके ही आशीर्वादसे है। इस प्रकार विनती करके सीताने उन मुनिपत्नियोंको विदा किया ॥ ३० ॥ तदनन्तर राजरानियों द्वारा पूजित होकर सीता रामके पास चली गयीं। राम भी उन देश-देशान्तरसे आये हुए राजाओंसे कितने ही हाथी-घोड़ोंका उपहार लेकर पूजित हुए और प्रसन्नतापूर्वक सीताके साथ गरुड़पर सवार होकर अयोध्याको चल पड़े ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्रमें जो लोग स्नान करने आये थे, वे रामके दर्शनसे हर्षित हो-होकर अपने-अपने घरोंको वापस गये। राम भी अयोध्यामें पहुँचकर नागरिक स्त्रियोंके द्वारा नीराजित होते हुए अपने महलोंमें गये। इसके बाद फिर बहुत कालपर्यन्त रामचन्द्रजी सीताके साथ विहार करते रहे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इस तरह रामने सीताके साथ अयोध्यामें विविध प्रकारके क्रीड़ा-कौतुक किये ॥ ३५ ॥ जिस तरह राम सीताके साथ आनन्द करते थे, ठीक उसी तरह लक्ष्मण उर्मिलाके साथ सुखपूर्वक विलास करते थे ॥ ३६ ॥ उसी तरह भरत मांडवीके साथ तथा शत्रुघ्न श्रुतकीर्तिके साथ क्रीड़ा करते थे ॥३७॥ पुरवासी-गण तथा विविध द्वीप और देशके निवासी भी अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक भोग-विलास करते थे। राम तो सीताके साथ उसी तरह आनन्द करते थे, जैसे कैलासपर पार्वतीके साथ शंकरजी स्वच्छंद विहार करते हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ रामके शासनकालमें कोई भी मनुष्य दूसरेकी स्त्रियोंपर आसक्त तथा वेश्यागामी नहीं था। न कोई किसी तरहकी मादक वस्तु ही खाता-पीता था ॥ ४० ॥ रामके राज्यमें कोई दरिद्र, रोगी, चिन्तातुर, विह्वल, पापी, मूर्ख, चोर अथवा हिंसक नहीं था ॥ ४१ ॥ हे शिष्य ! मैंने तुम्हें इस प्रकार रामका सुन्दर विलासकाण्ड कह सुनाया। जिसमें राम और सीताका सबके लिए सुखद चरित्र भरा हुआ है ॥४२॥

स ज्ञेयो राघवः साक्षाद्भुवि मानवरूपधृक् । विलासकाण्डपठनाद्धनार्थी धनमाप्नुयात् ॥४४॥
भोगानाप्नोति भोगार्थी पुत्रार्थी पुत्रमाप्नुयात् । विलासकाण्डमेतद्वै रामभक्त्येकमानसः ॥
यः शृणोति नरः कश्चित्स सुखं प्राप्नुयाद्भुवि ॥४५॥
विलासकाण्डश्रवणान्नरः पापात्प्रमुच्यते । विलासकाण्डं परमं रम्यं जनमनोहरम् ॥४६॥
आनन्ददायकं चित्रं श्रुतिसौख्यप्रदं महत् । ये पठंत्यथ शृण्वंति सर्वान्कामान् लभंति ते ॥४७॥
धर्मार्थी प्राप्नुयाद्धर्मन्धिनार्थी प्राप्नुयाच्छ्रियम् । कामानाप्नोति कामार्थी मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात् ॥
निशायां मंचके स्थित्वा निजपत्न्या पठेत्तु यः । विलासकांडं षण्मासं तस्य पुत्रो भविष्यति ॥४९॥
अथवा मंचके व्यासं सन्निवेश्याथ तत्पुरः । द्वितीये मंचके स्थित्वा स्वयं दयितया सह ॥५०॥
यः शृणोति निशायां हि विलासाख्यं मनोरमम् । एतत्कांडं पवित्रं च नवमासान् पुनः पुनः ॥५१॥
तस्यापुत्रस्य पुत्रः स्यान्नात्र कार्या विचारणा । पुत्रार्थमेव श्रोतव्यं मञ्चके ह्युपविश्य च ॥५२॥
श्रोतव्यं नान्यकामेषु मञ्चकस्थैर्नरैः कदा । विलासकाण्डमेतद्वै स्त्रीकामाद्यः पठेन्नरः ॥५३॥
स भार्यां प्राप्नुयाद्रम्यां नवमासैर्न संशयः । कुमारी शृणुयादेतत्पत्यर्थं काण्डमुत्तमम् ॥५४॥
पुनः पुनस्तु षण्मासं लभिष्यति वरं पतिम् । विलासकांडमेतद्वै याः शृण्वन्ति वराः स्त्रियः॥५५॥
सौभाग्यलक्ष्म्या न कदा ता विहीना भवन्ति हि । भर्तुरायुष्यवृद्ध्यर्थं स्त्रीभिश्च स्नानपूर्वकम् ॥
श्रवणीयं विलासाख्यमेतत्काण्डं मनोरमम् ॥५६॥
रम्यंविचित्रं मधुरं पवित्रं विलासकांडं हि यथेक्षुदंडम् । पाठादिना पापचयप्रदंडं धर्मैककुंडं भवरोगदंडम् ॥
इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे विलासकाण्डे कुरुक्षेत्रयात्रावर्णनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

जो मनुष्य इस विलासकाण्डका प्रातःकाल, मध्याह्न अथवा रात्रिके समय रामचन्द्रके समीप पाठ करता है, उसे मनुष्यरूप धारण किये हुए साक्षात् राम ही समझना चाहिये। धनकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य विलास-काण्डका पाठ करनेसे धन पाता है, भोगार्थी भोग पाता है पुत्रार्थी पुत्र पाता है और जो प्राणी इसको सुनता है, वह संसारमें सुखी रहता है ॥ ४३-४५ ॥ विलासकाण्डको श्रवण करनेसे पापी पापसे छूट जाता है। यह विलासकाण्ड बड़ा सुन्दर और भक्तोंके मनको चुरानेवाला काण्ड है ॥ ४६ ॥ यह आनन्ददायक एवं विचित्र कथाओंसे भरा हुआ है। इसको सुननेसे कानोंको आनन्द मिलता है, जो लोग इसे सुनते अथवा पाठ करते हैं, उनकी सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं ॥ ४७ ॥ इससे धर्मार्थी धर्म पाता, धनार्थी धन पाता, कामार्थी काम पाता तथा मोक्षार्थी मोक्ष पाता है ॥ ४८ ॥ रात्रिके समय जो मनुष्य छः महीनेतक अपनी स्त्रीके साथ बैठकर इस विलासकाण्डका पाठ करेगा, उसको पुत्र मिलेगा ॥ ४९ ॥ एक मञ्चपर व्यासको बैठाकर उसके आगे स्वयं अपनी पत्नीके साथ एक दूसरे मंचपर बैठकर रात्रिके समय जो इस मनोरम विलासकाण्डको नौ महीनेतक बार-बार सुनता है, उस अपुत्रके भी पुत्र होता है। इसमें किसी तरहका सन्देह करनेकी आवश्यकता नहीं है। पुत्रकी कामनावालेको मंचपर बैठकर इसे सुनना चाहिए ॥ ५०-५२ ॥ किसी दूसरी कामनावालेको मंचपर बैठकर यह कथा न सुननी चाहिए। जो स्त्रीकी इच्छासे इसका पाठ करता है, उसको नौ महीनेमें स्त्री अवश्य मिल जाती है। यदि कुमारी कन्या पतिकी कामनासे इस काण्डको सुने तो उसे सुन्दर पति मिलता है। जो सधवा स्त्रियाँ इसको सुनेंगी वे कभी भी अपनी सौभाग्यलक्ष्मीसे विहीन न होंगी अर्थात् उनका सोहाग अटल रहेगा। समस्त नारियोंको अपने पतिकी आयुष्य बढ़ानेके लिए स्नान करके यह विलासकाण्ड सुनना चाहिये ॥ ५३-५६ ॥ क्योंकि यह विलासकाण्ड ऊँखके दण्डकी तरह मीठा, विचित्र, मधुर तथा पवित्र है। यह पाठादि करनेवालोंके पापोंको मार भगानेवाला और धर्मका एकमात्र कुण्ड तथा भवरोगके लिये दंडके समान है। इस कांडमें नौ सर्ग तथा ६७८ श्लोक हैं ॥ ५७ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदा-नन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकायां विलासकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

*** इति श्रीमदानन्दरामायणे विलासकाण्डं समाप्तम् ***

श्रीसीतापतये नमः

श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं—

आनन्दरामायणम्

'ज्योत्स्ना'ऽऽह्वया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

जन्मकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

(रामका उपवनदर्शन)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः सीतया स साकेते बंधुभिश्चिरम् । क्रीडां चकार विविधां दुर्लभां त्रिदशैरपि ॥ १ ॥
एकदा रघुवीरस्तु सोऽन्तर्वत्नीं विदेहजाम् । ज्ञात्वा धात्रीमुखात्तुष्टो ददौ दानान्त्यनेकशः ॥ २ ॥
ब्राह्मणान् भोजयामास कोटिशः प्रत्यहं मुदा । चकार नानालंकारान्नवीनान् रत्ननिर्मितान् ॥ ३ ॥
सीतायै दिव्यवासांसि हेमतन्तूद्भवानि च । हरितान्यथ पीतानि रक्तानि चित्रितान्यपि ॥ ४ ॥
कारयित्वाऽथ कुशलैर्जनैः सूक्ष्माणि राघवः । विस्तृतान्यतिदीर्घाणि पुष्पवत्सुलघून्यपि ॥ ५ ॥
महर्घाण्यतिरम्याणि ददौ पत्न्यै मुदान्वितः । अथ मासे द्वितीयेऽह्नि रामो द्विजवरैः सह ॥ ६ ॥
वसिष्ठेन पुंसवनसंस्कारं विधिपूर्वकम् । स चकारोत्सवैर्दिव्यैः सीतायाः परमादरात् ॥ ७ ॥
सुमेधां जनकं चापि समाहूय सविस्तरम् । जनकः परमसंतुष्टः सोऽन्तर्वत्नीं निजां सुताम् ॥ ८ ॥
दृष्ट्वा पुंसवनोत्साहे सीतारामौ प्रपूजयत् । नानालंकारवासांसि हेमतन्तूद्भवानि च ॥ ९ ॥
हरितान्यथ पीतानि सूक्ष्माण्यथ लघूनि च । विस्तीर्णान्यथ दीर्घाणि सीतायै स ददौ मुदा ॥ १० ॥

श्रीरामदास कहने लगे—श्रीरामचन्द्रजी सीता भरतादिक भ्राताओंके साथ चिरकाल तक देवताओंको भी दुर्लभ क्रीड़ाएँ करते रहे ॥ १ ॥ एक दिन रामचन्द्रजीने किसी धायके मुखसे सीताके गर्भिणी होनेका समाचार सुना तो विविध प्रकारका दान दिया ॥ २ ॥ तबसे लेकर प्रतिदिन करोड़ों ब्राह्मणोंको हर्षपूर्वक रामचन्द्रजी भोजन कराते थे। अनेक प्रकारके रत्नोंसे जटित नवीन अलंकार, सुवर्णके तारोंके कामदार दिव्य वस्त्र और हरे, लाल तथा छींटके कपड़े बनाकर रामने सीताजीको दिये, जो बड़े लम्बे चौड़े और फूलसे हल्के थे ॥ ३-५ ॥ वे वस्त्र बहुमूल्य और सुन्दर थे। जब एक मास व्यतीत हो गया और दूसरे महीनेका दूसरा दिन आया, तब रामचन्द्रजीने गुरु वसिष्ठ तथा बहुतसे ब्राह्मणोंके साथ विधिपूर्वक और सोत्साह सीताका पुंसवनसंस्कार किया ॥ ६ ॥ ७ ॥ उस पुंसवनसंस्कारके उत्सवमें रामचन्द्रजीने सीताके पिता बुद्धिमान् जनकजी तथा माता सुमेधाको भी बुलाया। यह समाचार सुनकर जनकजी बहुत प्रसन्न हुए और सीताको गर्भिणी देखकर पुंसवनसंस्कारके समय ही सीता तथा रामचन्द्रजीकी पूजा की, नाना

हस्त्युष्ट्ररथतुरगान् दासीदासान्मनोरमान् । शिबिकाश्चापि वासांसि ददौ रामाय सादरम् ॥११॥
एवं संपूज्य श्रीरामं सीतां च जनकः स्त्रियाः । सम्मानितो राघवेण ययौ स्वां मिथिलां पुरीम् ॥१२॥
अथ रामः सीतया स रेमे सन्तुष्टमानसः । गर्भातिभाराक्रांता सा सीता संन्यस्तभूषणा । १३॥
पांडुवर्णानना दीना कृशाऽपि नितरां बभौ । एकदा राघवं धात्र्या सूचयामास जानकी ॥१४॥
ममेच्छाऽऽराममध्येऽद्य रंतुमस्ति त्वया सह । तथोपवनमध्येऽपि साकेतनगराद्बहिः ॥१५॥
तद्धात्र्यास्यात्प्रियावाक्यं श्रुत्वा चाहूय लक्ष्मणम्। रामोऽब्रवीच्छुभां वाचं मधुरां स्मितपूर्विकाम् ॥१६॥
हे सौमित्रेऽद्य सीताया जाताऽऽरामस्पृहास्ति हि । मया रंतुं ततस्त्वं हि सूचितोऽसि मयाऽधुना ॥१७॥
तथेति रामवाक्यं सोऽप्युररीकृत्य लक्ष्मणः । गत्वा सभायामाहूय त्वरयामास सेवकान् ॥१८॥
चित्रोष्णीषान्वेत्रपाणीन्प्राह वाक्यं स्मिताननः । कथनीयं हट्टमध्ये ह्यारामं याति जानकी ॥१९॥
राघवेण ततो यूयं वणिजस्त्वरयंत्विति । ततः सौमित्रिवचनाच्छ्रुत्वा ते वेत्रपाणयः ॥२०॥
चित्रोष्णीषा रुक्मदण्डा राजमार्गे चतुष्पथे । हट्टं वीथ्यामूर्ध्वहस्तास्तदा प्रोचुर्महास्वरैः ॥२१॥
पौराश्च वणिजः सर्वे तथाऽन्ये व्यवसायिनः । शृण्वंतु हृष्टहृदयाः सीतोद्यानं प्रगच्छति ॥२२॥
राघवेणाभ्यनुज्ञातैर्भवद्भिर्गम्यतां पुरः । एवं सर्वान्निवेद्याथ जग्मुस्ते लक्ष्मण चराः ॥२३॥
दूतानाज्ञापयामास पुनः सौमित्रिरादरात् । वासोगेहानि चित्राणि ह्यारामेषु समंततः ॥२४॥
कल्पनीयानि वेगेन शोधनीया भुवः शुभाः । जलयंत्राणि सर्वाणि शोधनीयानि सादरम् ॥२५॥
नानामांगल्यवस्तूनि सुगंधीनि महांति च । स्थापनीयानि वै तत्र वस्त्राण्यतिलघूनि च ॥२६॥
एवमादीन्यनेकानि कल्पनीयानि सादरम् । शृंगारणीयाः प्रासादाः सर्वे ह्यारामसंभवाः ॥२७॥
दिव्यवस्त्रैस्तोरणाद्यैर्मुक्तागुच्छैर्विराजिताः । तथेति दूतास्ते सर्वे तथा चक्रुस्त्वरान्विताः ॥२८॥

प्रकारके सुनहले गहने तथा कपड़े जो हरे, पीले, लाल रंगसे रंगे हुए तथा फूलकी तरह हलके थे। उन्हें प्रसन्नतापूर्वक सीताजीको दिया। साथ ही हाथी, घोड़े, रथ, ऊँट, सुन्दर दास-दासी तथा पालकी आदि रामचन्द्रजीको दिया ॥ ८-११ ॥ इस प्रकार राम और सीताकी पूजा करके जनकजी अपनी स्त्रीके साथ मिथिलापुरीको लौट गये ॥ १२ ॥ उधर रामचन्द्रजी प्रसन्नतापूर्वक सीताके साथ विहार करते रहे। गर्भके भारसे लदी तथा समस्त भूषणोंको त्यागे पीले मुख और दुर्बल अङ्गोंवाली भी सीताजी बहुत ही सुन्दर दीखती थीं। एक दिन सीताने किसी धायके द्वारा रामचन्द्रजीके पास यह सन्देश कहला भेजा कि आज आपके साथ बाहरके बगीचेमें घूमनेकी मेरी इच्छा है ॥ १३-१५ ॥ उस धायके मुखसे यह संवाद सुनकर रामचन्द्रने लक्ष्मणको बुलाया और मुस्कराते हुए कहने लगे-हे लक्ष्मण ! आज सीता मेरे साथ नगरके बाहरवाले बगीचेमें घूमने जाना चाहती हैं, सो उसका सब प्रबन्ध ठीक कर देना। लक्ष्मणजी 'तथास्तु' कहकर सभामें गये और सेवकोंको बुलाकर जल्दी तैयारी करनेकी आज्ञा दी। रंग-बिरंगी पगड़ी पहने तथा हाथमें बेंतके दण्ड लिये सिपाहियोंसे लक्ष्मणने कहा कि आज रामचन्द्रजी सीताके साथ बगीचे जायँगे। तुमलोग जाकर नगरके व्यापारियोंसे कह दो कि वे लोग जल्दीसे अपनी दूकान बढ़ाकर मार्ग खाली कर दें। इस प्रकार लक्ष्मणकी बातें सुनकर ॥ १६-२० ॥ रंग-बिरंगी पगड़ी पहने तथा सुनहरे डंडे लिये हुए सिपाही चौरास्ते, गली, बाजार और कूंचोंमें हाथ उठाकर जोर-जोरसे कहने लगे-हे पुरवासियों, व्यापारियों तथा व्यवसायियों ! आप लोग प्रसन्नतापूर्वक हमारी बात सुनते जायँ। आज सीताजी बगीचेमें जायँगी। इसलिए आप सब पहले ही से वहाँ चलें। इस प्रकार सबको सुनाकर वे दूत लोग फिर अपनी ड्योढ़ीपर अर्थात् लक्ष्मणके पास लौट आये ॥ २१-२३ ॥ लक्ष्मणजीने फिर उनको आज्ञा दी कि बगीचेमें तुम लोग जाओ और स्थान स्थानपर नाना प्रकारकी रहनेकी जगहें बनाओ और बगीचेके चारों ओरकी जमीन खूब अच्छी तरह साफ करा दो। जलयंत्रोंकी भी परीक्षा करके उन्हें ठीक कर दो ॥ २४ ॥ २५ ॥ विविध प्रकारकी मांगलिक वस्तुयें और महीन कपड़े आदि लाकर वहाँ रक्खो। जो जो चीजें आवश्यक समझी जायें, वे सब प्रस्तुत रहें। बगीचेके

लक्ष्मणो राघवं गत्वा नत्वा तं प्राह सादरम् । उद्योगसमयोऽद्यैव वर्तते रघुनन्दन ॥२९॥
कुर्यां सिद्धं हि किं यानं सीतायास्तव वा विभो । तत्सौमित्रेर्वचः श्रुत्वा जानकीं राघवोऽब्रवीत् ॥३०॥
सीते यानं वदाद्य त्वं यत्ते मनसि रोचते । तद्रामवचनं श्रुत्वा शिबिकां प्राह जानकी ॥३१॥
रामोऽपि रोचयामास शिबिकामेव वै तदा । तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणश्चापि शिबिके रत्नभूषिते ॥३२॥
हेमतन्तूद्भवैर्वस्त्रैः सर्वत्र वेष्टिते शुभे । आनयामास दूतैः सन्मुक्ताजालविराजिते ॥३३॥
आरुरोहाथ श्रीरामः शिबिकां परया मुदा । ततः सीता पांडुरांगी परिमेयविभूषिता ॥३४॥
कृशांगयष्टिर्दासीभिर्दत्तहस्ता ययौ शनैः । शिबिकामारुरोहाथ पृष्ठलग्नोपबर्हणा ॥३५॥
दासीभिर्वीजिता चापि घृतार्थोऽङ्कपबर्हणा । दधार शिबिकामारुरोहाथ पृष्ठलग्नोपबर्हणा ॥३६॥
विगुंफितं च मुक्ताभिः सीता स्वीयकरेण तम् । मुक्ताजालगवाक्षैश्च पश्यन्ती सा मुहुर्मुहुः ॥३७॥
राजमार्गगतान्येव कौतुकानि समन्ततः । ददर्श नृत्यं वेश्यानां सखीभिः परितो वृता ॥३८॥
ततस्ते बान्धवाः सर्वे बन्धुपत्न्यश्च मातरः । शिबिकासूपसंविष्टा दिव्यासु च पृथक् पृथक् ॥३९॥
अग्रे ते भ्रातरः सर्वे ततः सर्वाश्च मातरः । सीताद्याः बन्धुपत्न्यश्च सर्वेषां पुरतो गुरुः ॥४०॥
एवं ते प्रययुः सर्वे पश्यन्तो राघवं मुहुः । ननृतुर्वारनार्यश्च नेदुर्वाद्यान्यनेकशः ॥४१॥
तुष्टुवुर्बंदिनः सर्वे सीतां च रघुनायकम् । एवं नानासमुत्साहैराराम स ययौ मुदा ॥४२॥
राघवः सीतया युक्तः सैन्यैः सर्वत्र वेष्टितः । विवेश वासोगेहं स ससीतो रघुनन्दनः ॥४३॥
वासोगेहेषु सर्वे ते तस्थुः पौराः समन्ततः । हट्टाः समन्ततश्चासन्ननृतुर्वारयोषितः ॥४४॥
वासोगेहस्य सीताया भित्तयो वस्त्रनिर्मिताः । पञ्चक्रोशमितायामाश्चासन् विस्तारतोऽपि च ॥४५॥
पञ्चक्रोशमितारामे यत्र रेमे विदेहजा । ददर्श जानकी सम्यगाराम नृपसौख्यदम् ॥४६॥

सब भवन अच्छी तरह सजाये जायँ। उनमें कपड़ेकी झालरें, तोरण और मोतियोंके गुच्छे लटकाये जायँ। वहाँ पहुँचकर दूतोंने लक्ष्मणजीके आज्ञानुसार सब कुछ तुरन्त ठीक कर दिया ॥ २६-२८ ॥ तब लक्ष्मण रामचन्द्रजीके पास गये और प्रणाम करके सादर कहने लगे—हे रघुनन्दन! मैंने आपकी आज्ञासे पूरी तैयारी कर दी है। अब क्या आप और सीताजीके लिए सवारी लानेकी भी आज्ञा दे दूँ? इस प्रकार लक्ष्मणकी वाणी सुनकर रामचन्द्रजीने सीतासे कहा—सीते! बतलाओ, आज तुम्हें कौन-सी सवारी चाहिए? सीताजीने रामजीकी बात सुनकर पालकी पसन्द की और रामजीने अपने लिए भी पालकी ही माँगी। रामचन्द्रजीकी आज्ञासे लक्ष्मणने रत्नोंसे विभूषित दो पालकियाँ मँगवायीं, जिनपर सुनहले कामके ओहार पड़े थे और चारों ओर मोतियोंके झुब्बे लटक रहे थे ॥ २९-३३ ॥ तब प्रसन्नतापूर्वक रामचन्द्रजी पालकीपर सवार हुए और थोड़ेसे भूषणोंको पहने हुए सीता भी दासियोंके हाथके सहारे शनैः शनैः जाकर पालकीपर बैठीं। उसमें चारों ओर तकियाँ लगी हुई थीं। दासियाँ पंखे झलने लगीं। ओहार डाल दिया गया और पालकी चल पड़ी। रास्तेमें सीताजी पालकीके झरोखेसे उन दृश्योंको देखती जाती थीं, जो वहाँपर थे। उसके अनन्तर रामचन्द्रजीके और भाई भी तथा उनकी स्त्रियाँ और मातायें अलग-अलग दिव्य पालकियोंपर बैठ-बैठकर चलीं। आगे-आगे भाइयोंकी, फिर माताओंकी, फिर सीतादिक पत्नियोंकी और सबसे आगे गुरु वसिष्ठजीकी पालकी चली ॥ ३४-४० ॥ इस प्रकार सब लोग रामचन्द्रजीका दर्शन करते हुए चले जा रहे थे। वेश्यायें नाच रही थीं और नाना प्रकारके बाजे बज रहे थे। बन्दीगण सीता और रामजीकी वन्दना कर रहे थे। इस प्रकार कितने ही तरहके उत्साहोंके साथ वे सब बगीचे पहुँचे। रामचन्द्रजी सीताके साथ-साथ सेनाओंसे घिरे हुए एक तम्बूमें उतरे ॥ ४१-४३ ॥ इसके बाद और लोग भी तम्बुओंमें टिके। साथ ही समस्त नगरवासी लोग भी चारों ओर तम्बुओंमें ठहर गये। चारों ओर हाट लग गयी और वेश्यायें नाचने लगीं ॥ ४४ ॥ जिस स्थानपर रामचन्द्रजी अपने पुरवासी नागरिकोंके साथ ठहरे थे,

रसालयं रसालैस्तैरशोकैः शोकवारणम् । तालैस्तमालैर्हिन्तालैः शालैः सर्वत्र शालितम् ॥४७॥
खपुरैः खपुराकारं श्रीफलैः श्रीफलं किल । गुरुश्रियं त्वगुरुभिः कपिपिंगं कपित्थकैः ॥४८॥
वनश्रियः कुचाकारैर्लकुचैश्च मनोरमम् । सुधाफलसमारंभिरंभाभिः परिभाषितम् ॥४९॥
सुरंगैश्चापि नारङ्गै रङ्गमण्डपवच्छ्रियः । वानीरैश्चापि जम्बीरैर्बीजपूरैः प्रपूरितम् ॥५०॥
मन्दान्दोलितकर्पूरकदलीदलसंज्ञया । विश्रामाय श्रमापन्नानाह्वयंतमिवाध्वगान् ॥५१॥
पुन्नाग इव पुन्नागपल्लवैः करपल्लवैः । कलयन्तमिवालोलैर्मल्लिकास्तवकस्तनम् ॥५२॥
विदीर्णदाडिमैः स्वांतं दर्शयन्नुरागवत् । माधवीधवरूपेण श्लिष्यंतमिव कानने ॥५३॥
उदुंबरैरवरकैरनंतफलशालिभिः । ब्रह्मांडकोटिबिभ्रन्तमनंतमिव सर्वतः ॥५४॥
पनसैर्वननासाभैः शुकनासैः पलाशकैः । फलाशनाद्विरहिणां पत्रत्यक्तैरिवावृतम् ॥५५॥
कदंबवादिनो नीपान्दृष्ट्वा कंटकितैरिव । समंततो भ्राजमानं कदंबककदंबकैः ॥५६॥
नमेरुभिश्च मेरोश्च शिखरैरिव राजितम् । राजादनैश्च मदनैः सदनैरिव कामिनाम् ॥५७॥
समंततः पटुवटैरुच्चैः पटकुटीकृतम् । कुटजस्तवकैर्भातमधिष्ठितबकैरिव ॥५८॥
करमर्दैः करीरैश्च करजैश्च कदंबकैः । सहस्रकरवद्भातमर्थिप्रत्युद्गतैः करैः ॥५९॥
नीराजितमिवोद्दीपै राजचंपककोरकैः । सपुष्पशाल्मलीभिश्च जितपद्माकरश्रियम् ॥६०॥
क्वचिच्चलदलैरुच्चैः क्वचित्काञ्चनकेतकैः । कृतमालैर्नक्तमालैः शोभमानं क्वचित् क्वचित् ॥६१॥
कर्कन्धुबन्धुजीवैश्च पुत्रजीवैर्विराजितम् । सतिंदुकेङ्गुदीभिश्च करुणैः करुणालयम् ॥६२॥

उसका विस्तार पाँच कोसका था। पाँच कोसके लम्बे-चौड़े बगीचेमें जहाँ रामचन्द्रजी ठहरे थे, सीताजी प्रसन्नतापूर्वक विहार करने और उस सुन्दर बगीचेको खूब अच्छी तरह देखने लगीं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ उसमें रसालके वृक्ष वास्तवमें रसके आलय और अशोकके वृक्ष शोकको दूर करनेवाले थे। ताल, तमाल, हिन्ताल और शालके वृक्ष चारों ओर सुशोभित हो रहे थे ॥ ४७ ॥ खपुरके वृक्षोंसे वह बगीचा खपुर (स्वर्ग) सदृश लग रहा था और श्रीफलसे श्रीफलके सदृश था। अगुरुके वृक्षोंसे गम्भीर शोभावाला तथा कैथेके वृक्षोंसे कपिल-वर्णका हो रहा था ॥ ४८ ॥ वनलक्ष्मीके कुचोंके समान लकुच (बड़हर) के वृक्ष लगे हुए थे। अमृतफलकी नाईं केलेसे वृक्ष लगे हुए थे ॥ ४९ ॥ सुन्दर रङ्गवाले नारङ्गीके वृक्षोंसे रङ्गमण्डपकी शोभा हो रही थी। वानीर, जंबीर, बीजपूर आदिके वृक्ष भी उस बगीचेमें कुछ कम नहीं थे ॥ ५० ॥ धीरे-धीरे वायुके झोंकेसे झूमता हुआ केलेका पत्ता मानों थके हुए बटोहियोंको हाथके संकेतसे विश्राम करनेके लिए बुला रहा था ॥ ५१ ॥ पुन्नागकी तरह पुन्नागके पल्लव करपल्लवके समान थे और मल्लिकाके गुच्छे स्तनके समान दीखते थे ॥ ५२ ॥ अनारके फटे हुए फल मानो अपना हृदय फाड़कर हार्दिक प्रेम प्रदर्शित कर रहे थे। गूलरका खूब लम्बा-चौड़ा वृक्ष था, जिसमें असंख्य फल लगे हुए थे। वह करोड़ों ब्रह्माण्डोंको धारण किये हुए साक्षात् अनन्त भगवान्‌के सदृश मालूम पड़ता था। उपवनकी नाकके समान कटहलके वृक्ष तथा तोतेकी नाकके समान पलाशके वृक्ष लगे हुए थे। कण्टकित पुष्पवाले कदम्बके वृक्षोंको देखकर रोमांच हो जाता था ॥५३-५६॥ नमेरुके वृक्षोंको देखकर सुमेरुशृङ्गकी याद आ जाती थी। राजादनके वृक्ष कामियोंको मदनके भवन सदृश दीखते थे ॥ ५७ ॥ चारों ओर लगे हुए पटुवटके वृक्ष पटकुटीके सदृश दीखते थे। कुटजके गुच्छे बैठे हुए बगुलेके सदृश मालूम पड़ते थे ॥ ५८ ॥ जहाँ तहाँ करौंदे, करौंर, कंजे, कदम्ब आदिके बड़ी-बड़ी शाखाओंवाले वृक्ष हजारों हाथ उठाये याचकोंके समान मालूम पड़ते थे ॥ ५९ ॥ राजचम्पक तथा कोरैयाके वृक्ष मानो आरती बनकर उस बगीचेकी आरती उतार रहे थे। फूलोंसे लदे हुए सेमरके वृक्ष कमलवनकी शोभाको भी पराजित कर रहे थे ॥ ६० ॥ कहीं फरफराते हुए पत्तोंवाले केलेके बड़े-बड़े वृक्षोंसे, कहीं सुनहली केतकीके छोटे-छोटे पौधोंसे, कहीं कृतमाल और नक्तमालके वृक्षोंसे वह बगीचा सुशोभित हो रहा था ॥ ६१ ॥ बेर, बंधुजीव तथा पुत्रजीवके वृक्ष लगे थे। तेंदु, इङ्गुदी, करुण आदि वृक्षोंसे वह बगीचा करुणालय हो रहा था। टपकते हुए महुएके फूलोंको देखकर मालूम होता

गलन्मधूककुसुमैर्धरारूपधरं हरम् । स्वहस्तमुक्तमुक्ताभिरर्पयंतमिवानिशम् ॥६३॥
सर्जार्जुनाञ्जनैर्बीजैर्व्यजनैर्बीज्यमानवत् । नारिकेलैः सखर्जूरैर्धृतच्छत्रमिवांबरैः ॥६४॥
अमंदैः पिचुमन्दैश्च मंदारैः कोविदारकैः । पाटलातिंतिणीघोंटाशाखोटैः करहाटकैः ॥६५॥
उद्दंडैश्चापि शेहुंडैर्गुडपुष्पैर्विराजितम् । बकुलैस्तिलकैश्चैव तिलकांकितमस्तकम् ॥६६॥
अक्षैः प्लक्षैः सल्लकीभिर्देवदारुहरिद्रुमैः । सदाफलसदापुष्पवृक्षवल्लिविराजितम् ॥६७॥
एलालवंगमरिचकुलंजनवनावृतम् । जम्बूआम्रातकभल्लातशेलुश्रीपर्णिवर्णितम् ॥६८॥
शाकशंखवनं रम्यं चन्दनै रक्तचंदनैः । हरीतकीकर्णिकारधात्रीवनविभूषितम् ॥६९॥
द्राक्षावल्लीनागवल्लीकर्णवल्लीशतावृतम् । मल्लिकायूथिकाकुंदमदयंतीसुगंधितम् ॥७०॥
तुलसीवृक्षपंडैश्च शिक्त्वगस्तिद्रुमैर्युतम् । भ्रमद्भ्रमरमालाभिर्मालतीभिरलंकृतम् ॥७१॥
अलिच्छलागतं कृष्णं गोपी रंतुमनेकशः । सुगंधवातं सुखदं कामसञ्जनकं परम् ॥७२॥
नानामृगगणाकीर्णं नानापक्षिनिनादितम् । नानासरित्सरःस्रोतैः पल्वलैः परितो वृतम् ॥७३॥
उत्सृजंतमिवार्थं वै पतत्पुष्पैरितस्ततः । केकिकेकारवैर्दूरात्कुर्वन्तं स्वागतं किल ॥७४॥
एतादृशं ह्युपवनं जानकी तद्ददर्श सा । तुष्टाऽभूद्दर्शनेनैव विचचार त्वितस्ततः ॥७५॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये
जन्मकांडे नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

था कि मानो शिवजी धरणीका रूप धारण किये हुए हैं और अपने ही हाथसे अपनेपर मोतियोंकी वर्षा कर रहे हैं ॥ ६२ ॥ ६३॥ सर्ज, अर्जुन, बीजपूर आदिके वृक्षोंसे ऐसा मालूम होता था कि वे सब बगीचेको पंखा झल रहे हैं। नारियल तथा खजूरके वृक्ष छत्र धारण करनेवाले सेवक जैसे थे। अमंद, पिचुमन्द, मन्दार, कोविदार, पाटल, तिंतिणी, घोंटा, शाखोट, करहाटक, ऊँचे डण्डेवाले सेहुंड़ और गुड़हलके वृक्ष भी उस बगीचेमें यत्र-तत्र लगे हुए थे। बकुल और तिलकके वृक्ष उस बगीचेके मस्तकपर तिलकके समान मालूम पड़ते थे ॥ ६४–६६ ॥ अक्ष, प्लक्ष, सल्लकी, देवदारु, हरिद्रुम, सदाफल, सदापुष्प और वृक्षवल्ली आदिके वृक्ष भी उस बगीचेमें लगे हुए थे ॥ ६७ ॥ इलायची, लौंग, मरिच तथा कुलंजनके वृक्षोंसे वह समस्त बगीचा भरा हुआ था। जामुन, आम, भल्लातक, श्रीपर्णी आदि वृक्षोंसे उस बगीचेकी रंगीली शोभा देखते ही बनती थी ॥ ६८ ॥ शाक तथा शंखवनके वृक्षोंसे रमणीक एवं चन्दन, हरीतकी, कर्णिकार, आँवला आदिके वृक्षोंसे वह विभूषित था ॥ ६९ ॥ जिनमें सैकड़ों अंगूरकी लताएँ तथा पानकी बेलें लगी हुई थीं। मल्लिका, जूही, कुन्द और मदयन्तीके वृक्षोंसे वह बगीचा सुगन्धित हो रहा था ॥ ७० ॥ उसमें कितने ही तुलसी, सहिंजन तथा अगस्तके वृक्ष लगे हुए थे। जिनपर भौरोंकी श्रेणी चक्कर काट रही थी, ऐसी मालतीके वृक्षोंसे वह अलंकृत था ॥ ७१ ॥ जिस समय मालतीके समीप भौंरा आता था, तब देखनेवालेके हृदयमें यह उत्प्रेक्षा होती थी कि मानों श्रीकृष्ण गोपियोंके साथ विहार करनेके लिए आये हैं ॥ ७२ ॥ उस बगीचेमें बहुतसे मृग चौकड़ियाँ भरा करते थे, विविध प्रकारके पक्षी बोलते रहते थे, कितनी ही नदियों, तालाबों, सोतों तथा गड़होंसे वह बगीचा घिरा हुआ था ॥ ७३ ॥ बगीचेके वृक्षोंसे गिरे हुए फूल किसी दानीकी धनराशिके समान लगते थे। मयूरोंकी आवाजसे ऐसा मालूम पड़ता था कि मानों वह बगीचा अपने यहाँ आनेवालोंका स्वागत कर रहा है ॥ ७४ ॥ इस प्रकारके उस सुन्दर उपवनको सीताने देखा। देखते ही उनका चित्त प्रसन्न हो गया और वे इधर-उधर घूमने लगीं ॥ ७५ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये जन्मकाण्डे पं० रामतेजपाण्डेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकायां प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

(रामसीताका उपवनविहार)

श्रीरामदास उवाच

अथ सीता राघवेण रम्योपवनभूमिषु । क्रीडाश्चकार विविधास्त्रिदशैरपि संस्तुताः ॥ १ ॥
कदा वनांतःप्रासादे कदा वस्त्रगृहेष्वपि । कदाऽऽम्रवृक्षच्छायायां कदा पुष्पवनेषु सा ॥ २ ॥
कदा सा जलयंत्राणां समीपस्थवरासने । कदा सरोवरतटे कदा नद्यास्तटेऽपि च ॥ ३ ॥
नौकास्था सरयूतोये सा रामेणाकरोत्कदा । कदा रात्रौ जलक्रीडां सा दिवाऽपि कदा मुदा ॥ ४ ॥
कदा तटाके नौकास्था कदा रंभावनेषु सा । कदा वृक्षोर्ध्वगेहेषु कदोशीरगृहेष्वपि ॥ ५ ॥
कदा सा सरयूनद्यां निर्मितेषु गृहेषु वा । कदा कृत्रिमगेहेषु पुष्पगेहेषु सा कदा ॥ ६ ॥
कदा सा चित्रशालायां पुष्पके वा कदा मुदा । कदा सा केतकीषण्डे कदैकस्तम्भसद्मनि ॥ ७ ॥
कदा नौकोर्ध्वगेहस्था सरय्वाः सैकते कदा । एकस्तंभोर्ध्वगेहेऽपि सखीभिः परिवेष्टिता ॥ ८ ॥
कदा रामेण रहसि कदा दोलकसंस्थिता । पर्यङ्कचक्रमध्यस्था कदा सा दाडिमीवने ॥ ९ ॥
वृक्षसंबद्धपर्यङ्कसंस्थिता राघवेण हि । चकार सा कदा क्रीडां पांडुरांगी पृथूदरी ॥१०॥
हरिद्वस्त्रयुतारक्तकंचुक्या जानकी बभौ । गोपयित्वा निजं देहं सीता वृक्षदलैर्घनैः ॥११॥
चकार व्याकुलं रामं विनोदेन स्मिताननाः । ज्ञात्वात्मानं राघवेण तुष्टां सम्यग्विविच्य च ॥१२॥
दुद्राव संभ्रमाद्रामं तत्कंठे दोर्लतेऽकरोत् । एवं सीताराघवयोः क्रीडनं परमाद्भुतम् ॥१३॥
विस्तारेणेह को वक्तुं समर्थः पृथिवीतले । एक एव समर्थोऽभूद्वाल्मीकिर्मुनिसत्तमः ॥१४॥
शतकोटिमितं येन चरितं वर्णितं तयोः । सारं सारं मया यस्माद्विविच्य त्वां प्रवर्ण्यते ॥१५॥
वारस्त्रीणां कदा नृत्यं सीताऽऽरामे ददर्श सा । कदा शुश्राव वाद्यानि मञ्जुलानि महांति च ॥१६॥

श्रीरामदासजी कहने लगे—इसके बाद सीता रामचन्द्रजीके साथ उस रमणीक उपवनमें देवताओं द्वारा प्रशंसित विविध प्रकारकी क्रीड़ाएँ करने लगीं ॥ १ ॥ कभी उस बगीचेके बँगलेमें, कभी तम्बूके भीतर, कभी आम्रवृक्षकी छायामें, कभी फूलोंकी झुरमुटमें, कभी फौवारोंके समीप बने हुए किसी एक सुन्दर आसनपर, कभी सरोवरके तटपर और कभी नदीके समीप जाकर विहार करती थीं ॥ २ ॥ ३ ॥ कभी वे नौकापर सवार होकर सरयूकी धारामें रामके साथ विहार करती थीं । कभी रात्रिके समय और कभी दिनमें ही जल-क्रीड़ा करने लग जाती थीं ॥ ४ ॥ कभी सरोवरमें नौकापर, कभी केलेके वनमें, कभी वृक्षके ऊपर बने हुए भवनमें, कभी खसके बने मकानमें, कभी सरयूके भीतर बने हुए भवनोंमें, कभी बनावटी मकानोंमें, कभी फूलघरमें, कभी चित्रशालामें, कभी पुष्पक विमानपर, कभी केतकीके समूह और कभी एक खंभेके ऊपर बने भवनमें रामके साथ विहार करती थीं ॥ ५–७ ॥ कभी नौकाके ऊपर बने बँगलेमें, कभी सरयूकी रेतीमें, कभी अपनी सब सखियोंके साथ एक स्तंभके ऊपर बनी हुई ऊँची अँटारीपर, कभी रामके साथ एकान्तमें, कभी झूलेपर बैठकर, कभी चक्करदार पलङ्गपर, कभी अनारके बगीचेमें और कभी किसी वृक्षके समान पड़े हुए पलङ्गपर गोरे-गोरे अङ्गवाली सीता रामके साथ-साथ क्रीड़ा करती थीं ॥ ८–१० ॥ वे कभी हरे रङ्गके कपड़े तथा लाल कंचुकी पहनकर रामके साथ क्रीड़ा करती हुई वृक्षोंके पत्तोंमें छिपकर रामको व्याकुल कर देतीं और स्वयं छिपी छिपी मुस्काती रहती थीं । जब वे समझतीं कि रामने देख लिया है तो दौड़ती हुई आतीं और रामके गलेमें गलबँहियाँ डालकर उनके हृदयसे लिपट जाया करतीं । इस प्रकार सीता तथा रामका अद्भुत कौतुक हुआ करता था ॥ ११–१३ ॥ उसे विस्तारपूर्वक कहनेकी सामर्थ्य भला किसीमें है ? हाँ, एकमात्र महर्षि वाल्मीकिजी समर्थ हुए थे । जिन्होंने सौ करोड़ श्लोकोंमें उनके चरित्रोंका वर्णन किया है । उनमेंसे सार-भाग लेकर मैं तुमसे कह रहा हूँ ॥ १४ ॥ १५ ॥ कभी सीताजी उस बगीचेमें वेश्याओंके नृत्य देखती थीं ।

कदा चित्रकथा रम्याश्चेन्द्रजालानि वा कदा । कदा वंशारोहणादिकौतुकानि ददर्श सा ॥१७॥
कदा स्तम्भोद्भवं दिव्यं ददर्श कौतुकं महत् । कदा कलानां कौशल्यं सूत्रबन्धैर्विनिर्मितम् ॥१८॥
कदा कृत्रिमहस्त्यादिनानारूपाणि वै पतेः । सीता ददर्श कुशलैर्धृतान्यात्मयुतान्यपि ॥१९॥
एवं सीताऽऽराममध्ये मासमेकं निनाय सा । ययौ रामेण नगरीं नृत्यगीतादिभिः शनैः ॥२०॥
सौधस्थाभिः पुरस्त्रीभिर्वर्षिता कुसुमादिभिः । नीराजिता कुम्भदीपैर्दीपैर्दध्योदनोद्भवैः ॥२१॥
माषतैलसर्षपाद्यैर्नानाबलिभिरादरात् । ययौ निजगृहं सीता राघवेण समन्विता ॥२२॥
एवं नानाकौतुकैश्च नानादोहदपूरणैः । रामस्तां रञ्जयामास साऽपि रामं स्वलीलया ॥२३॥
षष्ठे मासे त्वथ प्राप्ते सीतया राघवो मुदा । सीमन्तोन्नयनं चैव वसिष्ठेन चकार सः ॥२४॥
सुमेधां जनकं चापि समाहूयादरेण हि । ददौ दानान्यनेकानि ब्राह्मणेभ्यो रघूत्तमः ॥२५॥
जनकः पूजयामास रामं स्वबन्धुसंयुतम् । कौसल्यादींश्च साकेतवासिनो वसनादिभिः ॥२६॥
पौराश्च सुहृदः सर्वे भोजनार्थं विदेहजाम् । स्वस्वगेहं पृथङ्निन्युः श्रीरामादिभिरुत्सवैः ॥२७॥
नानावाद्यनिनादैश्च वारस्त्रीनृत्यगायनैः । स्त्रीमुक्तपुष्पवर्षाभिर्नानाकौतुकदर्शनैः ॥२८॥
नानादेशनिवासिन्यः कोटिशस्ता नृपस्त्रियः । समाजग्मुरयोध्यायां सीतां द्रष्टुं मुदान्विताः ॥२९॥
तासां सैन्यैश्च सर्वत्र वेष्टिता नगरी बभौ । ताः सर्वा नृपपत्न्यश्च सीतायाः परमान् वरान् ॥३०॥
दोहदान् पूरयामासुर्दिव्यान्नादिभिरादरात् । ददुर्वस्त्राण्यलंकारान् दिव्यांश्चित्रविचित्रितान् ॥३१॥
स्वस्वदेशोद्भवैर्दिव्यैर्नानावस्तुभिरादरात् । जानकीं पूजयामासुस्ताः सर्वाः पार्थिवस्त्रियः ॥३२॥
स्थित्वा ता मासमेकं तु जग्मुर्देशं निजं निजम् । अथैकदा तु श्रीरामः सुमेधां जनकं तथा ॥३३॥
सीतायाः पुरतः प्राह गुह्यं रहसि हृत्स्थितम् । सीतामदृष्ट्वा सान्निध्ये क्षणाच्च विरहेण ताम् ॥३४॥

कभी मंजुल तथा घनघोर शब्दवाले बाजोंकी धुन सुनती थीं। कभी विविध प्रकारके चित्र देखती थीं, कभी बाजीगरों और बाँसपर चढ़कर नाचनेवालोंके अद्भुत खेल देखा करती थीं ॥ १६ ॥ १७ ॥ कभी स्तम्भके सुन्दर कौतुकों तथा सूत्रबन्धसे बँधी कठपुतलीके नाच एवं कभी बनावटी हाथ आदिके विविध रूपोंको देखा करती थीं ॥१८॥१९॥ इस तरह सीताने उस बगीचेमें एक महीना बिताया। फिर नृत्य-गीतादिक देखती-सुनती हुई रामचन्द्रके साथ अपनी नगरी अयोध्याको लौट आयीं ॥ २० ॥ जब सीता और रामने नगरमें प्रवेश किया, उस समय नगरकी स्त्रियोंने अँटारीपर चढ़कर उन दोनोंपर फूलोंकी वर्षा की, आरती उतारी और दही, भात, उर्द, तेल तथा सरसों आदिके बलि दिये। तब राम सीताके साथ अपने महलको गये ॥ २१ ॥ २२ ॥ इस तरह विविध प्रकारकी क्रीडाओंसे रामने सीताको तथा सीताने रामको आनन्दित किया ॥ २३ ॥ जब गर्भका छठाँ महीना आया, तब रामने अपने कुलगुरु वसिष्ठके द्वारा सीताका सीमन्तोन्नयन-संस्कार कराया ॥ २४ ॥ सुमेधा और जनकके पास निमंत्रण भेजकर उन्हें अपने यहाँ बुलवाया और ब्राह्मणोंको रामने विविध प्रकारके दान दिये ॥ २५ ॥ जनकने आकर सीता तथा अपने सब भाइयोंके साथ बैठे हुए राम और कौसल्यादि माताओंका नाना प्रकारके वस्त्राभूषणों द्वारा सत्कार किया ॥ २६ ॥ अयोध्यावासी नागरिकों तथा मित्रोंने रामचन्द्र और सीताको अपने यहाँ भोजन करनेके लिए बुलाया ॥ २७ ॥ अनेक वाद्योंके साथ-साथ वेश्याओंके नृत्य-गान हुए, स्त्रियोंके हाथसे फूलोंकी वर्षा हुई और कितने ही तरहके खेल-तमाशे हुए ॥ २८ ॥ उस समय सीताको देखनेके लिए अनेक देशोंकी राजरानियाँ अयोध्या आयीं ॥ २९ ॥ उनके साथ आयी हुई सेनासे घिरकर वह अयोध्या नगरी और भी सुन्दर लगने लगी। उन रानियोंने अन्नादि दे-देकर सीताकी इच्छा पूर्ण की और आनन्दपूर्वक बहुतसे वस्त्र-अलंकार तथा अपने देशोंकी विशिष्ट वस्तुएँ देकर सीताकी पूजा की ॥ ३०–३२ ॥ वे रानियाँ एक महीना अयोध्यामें रहकर अपने-अपने देशोंको लौट गयीं। एक दिन जब कि सुमेधा, जनक, सीता तथा रामचन्द्र एकान्तमें बैठे थे। तब रामने कहा—हे महाराज! सीताको अपने पास न देख तथा क्षणभर भी उनसे वियुक्त होकर मैं नहीं रह पाता। जब सीताके पास पहुँच

मयाऽऽगत्य तन्मुखेन्दुसुधया स्वास्थ्यमाप्यते । आत्मानं विह्वलं दृष्ट्वा सीतासान्निध्यमाश्रये ॥३५॥
अधुना जानकीं दृष्ट्वा कामो मेऽतीव बाधते । पञ्चमासोर्ध्वतः संगं गर्हयन्ति मुनीश्वरा ॥३६॥
प्रसूत्यग्रे पञ्चमासैः स्त्री स्वास्थ्यं प्राप्यते पुनः । पञ्चमासैर्विना सङ्गाद्दंपत्योः क्षीणतेरिता ॥३७॥
अत्र किं करणीयं हि वद त्वं श्वशुराद्य माम् । चेत्प्रेषणीया सीतेयं मिथिलां प्रति वै मया ॥३८॥
तर्हि तत्रापि मे गन्तुं भविष्यति समुद्यमः । किंचित्कालं तु सीताया वियोगो येन मे भवेत् ॥३९॥
उपायः स विधातव्यश्चिन्तितोऽस्ति मयाऽपि च । लोकापवादभीत्याऽहं रजकोक्तच्छलादपि ॥४०॥
गङ्गाया दक्षिणे तीरे वाल्मीकेराश्रमे शुभे । त्यजामि जानकीं शुद्धां किञ्चित्कालांतरात्पुनः॥४१॥
एनां समानयिष्यामि प्रत्ययं मां प्रदास्यति ।ततोऽनया चिरं कालं नानाभोगान् भजाम्यहम्॥४२॥
जनकाद्य त्वया तत्र निजपत्न्या सुमेधया । वाल्मीकेराश्रमे गत्वा स्थेयं वर्षाणि पञ्च वै ॥४३॥
तथेत्यंगीचकाराथ जनकोऽपि सुमेधया । सीताऽप्यंगीचकाराथ विहस्य तद्वचः पतेः ॥४४॥
अथ रामो ददावाज्ञां सस्त्रियं जनकं मुदा । स गत्वा मिथिलाराज्ये स्वीयं संस्थाप्य मंत्रिणम्॥४५॥
ययौ सुमेधया शीघ्रं वाल्मीकेराश्रमं मुदा । किंचिद्दासीदाससैन्यवाजिवारणवेष्टितः ॥४६॥
नानोपचारान्सीतार्थं संगृह्य शकटादिभिः । चकार गेहं विपुलं वाल्मीकेश्च सुखावहम् ॥४७॥
सर्वसंपत्तिसंयुक्तं बहुगोमहिषीयुतम् । पूरितं धान्यसंघैश्च वस्त्रैराभरणादिभिः ॥४८॥
कासारोपवनारामपुष्पवाटिशतावृतम् । गवाक्षैश्चन्द्रकान्तानां कपाटैश्च समन्वितम् ॥४९॥
कृष्णागुरुसकर्पूरोशीरमाल्यादिमोदितम् । कांचनीशृंखलाबद्धरत्नपर्यङ्कमण्डितम् ॥५०॥
हंसपारावतपिककेकीशुकनिनादितम् । मुक्तागुच्छवितानाद्यैः शोभितं चित्रचित्रितम् ॥५१॥

जाता हूँ तो इनके मुखचन्द्रकी सुधासे स्वस्थ हो जाता हूँ । जिस समय मुझमें कुछ भी घबराहट होती है, उस समय मैं सीताके ही समीप रहता हूँ ॥ ३३-३५ ॥ इस समय सीताको देखकर मुझे कामपीड़ा हो रही है और मुनियोंकी सलाह यह है कि गर्भाधान हो जानेपर पाँच महीने बाद स्त्रीप्रसङ्ग करना निन्दित है ॥ ३६ ॥ प्रसव हो जानेपर पाँच महीने बाद ही स्त्री स्वस्थ होती है। बिना पाँच महीने बीते प्रसङ्ग करनेसे दोनोंकी हानि ही हानि है। ऐसे असमञ्जसके समय मुझे क्या करना चाहिये, सो आप बताइये। यदि मैं सीताको मिथिला भेज देता हूँ तो मुझे भी वहाँ जाना पड़ेगा। किन्तु मैं कुछ दिन तक सीतासे अलग रहना चाहता हूँ। जिस तरह मेरी इच्छा पूर्ण हो, वही इस समय करना चाहिए। मैंने तो यह सोच रक्खा है कि लोकापवादके डरसे अथवा उस धोबीके व्याजसे गङ्गाके दक्षिण तटपर वाल्मीकिके पवित्र आश्रममें कुछ समयके लिए परम शुद्ध जानकीको छोड़ दूँ। थोड़े दिन बाद वापस ले आऊँगा। फिर मैं इनके साथ चिरकालतक नाना प्रकारके भोगोंको भोगूँगा ॥ ३७-४२ ॥ उस समय आपको अपनी सुमेधाके साथ वाल्मीकिके आश्रमपर जाकर पाँच वर्ष पर्यन्त निवास करना होगा ॥ ४३ ॥ सुमेधा और जनकने रामकी सलाह स्वीकार की और सीताने भी हँसकर पतिका कहना मान लिया ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर रामने जनकको अपने देश जानेकी आज्ञा दी। वे अपने देश गये और राज्यका सब भार मंत्रीपर छोड़कर अपनी स्त्री सुमेधाके साथ वाल्मीकि ऋषिके आश्रमको चल दिये। चलते समय अपने साथ कुछ दास, दासी, सैनिक तथा हाथी-घोड़े भी ले लिये ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ सीताके लिए बहुत-सी सामग्रियाँ गाड़ियोंपर लदवाकर साथ ले गये। महर्षि वाल्मीकिके आश्रमको जनकने सब सुखोंका भण्डार बना दिया ॥ ४७ ॥ जनकजीके वहाँ पहुँचनेपर वह आश्रम सब सम्पत्तियों एवं बहुत-सी गौओं और भैंसोंसे भर गया। विविध प्रकारके अन्नों और भाँति-भाँतिके वस्त्राभूषणोंसे वह पूर्ण हो गया ॥ ४८ ॥ आश्रमके पास सैकड़ों पोखरे, उपवन, बगीचे बावली तथा कुएँ तैयार हो गये। चन्द्रकान्त मणिके झरोखों तथा फाटकोंवाले भव्य भवन बने ॥ ४९ ॥ कृष्णागुरु, कपूर, खस तथा विविध प्रकारके सुगन्धित पुष्पोंसे वह आश्रम सुगन्धमय हो गया। जगह-जगह-पर सोनेकी जंजीरोंसे सजे रत्नोंके पलङ्ग पड़े हुए थे ॥ ५० ॥ हंस, कबूतर, कोयल, मयूर तथा तोतेके शब्दोंसे

एवं मनोहरं गेहं सीतार्थं जनकोऽकरोत् । श्रीः साक्षाद्गंतुमुद्युक्ता यस्मिन्निवसितुं चिरम् ॥५२॥
किं दुर्लभं हि तत्रास्ति वर्णनीयं मयाऽद्य किम् । यस्या नेत्रकटाक्षेण शक्रादीनां विभूतयः ॥५३॥
वाल्मीकये सर्ववृत्तं जनकोऽपि न्यवेदयत् । मुनिश्चाप्यतिसंतुष्टो मेने स्वतपसः फलम् ॥५४॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये जन्मकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः

(राम द्वारा सीताका त्याग)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामं तु कौसल्याऽब्रवीद्रहसि संस्थिता । सीतां सीमोल्लंघनार्थं शीघ्रं प्रेषय राघव ॥१॥
तन्मातुर्वचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा सविस्तरात् । सलक्ष्मणो निजामवां प्राह यन्मन्त्रितं पुरा ॥२॥
वाल्मीकेराश्रमे सीतात्यागादि च सकारणम् । अथ मासेऽष्टमे प्राप्ते रामो राजीवलोचनः ॥३॥
एकांते जनकीं प्राह वीजितो लक्ष्मणेन हि । कल्पयित्वा मिष देवि रजकोक्तं त्वदाश्रयम् ॥४॥
त्यजामि त्वां वने लोकवादाद्भीत इवापरः । त्रिमासात्पंचमासाद्वा सप्त मासात्सुबुद्धिभिः ॥५॥
अन्तर्वत्नी न गम्येति शास्त्राज्ञां रजकच्छलात् । त्वां त्यक्त्वा पालयिष्यामि निकटे वस्तुमक्षमः ॥६॥
त्वां दृष्ट्वा चंद्रवदनां कामो मेऽतीव बाधते । त्वद्वियोगस्तु निर्बन्धाद्विना मेऽत्र कथं भवेत् ॥७॥
तस्मात्कृतोऽयं निर्बन्धः सत्यं विद्धि मनोरमे । पंचवर्षानंतरेण पुनरागत्य मेऽन्तिकम् ॥८॥
लोकानां प्रत्ययार्थं त्वं शपथं हि करिष्यसि । भूमेर्विवरमार्गेण स्थित्वा सिंहासनोपरि ॥९॥

वह आश्रम शब्दायमान हो रहा था। यत्र तत्र मोतियोंकी झालरवाली चाँदनियाँ टँगी हुई थीं और बहुत-सी तसवीरें भी जहाँ-तहाँ टँगी थीं ॥ ५१ ॥ जनकजीने सीताके लिए इस प्रकारका सुन्दर भवन बनाकर तैयार करवाया। यदि ऐसा दिव्य भवन सीताजीके वास्ते बन गया तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। जहाँ निवास करनेके निमित्त साक्षात् लक्ष्मीजी जानेवाली हों, वहाँ कौन वस्तु दुर्लभ हो सकती है। जिसके कटाक्षमात्रसे इन्द्रादि देवताओंकी भी सम्पत्तियाँ बनती-बिगड़ती हैं। उसके विषयमें मैं कहाँ तक वर्णन करूँगा। जनकजीने महर्षि वाल्मीकिको भी वह सब बातें बतला दीं, जिन्हें सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए और सीताके उस भावी आगमनको उन्होंने अपनी तपस्याका फल समझा ॥ ५२-५४ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते जन्मकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

श्रीरामदासने कहा—एक दिन एकान्तमें कौसल्याने रामसे कहा कि अब समय हो गया है। शीघ्र सीताको अपनी सीमासे कहीं अलग भेज दो। माताकी बातको रामने स्वीकार किया और वह भी बतलाया, जिसका निर्णय बहुत दिनों पहले कर चुके थे ॥ १ ॥ २ ॥ फिर यह भी कहा कि मेरा इस समय सीताका त्याग करना उचित है। कुछ दिन बाद आठवाँ महीना लगनेपर रामने सीताको एकान्तमें बुलाकर समझाते हुए कहा—देवि! उस दिन एक धोबीने तुम्हारे विषयमें बड़ी कुत्सित आलोचना की थी। उसीके बहाने मैं तुम्हें कुछ दिनोंके लिए वनमें छोड़ दूँगा। इससे दुनिया समझेगी कि मैं लोकापवादसे बहुत डरता हूँ। दूसरी एक बात यह है कि गर्भसे तीसरे, पाँचवें अथवा सातवें महीनेमें स्त्रीका संसर्ग नहीं करना चाहिए। यह शास्त्रोंकी आज्ञा है। इसलिए उस धोबीकी बातोंके व्याजसे तुम्हें दूर रखकर मैं शास्त्रीय आज्ञाका पालन करूँगा और पास रहनेमें यह न हो सकेगा कि मैं तुमसे न बोलूँ ॥ ३-६ ॥ क्योंकि तुमको देखनेसे मुझे काम सताने लगता है। तुम्हारा वियोग भी बिना किसी बहानेके नहीं हो सकता था। इसलिए मैंने ऐसा प्रबन्ध किया है और इस समय मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसे अक्षरशः सत्य समझो। पाँच वर्षके भीतर ही तुम फिर यहाँ आओगी और संसारको दिखानेके लिए तुम्हें शपथ लेनी होगी ॥ ७ ॥ ८ ॥ उस

यदा गच्छसि पातालं जगत्या पूजिता तदा । भुवं स्तुत्वा भीषयित्वा त्वामंके स्थापयाम्यहम् ॥१०॥
पुत्राभ्यां च मया सीते ततो भोगानवाप्स्यसि । मत्तस्त्वेकः कुशो ज्येष्ठस्तव पुत्रो भविष्यति ॥११॥
मुनेस्तपःप्रभावेण भविष्यत्यपरो लवः । वाल्मीकेराश्रमे चैवं कुमारौ द्वौ भविष्यतः ॥१२॥
अग्रे गत्वा च त्वत्पित्रा त्वद्योग्यं च गृहादिकम् । ससुमेधेन सकलं कृतमस्ति ममाज्ञया ॥१३॥
कुरुष्वाद्य मया यत्त्वामुच्यते जनकात्मजे । सात्त्विकी त्वं यथापूर्वं दंडके गौतमीतटे ॥१४॥
मद्वामांगे स्थिता यद्वन्मे वामांगे वसाधुना । वाल्मीकेराश्रमे गन्तुं गुणद्वयविमिश्रिता ॥१५॥
भूत्वा त्वमाश्रमे स्थित्वा मद्वियोगं प्रदर्शय । तत्रापि त्वां कुशोत्पत्तौ दास्यामि दर्शनं रहः ॥१६॥
तथेति रामवचनाज्जानकी सा स्मिताननना । रजस्तमोमयीं स्वीयां छायां निर्माय सादरम् ॥१७॥
श्रीराघवस्य वामांगे सत्त्वरूपा लयं ययौ । ततो रामः सभां गत्वा रात्रौ ज्ञानैकविग्रहः ॥१८॥
मंत्रिभिर्मंत्रतत्त्वज्ञैर्दलमुख्यैर्वयोधिकैः । समततो वेष्टितः संस्तस्थौ सिंहासनोपरि ॥१९॥
तत्रोपविष्टं राजानं सुहृदः पर्युपासिरे । हास्यप्रायकथाभिश्च हासयन्तः स्थिताः प्रभुम् ॥२०॥
कथाप्रसंगात्पप्रच्छ रामो विजयनामकम् । पौरा जानपदा वा मे किं वदन्ति शुभाशुभम् ॥२१॥
सीतां तां मातरं वा मे भ्रातॄन्वा कैकयीमथ । न भेतव्यं त्वया ब्रूहि शापितोऽसि ममोपरि ॥२२॥
इत्युक्तः प्राह विजयो देव सर्वे वदंति ते । कृतं सुदुष्करं कर्म रामेणाविदितात्मना ॥२३॥
तथाप्येवं वदन्ति त्वां जनास्तत्ते वदाम्यहम् । किंतु हत्वा दशग्रीवं सीतामावृत्य राघवः ॥२४॥
अमर्षं पृष्ठतः कृत्वा स्ववेश्म प्रत्यपादयत् । कीदृशं हृदयं तस्य सीतासंभोगजं सुखम् ॥२५॥

समय तुम जब एक दिव्य सिंहासनपर बैठकर भूमिके विवरमार्गसे पातालको जाने लगोगी । तब मैं भूमिकी प्रार्थना करके या धमकाके तुम्हें वापस ले लूँगा और अपनी गोदमें बिठाऊँगा ॥ ९ ॥ १० ॥ उस समय तुम अपने दो बेटोंको लिये हुए मेरे साथ रहकर विविध प्रकारके सुख भोगोगी। मेरे द्वारा तुमसे एक पुत्र होगा, जिसका नाम पड़ेगा कुश और दूसरा बेटा ऋषि वाल्मीकिके प्रभावसे उत्पन्न होगा, जिसका नाम होगा लव। इस प्रकार वाल्मीकिके आश्रमपर तुम्हारे दो पुत्र होंगे ॥ ११ ॥ १२ ॥ तुम्हारी माताके साथ जनकजी पहले ही उस आश्रमपर जा चुके हैं और उन्होंने तुम्हारे आरामकी सब सामग्रियाँ प्रस्तुत कर दी हैं ॥ १३ ॥ आज मैं तुमको जैसा कह रहा हूँ हे जनकात्मजे! तुम्हें वही करना पड़ेगा। जैसा उस समय गौतमीके तट-पर तुमने अपनी दो मूर्तियाँ बनायी थीं। उसी प्रकार इस समय भी अपना दो स्वरूप बनाओ और पहलेकी नाईं इस समय भी तुम सात्त्विक रूपसे मेरे वाम अंगमें निवास करो ॥ १४ ॥ १५ ॥ और दूसरे स्वरूपसे वाल्मीकिके आश्रमपर रहकर संसारको मेरे वियोगका दुःख दिखलाओ। आश्रमपर भी जब कुशका जन्म होगा, उस समय आकर मैं तुम्हें एकान्तमें दर्शन दूँगा ॥ १६ ॥ रामकी बात सुनकर सीताने मन्द मुस्कराहटके साथ 'तथास्तु' कहा और रजोगुणमयी तथा तमोगुणमयी सीता अपनी छाया रामके दक्षिण भागमें बैठ गयीं और सत्त्वरूपसे रामके वाम भागमें विलीन हो गयीं ॥ १७ ॥ इसके बाद रामचन्द्रजी सभाभवनमें गये। वहाँ मन्त्रणाकुशल मन्त्रियों तथा कितने ही दरबारियोंसे वेष्टित होकर बैठे। मित्रोंने उस समय भगवान्‌की विविध प्रकारसे पूजा की । तत्पश्चात् तरह-तरहकी हँसी-दिल्लगीकी बातें कर-करके वे परस्पर मनोविनोद करने लगे ॥ १८–२० ॥ प्रसंगवश रामने विजय नामक एक गुप्तचरसे पूछा कि इस समय अयोध्यावासी लोग मुझे किस दृष्टिसे देखते हैं ? उनकी दृष्टिमें मेरा शासन अच्छा है या खराब ? इसके अतिरिक्त सीता, मेरी माताओं, भाइयों अथवा कैकयीके प्रति लोगोंके हृदयमें कैसा भाव है ? किसी प्रकार डरो मत, जो कुछ मालूम हो साफ-साफ बतला दो । तुम्हें मेरी शपथ है। इस प्रकार रामके पूछनेपर विजयने कहा—हे देव ! आपके किये महान् कार्योंकी सराहना करते हुए लोग प्रशंसा ही करते हैं ॥ २१–२३ ॥ फिर भी आपके विषयमें कुछ लोगोंकी जो दूसरी राय है। उसे भी बतलाता हूँ। वे कहते हैं कि रामने रावणको मारकर सीताको उससे छुड़ाया और बिना कुछ सोचे-विचारे अपने घरमें बिठा लिया। हम नहीं समझते कि रामका

या हृता विजने पूर्वं रावणेन वने तदा । अकस्मादपि दुष्कर्म योषित्स्वमर्षदं भवेत् ॥२६॥
यादृग्भवति वै राजा तादृश्यो नियताः प्रजाः । इति नानाविधा वाचः प्रवदन्ति पुरौकसः ॥२७॥
अन्यत्किंचित्प्रवक्ष्यामि सांप्रतं रजकोदितम् । दुर्मार्गगां स्वरजकीं भार्यां क्रोधवशेन सः ॥२८॥
रजकः प्राह भो रंडे सोऽहं रामो न मैथिलीम् । रावणस्य गृहे स्पष्टं स्थितामंगीचकार यः ॥२९॥
यथेच्छं गच्छ रंडे त्वं नाहं रामवदाचरे । गच्छता च मया मार्गे रजकेन समीरितम् ॥३०॥
इति राम श्रुतं पूर्वं त्वया पृष्ट निवेदितम् । यत्पश्यसि हितं चात्र तत्कुरुष्व रघूत्तम ॥३१॥
श्रुत्वा तद्वचनं रामः स्वजनान्पर्यपृच्छत । तेऽपि नत्वाऽब्रुवन् राममेवमेतन्न संशयः ॥३२॥
ततो विसृज्य सचिवान्विजयं सुहृदस्तथा । आहूय लक्ष्मणं रामो वचनं चेदमब्रवीत् ॥३३॥
लोकापवादस्तु महान्सीतामाश्रित्य मेऽभवत् । सीतां प्रातः समानीय वाल्मीकेराश्रमांतिके ॥३४॥
त्यक्त्वा शीघ्रं रथेन त्वं पुनरायाहि लक्ष्मण । वक्ष्यसे यदि वा किंचिदत्र मां हतवानसि ॥३५॥
छित्वा सीताभुजं लोकप्रत्ययार्थं समानय । इत्युक्त्वा लक्ष्मणं रामः कैकेयीं द्रष्टुमाययौ ॥३६॥
एतस्मिन्नन्तरे सीतां कैकेयी रहसि स्थिता । पप्रच्छ कौतुकात्सीते भित्तौ लेख्य दशाननम् ॥३७॥
मामत्र दर्शयस्वाद्य तां प्राह जानकी तदा । मयाऽवलोकितो नैव कदाऽपि स दशाननः ॥३८॥
यदा हर्तुं पंचवट्यां मां प्राप्तो गौतमीतटे । तदा दृष्टस्तदंगुष्ठो मया दक्षिणपादजः ॥३९॥
तत्सीतावचनं श्रुत्वा कैकेयी प्राह तां पुनः । यथा दृष्टस्त्वयांगुष्ठस्तथा भित्तौ लिखस्व हि ॥४०॥
तथेति जानकी लेख्य तदंगुष्ठं भयानकम् । कैकेय्यै दर्शयामास तामामंत्र्य गृहं ययौ ॥४१॥

हृदय कैसा है, जो इतना अनर्थ होनेपर भी लौटी हुई सीताके साथ विहार करते हुए सुखी हो रहे हैं ॥२४॥२५॥ जो सीता उस दुष्टके द्वारा हरी गयी और कई वर्ष तक उसके घरमें रही, उसके लिए रामको कुछ सोचने-विचारनेकी आवश्यकता क्योंकर नहीं मालूम हुई। उनका क्या बिगड़ा, वे चाहे एक बार कोई दुष्कर्म भी कर लें तो कोई दृष्टि नहीं उठा सकता, लेकिन इसका कुप्रभाव तो प्रजाके ऊपर पड़ेगा। यह साधारण नियम है कि जिस देशका जैसा राजा होता है, प्रजा भी वैसी ही हुआ करती है। इस प्रकारकी बातें बहुतोंके मुँहसे सुनी गयी हैं। एक धोबीने भी एक बात आपके बारेमें कही थी, सो भी कहता हूँ। उसने क्रोधवश अपनी व्यभिचारिणी स्त्रीको संबोधित करके कहा--अरी ओ रण्डे! मैं वह राम नहीं हूँ, जिन्होंने वर्षों रावणके घरमें रही हुई सीताको अङ्गीकार कर लिया है। तेरी जहाँ इच्छा हो जा, मैं रामकी तरह कभी नहीं करूँगा और तुझे नहीं रखूँगा ॥२६-३०॥ मैं रास्तेमें चला जा रहा था, तब धोबीकी बात सुनी थी। सो पूछनेपर आपको बतला दी। अब आप जो अच्छा समझें, वह करें। विजयकी बातें सुनकर रामचन्द्रजीने अपने मित्रोंसे भी इस विषयमें पूछ-ताछ की। उन लोगोंने भी वही कहा, जो विजयने बतलाया था। इसके बाद रामचन्द्रजीने मन्त्रियों तथा विजयको विदा कर दिया और लक्ष्मणको बुलाया। लक्ष्मणसे रामने कहा--हे लक्ष्मण! सीताके कारण संसारमें लोग हमारी बड़ी निन्दा कर रहे हैं। इससे भी बढ़कर अपवाद होनेकी आशंका है। इसलिए कल सवेरे तुम सीताको रथमें बिठाकर मुनि वाल्मीकिके आश्रमपर छोड़ आओ। इस बातके विपरीत यदि तुम कुछ कहोगे तो तुम्हें हमारी हत्या करनेका पाप लगेगा। हाँ, इतना और करना। वनसे लौटते समय सीताकी एक भुजा भी काटकर लेते आना, जिसे दिखाकर मैं अयोध्यावालोंको विश्वास दिला सकूँगा। इतना कहकर राम कैकेयीके पास चल दिये। इसी बीच कैकेयीने आँगनमें बैठी बातें करते-करते सीतासे कहा-सीते! इस दीवारपर रावणका चित्र लिखकर हमें दिखाओ कि वह कितना बड़ा था। इसके उत्तरमें सीताने कहा--मैंने रावणको कभी देखा ही नहीं ॥ ३१-३८ ॥ हाँ, जब वह पंचवटीमें मुझे हरनेके लिए गया था, तब मैंने उसके दाहिने पैरका अंगूठा देखा था। सीताका उत्तर सुनकर कैकेयीने कहा—अच्छा, उसका अंगूठा जैसा रहा हो, वही इस दीवारपर लिख दो। जानकीने कैकेयीके कथनानुसार दीवारपर उसके भयानक अंगूठेका चित्र लिखकर दिखा दिया और थोड़ी देर बाद अपने

अगुष्ठोपरि कैकेय्या यथायोग्यो दशाननः । लिखितः स्वेन हस्तेन रामं द्रष्टुं कुबुद्धितः ॥४२॥
तावद्रामं समायातं दृष्ट्वा सा संभ्रमान्विता । भित्त्यंतिके राघवाय ददावासनमुत्तमम् ॥४३॥
रामोऽपि नत्वा कैकेयीमासने संस्थितोऽभवत् । ददर्श भित्तौ लिखितं विचित्रं तं दशाननम् ॥४४॥
रामः पप्रच्छ केनात्र लिखितोऽयं दशाननः । कैकेयी कथयामास सीतया लिखितस्त्विति ॥४५॥
यत्र यत्र मनो लग्नं स्मर्यते हृदि तत्सदा । स्त्रियाश्चरित्रं को वेत्ति शिवाद्या मोहिताः स्त्रिया ॥४६॥
कैकेयीवचनं चेत्थं श्रुत्वा रामो महामनाः । सीताश्रयं सभावृत्तं कैकेयीमाह विस्तरात् ॥४७॥
लक्ष्मणेन त्यजाम्यम्ब श्वः सीतां जाह्नवीतटे । सीताभुजं वने छित्त्वा समानयतु मद्गिरा ॥४८॥
सौमित्रिस्त्वां तथा पौरान्दर्शयिष्यति निश्चयात् ।
सीतया लिखितो यस्मात्स्वभुजेन दशाननः ॥४९॥
स्त्रीहत्याभयमालक्ष्य तद्वधे लक्ष्मणो मया । न चोदितश्च तां हिंस्रा भक्षयिष्यंति वै क्षणात् ॥५०॥
इति रामवचः श्रुत्वा कैकेयी मुदिताऽभवत् । सीताया विरहाद्रामो नेदं राज्यं प्रशास्यति ॥५१॥
सेवार्थं रामचन्द्रस्य लक्ष्मणोऽपि न शास्यति । तदा श्रीरामवाक्येन भरतो मे प्रशास्यति ॥५२॥
इति संचिंत्य हृदये कैकेयी मुदिताऽभवत् । रामोऽपि नत्वा कैकेयीं सुमित्रां स्वां च मातरम्॥५३॥
सभावृत्तं च कैकयीगेहे यज्जातमादरात् । श्रावयामास सकलं वृत्तं सीताश्रयं प्रभुः ॥५४॥
नत्वा सुमित्रां कौसल्यां रामः सीतागृहं ययौ । सीतया दत्तपाद्यार्घासनमंगीचकार सः ॥५५॥
सभावृत्तं च कैकेयीगेहे यद्दृष्टमादरात् । श्रावयामास तत्कृत्स्नं वृत्तं तं जानकीं मुदा ॥५६॥
तच्छ्रुत्वा जनकीं प्राह कैकेय्या वचनान्मया । अंगुष्ठ एव लिखितस्तयोर्ध्वं लिखितो धिया ॥५७॥
अंगुष्ठस्यानुरूपेण दशास्यो दुष्टबुद्धितः । सत्सीतावचनं श्रुत्वा जानकीमाह राघवः ॥५८॥

महलोंको चली गयीं। सीताके चली जानेपर द्वेषवश कैकेयीने रामको दिखानेके लिए उस अंगूठेके अनुसार रावणके पूरे शरीरका चित्र अपने हाथसे बना दिया ॥ ३९-४२ ॥ इतनेमें कैकेयीने देखा कि राम इसी ओर आ रहे हैं। तब झटपट उसने उस दीवारके पास ही रामजीको बैठनेके लिए आसन डाल दिया। रामने वहाँ पहुँचकर कैकेयीको प्रणाम किया। फिर आसनपर बैठ गये। थोड़ी देर बाद रामकी दृष्टि उस बने हुए रावणके चित्रपर पड़ी ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ रामने पूछा—यहांपर रावणका चित्र किसने बनाया है? उत्तरमें कैकेयीने कहा कि आपकी बहू सीताने यह चित्र लिखा है। जहाँ जिसका मन लगा रहता है, बार-बार उसीकी याद आती रहती है। यह एक साधारण नियम है। और फिर स्त्रियोंके चरित्रको कौन जान सकता है। शिवादिक देवता भी तो स्त्रीचरित्रका पार नहीं पा सके और वे भी मोहित हो गये ॥४५॥४६॥ कैकेयीकी बातें सुनकर मनस्वी रामचन्द्रजीने कैकेयीको वह बातें भी बतलायीं, जो सभामें विजयके मुँहसे सुनी थीं। इसी सिलसिलेमें उन्होंने यह भी कहा—मातः! कल सवेरे लक्ष्मणके साथ मैं सीताको गंगाजीके तटपर भेज रहा हूँ। वह उसे वहाँ छोड़ देगा और आप तथा पुरवासियोंको दिखानेके लिए मेरे कहनेसे सीताका एक हाथ भी काट लायेगा। क्योंकि सीताने उसी हाथसे तो रावणका यह चित्र बनाया होगा। स्त्रीहत्याके भयसे मैं उसे मारनेकी आज्ञा नहीं दूँगा। लेकिन जब उसके हाथ नहीं रहेंगे तो वह जियेगी कैसे? वनके हिंसक जीव ही उसको खा जायेंगे ॥४७-५०॥ इस प्रकार रामके वचन सुनकर कैकेयी बहुत प्रसन्न हुई और मनही मन सोचने लगी कि सीताके विरहसे दुखी होकर राम राज्यका काम नहीं कर सकेंगे। लक्ष्मण भी रामकी सेवामें लगे रहनेके कारण राज्यका भार अपने ऊपर नहीं लेंगे। उस दशामें विवश होकर राम मेरे बेटे भरतसे राज्यका काम करनेके लिए आग्रह करेंगे। यह सोचकर कैकेयी प्रसन्न हुई। रामजी भी कैकेयीको प्रणाम करके अपने महलोंको चले गये। वहाँ अपनी माता कौसल्या तथा सुमित्राको आदिसे अंततक सीतासम्बन्धी सब वृत्तान्त कह सुनाया। फिर कौसल्या और सुमित्राको प्रणाम करके वे सीताके भवनमें जा पहुँचे। सीताने पाद्य-अर्घ्य-आचमनीयादिसे उनकी पूजा की और रामजी एक आसनपर बैठ गये। इसके

कौटिल्यबुद्धिं कैकेय्याः समग्रां वेद्म्यहं प्रिये । इत्युक्त्वा राघवः सीतामालिंग्यास्यं चुचुंब सः ॥५९॥
सीतया हेमपर्यङ्के भुक्त्वा भोगान्सुपुष्कलान् । विनोदार्थं रघुपतिः प्राह रात्रौ विदेहजाम् ॥६०॥
स्त्रीणां सीते सगर्भाणां वांछितं वांछते मनः । का ते वांछा वदस्व त्वं तत्ते दास्यामि निश्चितम्॥६१॥
इति रामवचः श्रुत्वा भाविकार्येण यंत्रिता । सा प्राह राघवं रामं नगांस्तीरस्थितांस्तरून् ॥६२॥
मुनीनामाश्रमाँश्चापि ऋषिपत्नीश्च तद्वनम् । वांछते मे मनो द्रष्टुं शीघ्रं प्रेषय तत्र माम् ॥६३॥
इति सीतावचः श्रुत्वा तथाऽस्त्विति रघूत्तमः । प्राह सीते लक्ष्मणः श्वो नेष्यति त्वां ममाज्ञया॥६४॥
पुनः प्राह रघुश्रेष्ठः सीते ते क्रीडनादिभिः । जपध्यानादिकं सर्वं विस्मृतं तन्मया पुरा ॥६५॥
तत्करोम्यधुना सीते गतायां त्वयि काननम् । इत्युक्त्वा जानकीं रामः सुखं सुष्वाप मंचके ॥६६॥
सीताऽपि चिंतयामास यत्र माता पिता मम । किं मां न्यूनं हि तत्रास्ति किंचिद्वस्त्वादिकं सह॥६७॥
नाहंनेष्यामिश्चस्तूर्णीं सख्या दास्या समन्विता । लक्ष्मणेन रथे स्थित्वा गच्छामि मुदिता सुखम्॥६८॥
इति निश्चित्य सा रात्रौ सुखं सुष्वाप मंचके । अथ प्रभाते सोत्थाय स्नाता स्नातं रघूत्तमम् ॥६९॥
पक्वान्नादीनि सत्पात्रे पर्यवेषयदुत्तमम् । उपहारे कृते भर्त्रा स्वयं कृत्वोपहारकम् ॥७०॥
पृष्ट्वोर्मिलादिकाः स्त्रीश्च ततः श्वश्रूः प्रणम्य च । गङ्गातीरस्थितान् वृक्षान्मुनीन्द्रष्टुं समुद्यता ॥७१॥
ताः पप्रच्छ सखीयुक्ता दास्या सस्मार लक्ष्मणम् । ततोऽसौ लक्ष्मणो भ्रात्रा चोदितस्तां ययौ जवात्७२॥
दास्या सख्या तुलस्याथ सीतां कृत्वा रथस्थिताम्। ययौ दक्षिणमार्गेण वायुवेगात्स जाह्नवीम् ॥७३॥
इन्द्राद्या निर्जराश्चक्रुः सीतासन्मार्गसत्क्रियाम् । उल्लंघ्य तमसां पुण्यां गोमतीं जाह्नवीमपि ॥७४॥
यमुनां तां महापुण्यां तथा मंदाकिनीं नदीम् । द्वितीयां तमसां पुण्यां समुल्लंघ्य स लक्ष्मणः ॥७५॥

बाद उन्होंने वह वृत्तान्त बतलाया, जो सभामें तथा कैकेयीके भवनमें हुआ था। सीताने कहा कि माता कैकेयीके कहनेसे मैंने केवल रावणके पैरका अंगूठा बनाया था। बाकी उन्होंने अपनी कल्पनासे रावणका सारा शरीर बनाया होगा। इस तरह सीताके वचन सुनकर रामने कहा–प्रिये ! मैं कैकेयीकी कुटिलताको भली-भाँति जानता हूँ। इतना कहकर रामने सीताको अपनी छातीसे लगा लिया और बड़ी देरतक उनका मुँह चूमते रहे। फिर विनोद करते करते वहीं लेट गये। थोड़ी देर बाद रामने सीतासे कहा—प्रिये ! मैं जहाँतक जानता हूँ, गर्भिणी स्त्रियें कितनी ही चीजें चाहा करती हैं। तुम्हारी भी किसी वस्तुकी इच्छा है ? यदि हो तो बतलाओ, मैं अवश्य दूँगा ॥ ५९–६१ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर भावीवश सीताने गङ्गातटनिवासी ऋषियोंके आश्रमों और वनोंको देखनेकी इच्छा प्रकट की और कहा कि मुझे शीघ्र वहाँ भेज दीजिये। राम सीताकी माँग स्वीकार करके कहने लगे–सीते ! कल ही लक्ष्मण तुम्हें गङ्गातटपर ले जायँगे। थोड़ी देर बाद फिर बोले—सीते ! बहुत दिनोंसे तुम्हारे साथ भोग-विलासमें मैं इतना लिप्त हो गया कि जप, तप, ध्यान, धारणा आदि सब कुछ भूल गया था। यदि तुम कुछ दिनके लिए वहाँ चली जाओगी तो मैं कुछ भजन-ध्यान कर लूँगा। इस प्रकार बातें करके राम सो गये। सीता भी अपने मनमें सोचने लगीं कि जहाँपर मेरे पिता-माता आदि परिवारके सब लोग विद्यमान हैं, वहाँ किसी वस्तुकी न्यूनता तो हो नहीं सकती। अतः मैं साथ कुछ न ले जाऊँगी ॥ ६२–६७ ॥ अब कलका दिन मैं वैसे नहीं बीतने दूँगी, बल्कि अपनी सखियों दासियों और लक्ष्मणके साथ हँसी-खुशी वनको अवश्य जाऊँगी। यह निश्चय करके सीता भी आनन्दपूर्वक सो गयीं ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ सबेरे सीताने उठकर स्नान किया और भोजन बनाया। उधर रामने भी स्नान कर लिया और भोजन करने बैठे। सीताने बड़े प्रेमसे परोसकर उन्हें भोजन कराया। तदनन्तर स्वयं भोजन किया ॥ ७० ॥ फिर उर्मिला आदि बहनोंसे पूछकर माताओंको प्रणाम किया और गङ्गातटके वनोंमें रहनेवाले मुनियोंको देखनेके लिए जानेको तैयार हो गयीं ॥७१॥ उन्होंने रथ लानेके लिए लक्ष्मणजीको बुलाया। रामचन्द्रके आज्ञानुसार लक्ष्मण शीघ्र रथ लेकर आ पहुँचे ॥ ७२ ॥ सीता अपनी सखियों, दासियों तथा तुलसीवृक्षके साथ रथमें बैठीं और लक्ष्मणने दक्षिण मार्गसे गङ्गातटकी ओर पवनवेगके समान रथको भगाया ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

चित्रकूटोपत्यकायां वाल्मीकेराश्रमांतिके । पिप्पलाधो मैथिलीं तां सख्या दास्या वरासने ॥७६॥
निवेश्य नत्वा स प्राह साश्रुनेत्रः सगद्गदः । लोकापवादभीत्या त्वां त्यक्तवान् राघवो वने ॥७७॥

दोषो न कश्चिन्मे मातर्गच्छाश्रमपदं मुनेः ।
इत्युक्त्वा तां परिक्रम्य सख्या दास्याऽपि वीजिताम् ॥७८॥

ययौ रथेन सौमित्रिः पूर्वमार्गेण जाह्नवीम् । शिष्यैः श्रुत्वाऽथ वाल्मीकिर्जनकेन सुमेधसा ॥७९॥
ययौ स्त्रीभिर्द्विजैर्युक्तः पूजयामास जानकीम् । शिविकायां सन्निवेश्य वीजितां चामरादिभिः ॥८०॥
नानावाद्यनिनादैश्च वेश्यानां नर्तनैर्वरैः । स्तवनैर्मागधादीनां नटादीनां सुगायनैः ॥८१॥
निनाय जनकः सीतां वाल्मीकेराश्रमे मुदा । मुनिपत्न्यो वन्यपुष्पैर्ववर्षुर्जानकीं मुदा ॥८२॥
जानकीशिविकाग्रे ते दुद्रुवुर्वेत्रपाणयः । एव विवेश सा सीता वाल्मीकेराश्रमं शनैः ॥८३॥
चक्रुर्नीराजनं दीपैर्मुनिपत्न्यश्च जानकीम् । जानकी हेमपर्यंके धृताधोकोपवर्हणा ॥८४॥
सुखमापाश्रमे तस्य वाल्मीकेश्च तपस्विनः । जानकीं पूजयामासुर्मुनिपत्न्यः पृथक् पृथक् ॥८५॥
दिव्यान्नैर्वनसंभूतैर्वन्यपुष्पैर्निरन्तरम् । ज्ञात्वा परात्मनो लक्ष्मीं मुनिवाक्येन भक्तितः ॥८६॥
दोहदान् पूरयामासुः सीतयास्ता मुनिस्त्रियः । शिविकासंस्थिता सीता ददर्श वनकौतुकम् ॥८७॥

यथापूर्वं तु साकेते सुखमाप विदेहजा ।
तथा मुनेराश्रमेऽपि सुखमाप पतिव्रता ॥८८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये
जन्मकाण्डे सीताया वाल्मीक्याश्रमगमनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

जब वे परम पवित्र यमुना, मंदाकिनी तथा तमसा नदीको पार करके चित्रकूटकी तलैटीमें वाल्मीकिआश्रमके समीप पहुँचे, तब लक्ष्मणने रथको रोका और एक पीपल वृक्षकी छायामें आसन बिछा दिया। सब सखियोंके साथ सीताजी उसपर जा बैठीं ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ तब आँखोंमें आँसू भरकर गद्गद कण्ठसे लक्ष्मणजी कहने लगे—माता ! लोकापवादके भयसे रामचन्द्रजीने आपको इस वनमें छोड़नेके लिए मुझे आज्ञा दी है। इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। अब आप यहाँसे ऋषि वाल्मीकिके आश्रमपर चली जायँ। इतना कहकर लक्ष्मणने सीताकी परिक्रमा की और प्रणाम किया। उस समय दासी और सखियाँ सीतापर पंखा झल रही थी ॥७७॥७८॥ फिर वे अपने रथपर बैठकर उसी मार्गसे अयोध्याके लिए लौट पड़े, जिधरसे गये थे। उधर वाल्मीकिने कुछ शिष्योंसे यह वृतांत सुना तो जनकजी, सुमेधा तथा कितनी ही स्त्रियों और ब्राह्मणोंके साथ वहाँ पहुँचे, जहाँ सीता बैठी थीं। वहाँ पहुँचकर उन्होंने सीताकी पूजा की। फिर उन्हें सुन्दर पालकीमें बिठाया और अपने आश्रमकी ओर चले। रास्तेमें अनेक प्रकारके बाजे बज रहे थे। वेश्यायें नाच रहीं थीं और भाट विरुदावली बखान रहे थे। नट-गायक आदि सुन्दर गायन-गा रहे थे ॥ ७९-८१ ॥ जब सीताजी आश्रमपर पहुँच गयीं, उस समय मुनिपत्नियोंने सहर्ष उनपर विविध प्रकारके वनफूल बरसाये ॥ ८२ ॥ उन्होंने आरती उतारी और एक सुवर्णनिर्मित पलंगपर बिठाया ॥ ८३ ॥ वहाँ पहुँचनेपर सीताको बड़ा आनन्द मिला। आश्रमकी ऋषिपत्नियोंने अलग-अलग सीताकी पूजा की ॥ ८४ ॥ उस दिनसे कितने ही तरहके दिव्य अन्न, वनके सुस्वादु फल तथा फूल आदि दे-देकर सीताको सब स्त्रियें प्रसन्न किये रहती थीं। क्योंकि उन लोगोंने वाल्मीकिसे सुन रक्खा था कि सीता कोई साधारण स्त्री नहीं, साक्षात् विष्णुभगवानकी भार्या लक्ष्मी हैं। जब इच्छा होती, तब सीता पालकीपर सवार होकर वनोंको देखनेके लिये जाया करती थीं। सीताको जो सुख अयोध्यामें मिलता था, वही वहाँपर भी सुलभ था ॥ ८५-८८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये जन्मकाण्डे पं० रामतेजपाण्डेयविरचितभाषाटीकायां तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः

(वाल्मीकिके आश्रममें लव-कुशका जन्म)

श्रीरामदास उवाच

अथ गङ्गातटं गत्वा लक्ष्मणोऽचिन्तयद्धृदि । स्वेच्छया कौतुकात्सीतां मया शुद्धां स त्यक्तवान् ॥ १ ॥
स्वीयकामप्रशान्त्यर्थं शास्त्राज्ञां प्रतिपालयन् । एवं सति पुनस्तेन किं ममाज्ञापितं रहः ॥ २ ॥
वनात्सीताभुजं छित्त्वा नयस्वेत्यतिदुर्घटम् । मयापि शपथं श्रुत्वा न पृष्टः स विचिंत्य च ॥ ३ ॥
अधुना किं करोम्यत्र कथं रामं प्रगम्यते । सीताभुजं विना दृष्ट्वा रामो मां किं वदिष्यति ॥ ४ ॥
छेत्तुं सीताभुजं शक्तो भविष्यामि कथं त्वहम् । ययाऽहं पुत्रवन्नित्यं पालितो लालितस्त्वति ॥ ५ ॥
अधुनाऽग्निं विशाम्यत्र रामायास्यं न दर्शये । एवं निश्चित्य सौमित्रिश्चितां कर्तुं मनो दधे ॥ ६ ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र विश्वकर्मा विधेर्गिरा । कुठारहस्तो विपिने बभ्राम तक्षरूपधृक् ॥ ७ ॥
तं दृष्ट्वा लक्ष्मणः प्राह त्वं मे साहाय्यमाचर । कुठारेण तरूँश्छित्वा चितार्थं देहि मां जवात् ॥ ८ ॥
यथेच्छं वसु दास्यामि त्वामहं निश्चयेन हि । सोऽप्याह लक्ष्मणं वीर चिताहेतुं वदस्व माम् ॥ ९ ॥
सौमित्रिः कथयामास पूर्ववृत्तं सविस्तरम् । तच्छ्रुत्वा सकलं तक्षः सौमित्रिं प्राह सस्मितः ॥ १० ॥
अल्पार्थे स्वीयकुणपं मा जुहाव स्ववाहुज । अहं सीताभुजं कृत्वाऽधुना दास्यामि ते क्षणात् ॥ ११ ॥
इत्युक्त्वा लक्ष्मणं कृत्वा जानकीभुजमुत्तमम् । त्वङ्मांसास्थिस्नायुरक्तपूरितं कंचुकोयुतम् ॥ १२ ॥
सीतालङ्कारसहितं तस्याश्चिह्नविचिह्नितम् । ददौ लक्ष्मणहस्ते तं स्वयमंतर्दधे क्षणात् ॥ १३ ॥
सीताभुजं समादाय लक्ष्मणोऽपि पुरीं ययौ । गतश्रियं निरुत्साहां वात्यातिधूलिधूसराम् ॥ १४ ॥
ददर्श नगरीं स्वीयां नारीहीनगृहोपमाम् । विवेशाधोमुखः पुर्यं नत्वा सदसि राघवम् ॥ १५ ॥

श्रीरामदास बोले—उधर गङ्गातटके समीप पहुँचकर लक्ष्मणने अपने मनमें सोचा कि यद्यपि लङ्कासे लौटनेपर मैंने ही अग्निमें डालकर सीताको पवित्र किया था। फिर भी रामचन्द्रजीने सीता माताका परित्याग कर दिया है ॥ १ ॥ इसमें दो कारण हैं। एक तो रामचन्द्रजीको अपनी कामवासना कम करनी है, दूसरे शास्त्रकी आज्ञाका पालन करना है। अस्तु, रामके आदेशानुसार मैंने सीताका परित्याग तो कर दिया, किन्तु एक और आज्ञा थी कि "लौटते समय सीताकी एक भुजा भी काटकर लेते आना"। यह बहुत ही कठिन काम है। उस समय रामजीने कसम रखा दिया था, इसलिए विशेष बातचीत भी नहीं कर सका ॥ २ ॥ ३ ॥ अब मैं क्या करूँ ? कैसे प्रभुके पास लौटकर जाऊँ ? यदि वे बिना हाथ लिये मुझे लौटे देखेंगे तो क्या कहेंगे और फिर यदि हाथ काटना चाहूँ तो कैसे काटूँ। जिन्होंने अपने बच्चेके समान मेरा दुलार किया, उन सीताके साथ यह कसाईका काम करनेके लिये मैं क्योंकर आगे बढ़ सकूँगा ॥ ४ ॥ ५ ॥ इसलिए सबसे अच्छा उपाय यह है कि यहीं आगमें जलकर मर जाऊँ। रामको मुँह ही न दिखाऊँ तो अच्छा हो। इस प्रकार विचार करके लक्ष्मणने चिता बनानेका निश्चय किया ॥ ६ ॥ इसी बीचमें ब्रह्माके आज्ञानुसार विश्वकर्मा एक बढ़ईका रूप धारण करके हाथमें कुल्हाड़ी लिये वनमें घूमते फिरते वहाँ आ पहुँचे ॥ ७ ॥ लक्ष्मणने विश्वकर्मासे कहा—कृपया आप अपनी कुल्हाड़ीसे थोड़ीसी लकड़ी काटकर मुझे चिता बनानेको दे दीजिये ॥ ८ ॥ आप जितना धन माँगेंगे, दूँगा। बढ़ईने कहा—हे वीर ! आप अपने लिये चिता बनानेका कारण तो हमें बताइये ॥ ९ ॥ लक्ष्मणने आदिसे अन्ततक सारा वृत्तान्त बता दिया। उसे सुनकर मुस्कराते हुए विश्वकर्माने कहा—॥ १० ॥ इतनी-सी बातके लिये आप अपने इस बहुमूल्य शरीरको आगमें मत जलाइये। मैं अभी क्षणभरमें सीताका हाथ बनाकर आपको देता हूँ ॥ ११ ॥ तदनुसार तनिक ही देरमें विश्वकर्माने सीताका ऐसा हाथ बना दिया, जिसमेंसे रुधिर बह रहा था, माँसके लोथड़े झूल रहे थे और कञ्चुकी पड़ी हुई थी ॥ १२ ॥ सीताके उस हाथमें सब चिह्न विद्यमान थे और अलङ्कार पड़े थे। उस हाथको लक्ष्मणके हाथमें देकर विश्वकर्मा अन्तर्धान हो गये ॥ १३ ॥ तब लक्ष्मण वह भुजा लेकर अयोध्यापुरीको

दर्शयामास सीताया भुजं कङ्कणमण्डितम् । तं निरीक्ष्य भुजं रामोऽधोमुखः प्राह लक्ष्मणम् ॥१६॥
कैकेयीं सुहृदः पौरान् सर्वान् जानपदान्नृपान् । सीताभुजो दर्शनीयस्त्वयाऽद्य मम शासनात् ॥१७॥
तथेत्युक्त्वा लक्ष्मणोऽपि स चकार यथोदितः । भुजं संरक्षयामास पेटिकायां निधाय सः ॥
कैकेयी तं भुजं दृष्ट्वा तुतोष नितरां हृदि ॥१८॥
रामोऽपि सीतारहितः परात्मा विज्ञानदृक्केवल आदिदेवः ।
संत्यज्य भोगानखिलान्विरक्तो मुनिव्रतोऽभून्मुनिसेवितांघ्रिः ॥१९॥
अथ सीताऽपि वाल्मीकेर्मुनिपत्नीभिराश्रमे । प्रत्यहं पूजिता वन्यैः सुखं तस्थौ मुदान्विता ॥२ ॥
एवं मासद्वयं तत्र नीत्वा सीताऽऽश्रमे मुनेः । सुदिने सुषुवे रात्रौ पुत्ररत्नं रविप्रभम् ॥२१॥
एतस्मिन्नन्तरे रात्रौ ज्ञात्वा तं समयं प्रभुः । राघवः किंकिणीमालाघंटां मुक्त्वाऽथ बंधुना ॥२२॥
पुष्पकस्य ततस्तस्मिन् स्थित्वाकाशपथा ययौ । वाल्मीकेराश्रमे वेगात्सबन्धुस्तं ननाम सः ॥२३॥
ततो वाल्मीकिना विप्रैर्मितैरेव रघूत्तमः । जातकर्मादिसंस्कारांश्चकार विधिपूर्वकम् ॥२४॥
सीतायाः पुरतः पुत्राननमालोकयन्मुदा । ददौ दानान्यनेकानि सवस्त्राभरणान्यपि ॥२५॥
चकार विधिवच्छ्राद्धं पुत्रजन्ममहोत्सवे । देवदुन्दुभयो नेदुर्ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥२६॥
सुराः सीतां शिशुं रामं ननृतुः खे सुरस्त्रियः । नेदुर्जनकवाद्यानि ननृतुर्वारयोषितः ॥२७॥
तुष्टुवुर्मागधाद्याश्च सीतां रामं शिशुं मुहुः । ऋषिपत्न्यः शिशुं सीतां रामं दीपैः सुभूषिताः ॥२८॥
पृथङ्नीराजनं कृत्वा जगुर्गीतं हि सुस्वरम् । वस्त्राद्यैः पूजयामास ताः सर्वा रघुनन्दनः ॥२९॥
सीतारामौ विदेहोऽपि पूजयामास विस्तरात् । वाल्मीकिस्तु कुशैः शांतिं चकार विधिना शिशोः ॥३०॥

ओर चल पड़े। अयोध्यामें घुसते ही लक्ष्मणने देखा कि एक ही दिनमें अयोध्यापुरी सर्वथा श्रीहीन हो गयी है। जहाँ-तहाँ बवंडर उठ रहे हैं और चारों धूल उड़ती दीखती है। यह सब मिलकर उस दिन अयोध्यापुरी ऐसी लग रही थी, जैसे बिना स्त्रीका बिना घर। लक्ष्मण जाते-जाते महलोंमें पहुँचे और रामचन्द्रजीको सीताका हाथ दिखलाया। उस कङ्कण-विमण्डित सीताकी भुजाको देखकर रामने अपना मस्तक झुका लिया और—॥१४–१६॥ इसे ले जाकर माता कैकेयी, मेरे मित्रों, राजाओं एवं पुरवासियों-को दिखला दो, यह मेरी आज्ञा है ॥ १७ ॥ 'तथास्तु' कहकर लक्ष्मणने भी आज्ञाका पालन किया और एक पेटीमें सम्हालकर सीताकी भुजा रख ली ॥ १८ ॥ कैकेयीने सीताकी भुजा देखी तो बहुत प्रसन्न हुई। इधर रामचन्द्रजीने सीतासे वियुक्त होकर सब सांसारिक भोगोंको त्याग दिया और तपस्वियोंके समान अपना जीवन बिताने लगे ॥ १९ ॥ उधर सीताजी भी वाल्मीकिके आश्रमपर वहाँकी मुनिपत्नियोंसे पूजित होती हुई सानन्द जीवन बिताने लगीं ॥ २० ॥ इस तरह दो महीना बीतनेपर सीताने शुभ दिन और शुभ घड़ीमें एक पुत्ररत्नको जन्म दिया ॥ २१ ॥ उसी समय रामचन्द्रको भी यह समाचार मिल गया और रात्रिको अपने पुष्पक विमानपर चढ़कर लक्ष्मणजीके साथ आकाशमार्गसे श्रीवाल्मीकिजीके आश्रमपर जा पहुँचे और लक्ष्मण तथा रामने मुनिको प्रणाम किया ॥ २२ ॥ २३ ॥ इसके अनन्तर वाल्मीकिने आश्रममें उपस्थित थोड़ेसे ब्राह्मणोंके साथ बच्चेका विधिवत् जातकर्मादि संस्कार किया ॥ २४ ॥ सीताके समक्ष राम-चन्द्रने हर्षपूर्वक बेटेका मुख देखा और अनेक प्रकारके वस्त्र-आभरण आदि दान करके ब्राह्मणोंको दिये ॥ २५ ॥ उस पुत्र-जन्मकी प्रसन्नतामें रामने नान्दीमुख-श्राद्धादि किया। देवताओंने प्रसन्न होकर दुन्दुभी बजायी और उनपर फूल बरसाये ॥ २६ ॥ सीता और सीताके पुत्रका मुख देखकर देवाङ्गनायें नाचने लगीं। उधर जनकजीके द्वारा नियुक्त बाजेवाले बाजा बजाने लगे और वेश्यायें नाचने लगीं ॥ २७ ॥ बन्दीजन सीता और रामकी स्तुति करने लगे। ऋषिपत्नियोंने सुन्दर थालमें घृतका दीपक जलाकर राम, सीता तथा नवजात शिशुकी आरती उतारी और विविध प्रकारके मङ्गलगान गाये। रामने अनेक तरहके वस्त्राभूषणोंसे उनका सत्कार किया ॥ २८ ॥ २९ ॥ महाराज जनकने भी राम और सीताका विधिवत् पूजन किया और वाल्मीकिने

शांत्यर्थं प्रोक्षितो यस्मात्कुशैस्तस्मात्कुशाह्वयः। वाल्मीकिना राघवाग्रे निश्चितो बालकस्य हि ॥३१॥
एवं नानामुत्साहैर्नीत्वा तत्र निशां सुखम्। तत्रस्थान् सकलानाह ममात्रागमनस्य हि ॥३२॥
यस्माद्वार्ता बहिर्गच्छेदाश्रमादस्य वै मुनेः। स मे दण्ड्यो भवेदेव शत्रुरूपो न संशयः ॥३३॥
इत्युक्त्वा सकलान्दृष्ट्वा मुनीन्नत्वा पुनः पुनः। सीतामामंत्र्य श्रीरामो यानं भ्रात्राऽऽरुरोह सः ॥३४॥
विहायसा क्षणात्प्राप साकेतं रघुनन्दनः। अवरुह्य विमानात्स पूर्ववन्निद्रितो गृहे ॥३५॥
अथ रामो वाजिमेधशतं कर्तुं मनो दधे। कृत्वा स्वर्णमयीं सीतां वस्त्रालंकारभूषिताम् ॥३६॥
पापिनीं मलिनां दुष्टां भर्तुर्निंदापरायणाम्। भर्तृविद्वेषिणीं क्रूरां चौरकर्मणि तत्पराम् ॥३७॥
भर्तारं घातुमिच्छन्तीं सदा कलहकारिणीम्। परभुक्तां पापरतां भर्तुर्वाक्यविलोपिनीम् ॥३८॥
स्वीयेच्छावर्तिनीं नष्टां मृतां नीतां गतां स्त्रियम्। त्यक्त्वा कुशमयीं विप्रैः कार्या पत्नी स्वकर्मसु ॥३९॥
हैमी कार्या बाहुजैश्च वैश्यैः कार्या तु राजती। शूद्रैः कार्या ताम्रमयी स्वस्वकर्मप्रसिद्धये ॥४०॥
अथवा सर्ववर्णैश्च कार्या पत्नी तु कांचनी। रामोऽपि कृत्वा सौवर्णिमग्निहोत्रं चकार सः ॥४१॥
रावणेन यदा नीता सीता सा दंडके तदा। हेम्नोऽभावात्कुशमयी कृता रामेण जानकी ॥४२॥
अन्ये कुशमयीं पत्नीं विधाय गृहमेधिनः। अग्निहोत्रमुपासन्ते नित्यत्यागोऽतिगर्हितः ॥४३॥
व्यभिचारवती पापा भर्तृविद्वेषिणी तथा। आधाने सा परित्याज्या न वा त्याज्या मतांतरात् ॥४४॥
पक्षे पक्षे नवम्यां हि स्नानं ह्यवभृथाभिधम्। कर्तुं निश्चितवान् रामस्तदा विप्रैः पुरोधसा ॥४५॥
भागीरथ्युत्तरे तीरे यज्ञभूमिं चकार सः। आप्रयागान्मुद्गलस्याश्रमो यावच्च दक्षिणे ॥४६॥

विधिपूर्वक कुशासे अभिषेक करते हुए शान्ति-पाठ किया ॥ ३० ॥ शान्तिके निमित्त वाल्मीकिने कुशासे शांति की थी। इसीलिए उन्होंने रामके सामने ही उस बच्चेका नाम कुश रक्खा ॥ ३१ ॥ इस तरह नाना प्रकारके उत्सवोंमें वह रात वहाँ बितायी और पिछली रातको रामने आश्रमके लोगोंसे कहा कि जो कोई मनुष्य मेरे यहाँ आनेका समाचार किसीसे कहेगा, वह मेरा शत्रु होगा और मै उसको दंड दिये बिना न रहूँगा ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ऐसा कहकर रामने अयोध्या वापस आनेके लिए लोगोंसे आज्ञा माँगी और मुनियोंको प्रणाम किया। फिर सीतासे पूछकर रामचन्द्रजी लक्ष्मणके साथ विमानपर आरूढ़ हुए और थोड़ी देरमें अयोध्या आकर नित्यकी तरह अपनी शय्यापर सो गये ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ कुछ दिन बीतनेके बाद रामने सौ अश्वमेध यज्ञ करनेका विचार किया। उस समय सीता तो थीं नहीं। इसलिए रामने सुवर्णकी सीता बनाकर यज्ञ करना निश्चित किया। क्योंकि शास्त्रमें लिखा है कि पापिन, मैली-कुचैली, दुष्ट स्वभावकी, निन्दा करनेवाली, पतिसे लड़ाई करनेवाली, क्रूर प्रकृतिकी, चोट्टिन, स्वामीको मारनेकी इच्छा रखनेवाली, सदा लड़ाई करनेवाली, कुलटा, स्वामीकी आज्ञाके प्रतिकूल चलनेवाली और स्वेच्छाचारिणी स्त्री यदि खो जाय, मर जाय या किसीके द्वारा भगा ली जाय अथवा स्वयं भाग जाय तो उसको त्यागकर ब्राह्मण कुशकी, क्षत्रिय सुवर्णकी, वैश्य चाँदीकी और शूद्र ताम्रकी स्त्री बनाकर यज्ञादि कर्म करे ॥ ३६-४० ॥ अथवा सामर्थ्य होनेपर सब जातिके लोग सुवर्णकी नारी बनाकर अपना काम चलायें। इन्हीं शास्त्रीय आज्ञाओंसे रामने सुवर्णकी सीता बनाकर अपना यज्ञ प्रारम्भ किया ॥ ४१ ॥ पहले जब दण्डक वनमें सीता हर ली गयी थीं और रामको रामेश्वर-स्थापनाके समय सीताकी आवश्यकता पड़ी थी, तब उन्होंने सुवर्णके अभावमें कुशकी ही सीता बनाकर रामेश्वरकी स्थापना की थी ॥ ४२ ॥ कुछ गृहस्थ नारीके अभावमें कुशकी स्त्री बनाकर अग्निहोत्र करते हैं, वह भी ठीक है। कहनेका मतलब यह कि स्त्रीके अभावमें किसी प्रकारकी स्त्री अवश्य बना लेनी चाहिए। क्योंकि स्त्रीके बिना कोई भी याज्ञिक कार्य सम्पन्न नहीं होता। कुछ आचार्योंका मत है कि—"व्यभिचारिणी, पापिनी तथा स्वामीसे द्रोह करनेवाली स्त्रीका सदाके लिए परित्याग कर देना चाहिए" कुछका यह मत है कि "परित्याग न भी करे तो कोई हानि नहीं।" ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ रामने प्रत्येक नवमीको एक अश्वमेध यज्ञ पूर्ण करनेका निश्चय किया और भागीरथीके उत्तरी तटपर यज्ञशाला बनानेकी बात

जह्नव्युत्तरतस्तावच्चकार स्वर्णलांगलैः । यस्याश्रमस्य सान्निध्ये भागीरथ्यस्त्युदग्वहा ॥४७॥
रुक्ममय्याऽथ जानक्या यज्ञारंभं चकार सः । अज्ञानदृग्भ्यो द्रष्टुं वै चकार स्वर्णनिर्मिताम् ॥४८॥
वामांगस्थां गुप्तरूपां ज्ञानदृग्भ्यश्च सात्त्विकीम् । बिभ्रत्सदैव श्रीरामो जानकीं लोकमातरम् ॥४९॥
यज्ञान्ते स्वर्णजां सीतां ददौ स्वगुरवे प्रभुः । एवं यज्ञशतेष्वत्र गुरवे शतमूर्तयः ॥५०॥
याः समर्पिता रामेण तासां दानफलेन हि । षोडशस्त्रीसहस्रेभ्यश्चोर्ध्वं स्त्रीणां शत पुनः ॥५१॥
द्वारकायां कृष्णरूपो विवाहेनोद्वहिष्यति । प्रतियज्ञे श्यामकर्णमश्वं रामो मुमोच ह ॥५२॥
चतुर्दिनाच्चतुर्दिक्षु परिक्रम्य ययौ हयः । एवं सर्वेषु यागेषु ययौ वाजी पृथग्जवात् ॥५३॥
पुष्पकस्थः स शत्रुघ्नो हयरक्षां चकार वै । एवं सदा यज्ञवाटे विरेजे दीक्षया विभुः ॥५४॥
एवं च नवतिसंख्या रामेण नव वै कृताः । चरमस्यापि प्रारम्भं रामो यज्ञस्य सोऽकरोत् ॥५५॥
गंगाया दक्षिणे तीरे मुद्गलस्याश्रमोऽस्ति हि । तत्र तस्यान्तिके गंगोदक्तीरे च उदग्वहे ॥५६॥
दिनानि दश वाल्मीकिर्निशायां सध्ययोरपि । श्रीरामरक्षया चक्रे बालकस्याभिमंत्रणम् ॥५७॥
कुशं नाम तदा चक्रे मुनिरेकादशे दिने । चकार सर्वसंस्कारान् मुनिः श्रीराघवाज्ञया ॥५८॥
एवं स बालकस्तत्र ववृधे मातृलालितः । जनकश्च सुमेधा च नानावस्त्रैः सुशोभनैः ॥५९॥
शोभयामास दौहित्रं नानाव्याघ्रनखादिभिः । बालोऽपि रंजयामास स्वक्रीडाभिर्विदेहजाम् ॥६०॥
एकदा निद्रितं प्रेंखे दृष्ट्वा बालं मुनेः पुरः । अन्यकर्मणि व्यग्रा च सखीं स्वीयां स्वमातरम् ॥६१॥
जनकं चापि सा सीता दृष्ट्वा सर्वान्बहिर्गतान् । आश्विने रविवारे च नद्यां स्नातुं समुद्यता ॥६२॥
मुनिं तं बालरक्षायां कृत्वाऽथ तमसां ययौ । दास्या मार्गेण गच्छंती ददर्श पथि वानरीम् ॥६३॥
कटिस्कंधमस्तकेषु बिभ्रतीं पंच बालकान् । तां दृष्ट्वा स्वशिशुं स्मृत्वाऽचिंतयज्जानकी हृदि ॥६४॥

ठहरायी गयी। प्रयागसे लेकर मुद्गल मुनिके आश्रमपर्यन्त जितना स्थान था, वह सुवर्णके हलसे जोता गया। रामकी उस यज्ञशालाके पास गंगाजी ठीक उत्तरकी ओर बह रही थीं ॥ ४५–४७ ॥ इसके अनन्तर रामने सुवर्णमयी सीताके साथ यज्ञकार्य प्रारम्भ किया। वह सुवर्णकी सीता अज्ञानी लोगोंको देखनेके लिए रखी गयी थी, किन्तु अज्ञानियोंकी दृष्टिमें तो सात्त्विकी जानकी सदा रामके वामभागमें निवास करती थीं ॥४८॥४९॥ प्रत्येक यज्ञके समाप्त हो जानेपर राम वह स्वर्णमयी सीता अपने गुरु वसिष्ठको दान दे दिया करते थे। इस प्रकार प्रत्येक यज्ञकी पूर्णतापर स्वर्णमयी सीता देते-देते रामने सौ सीताओंका दान किया। उस दानके फल-स्वरूप आगे कृष्णावतारमें उनको सोलह हजार एक सौ स्त्रियाँ मिलीं। प्रत्येक यज्ञमें राम अपना श्यामकर्ण घोड़ा दिग्विजयके लिए छोड़ते थे। वह चार दिनमें चारों ओर घूमकर लौट आया करता था। साथमें शत्रुघ्न पुष्पक विमानपर बैठकर घोड़ेकी रक्षाके लिए जाया करते थे और रामचन्द्रजी दीक्षा लेकर यज्ञशालामें बैठे रहते थे ॥ ५०–५४ ॥ इस प्रकार रामचन्द्रजीने निन्नानवे यज्ञ पूर्ण किया और अन्तिम सौवाँ यज्ञ भी प्रारम्भ कर दिया ॥ ५५ ॥ गंगाके दक्षिण तटपर मुद्गल नामके एक ऋषिका आश्रम था और उत्तरवाहिनी गंगाके तटपर ही वाल्मीकि सन्ध्याके समय रामके पुत्र कुशका रामरक्षा-मंत्रसे अभिषेक कर रहे थे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ग्यारहवें दिन वाल्मीकिने बच्चेका नामकरण करके रामके आज्ञानुसार सब संस्कार किया ॥ ५८ ॥ बच्चा भी बड़े लाड़-प्यारके साथ समय बिताता हुआ बढ़ने लगा। जनक और सुमेधा अनेक प्रकारके सुन्दर वस्त्रों और व्याघ्रनख आदि तरह-तरहके अलंकारोंसे अलंकृत करके रखते थे। बच्चा अपने कौतुकोंसे जानकीजीको प्रसन्न किया करता था। एक दिन कुश वाल्मीकिके पास पालनेपर सो गया। सखियाँ अन्य कामोंमें व्यस्त थीं। सीताके माता-पिता कहीं घूमने चले गये थे। उस रोज आश्विन मासके रविवारका दिन था। इसलिए सीताने नदीमें स्नान करनेकी इच्छा की। सीताने वाल्मीकिजीसे बच्चेको देखने रहनेके लिए कह दिया और स्वयं एक दासीको साथ लेकर तमसाकी ओर चल पड़ीं। रास्तेमें सीताने देखा कि एक वानरी अपने पांच बच्चोंको कमर-कन्धे और मस्तकपर बैठाये चली जा रही है। उसे

तिर्यग्योनौ जन्मवत्या वानर्या बालकानहो । स्नेहात्सहैव नीयन्ते धिङ्मां मानवदेहजाम् ॥६५॥
एकं चापि निजं बालं त्यक्त्वा गेहेऽद्य गम्यते । मया विमूढया स्नातुं भुव्यत्र क्षणिकं सुखम् ॥६६॥
इति धिक्कृत्य चात्मानं परिवृत्याश्रमं ययौ । एतस्मिन्नन्तरे गेहे वाल्मीकिर्मुनिपुंगवः ॥६७॥
गतः स लघुशंकार्थं कार्यार्थं बटवो गताः । गृहीत्वा सा कुशं प्रेंखाद्ययौ सीता बहिः पुनः ॥६८॥
दास्या सह नदीं गत्वोषसि स्नानं चकार वै । अदृष्ट्वाऽथ मुनिर्बालं दीर्घं निःश्वस्य वै मुहुः ॥६९॥
सीताशापभयाच्चक्रे लवैर्बालं स पूर्ववत् । तपोबलेन तं प्रोक्ष्य जीवयामास वेगतः ॥७०॥
ज्ञानदृष्ट्या तीव्रतया मुनिना नावलोकितम् । ततः सीताऽपि सुस्नाता दास्या गेहं शनैर्ययौ ॥७१॥
कटौ गृहीत्वा तं बालं रुक्मनूपुरनिःस्वना । प्रेंखेऽन्यं बालकं दृष्ट्वा मुनिं पप्रच्छ जानकी ॥७२॥
प्रेंखे कस्याः शिशुश्चायं सोऽपि दृष्ट्वा तदा कुशम् । कटिप्रदेशे जानक्या विस्मयं परमं गतः ॥७३॥
नमस्कृत्य ततः सीतां सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् । अंके निधाय तं बालं सीताया ह्यब्रवीन्मुनिः ॥७४॥
प्रसादान्मम वैदेहि द्वितीयोऽयं सुतस्तव । भवत्वद्य लवो नाम्ना लवैर्यस्माद्विनिर्मितः ॥७५॥
वाल्मीकेर्वचनात्साऽपि शिशुं जग्राह जानकी । मुनिस्तयोर्नाम चक्रे कुशो ज्येष्ठोऽनुजो लवः ॥७६॥
जातकर्मादिसंस्कारान् लवस्यापि चकार सः । तदा निनेदुर्वाद्यानि भूम्यां खेऽपि दिवौकसाम् ॥७७॥
ववर्षुर्जानकीं बालौ वाल्मीकिं कुसुमैः सुराः । चकार जनकश्चापि सुमेधा परमोत्सवान् ॥७८॥
क्रमेण विद्यासंपन्नौ सीतापुत्रौ विरेजतुः । धनुर्विद्यामस्त्रविद्यां शिक्षयामास तौ मुनिः ॥७९॥
कृत्स्नं रामायणं स्वीयं कृतं तौ शिक्षयन्मुदा । यस्मिन्नानन्दरम्यं च चरित्रं राघवस्य हि ॥८०॥
कुमारौ स्वरसंपन्नौ सुन्दरावश्विनाविव । तन्त्रीलयसमायुक्तौ गायंतौ चेरतुर्वने ॥८१॥
तत्र तत्र मुनीनां तु समाजेषु सुरूपिणौ । गायन्तावपि तौ दृष्ट्वा विस्मिता मुनयोऽब्रुवन् ॥८२॥

देखकर उन्होंने अपने मनमें सोचा कि तिर्यग्योनिकी स्त्री होकर भी यह वानरी कितने प्रेमसे बच्चोंको अपने साथ रखती है। मुझ मानवजातिकी भामिनीको धिक्कार है, जो अपने एक लड़केको आश्रमपर छोड़कर तमसा स्नान करने जा रही हूँ ॥ ५९–६५ ॥ इस तरह अपनेको धिक्कारकर सीता वहाँसे फिर आश्रमको लौट पड़ीं। इसी बीच वाल्मीकिजी लघुशङ्का करनेके लिये बाहर चले गये थे। विद्यार्थी भी अपने-अपने कामसे पहले ही चले जा चुके थे। इतनेमें सीता पहुँचीं। उन्होंने कुशको उठा लिया और दासीके साथ तमसाकी ओर चली गयीं ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ उधर वाल्मीकि लौटकर आये तो उनकी निगाह पालनेपर पड़ी। उसपर बच्चेको नहीं देखा। ऐसी अवस्थामें मुनिराजने एक लम्बी साँस ली और सीताके शापके भयसे अपने तपोबल द्वारा लवसे कुशके समान ही एक बालक और बना दिया ॥६८–७०॥ घबराहटके कारण उन्होंने अपनी ज्ञानदृष्टिसे यह नहीं देखा कि सीता कुशको अपने साथ ले गयी है। कुछ देर बाद स्नान करके सीता भी दासीके साथ धीरे-धीरेसे कुटियामें आयीं ॥ ७१ ॥ वहाँ उन्होंने देखा कि कुशके समान ही अलंकारादिसे विभूषित एक बालक पालनेपर पड़ा सो रहा है। यह देखकर सीताने ऋषिसे पूछा कि यह किसका बच्चा है ? उधर ऋषिने देखा कि कुश तो सीताकी कमरपर है, तब उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ ॥७२॥७३॥ फिर उन्हें नमस्कार करके वाल्मीकिने वह वृत्तांत बतलाया, जिसके कारण उन्हें दूसरा बच्चा बनाना पड़ा था। उसके पश्चात् मुनिने प्रेमकारकर लवको सीताकी गोदमें दे दिया और कहा—॥ ७४ ॥ देवि ! इसे भी सम्हालो। तब सीताने उस बच्चेको भी अंगीकार किया। मुनिने कहा—इन दोनोंमें ज्येष्ठ कुश होगा और कनिष्ठ (छोटा) लव ॥७५॥ इसके अनन्तर उन्होंने लवका भी जातकर्म आदि संस्कार किया। उस समय विविध प्रकारके बाजे बजे। स्वर्गमें देवताओंने भी मंगलवाद्य बजाकर जानकी, शिशु तथा वाल्मीकिके ऊपर फूलोंकी वर्षा की। सुमेधा तथा जनकने विविध उत्सव किये। क्रमशः दोनों पुत्र बड़े हुए। उन्होंने अनेक विद्याओंका अध्ययन किया और महर्षि वाल्मीकिने उनको धनुर्विद्या तथा अस्त्रविद्या भी सिखायी ॥ ७६–७९ ॥ फिर अपनी बनायी सम्पूर्ण रामायणकी भी उन्हें शिक्षा दी। जिसमें रामचन्द्रजीका आनन्ददायक चरित्र वर्णित था ॥ ८० ॥ अश्विनीकुमारकी भाँति सुन्दर वे दोनों बालक मधुर स्वरसे

गन्धर्वेष्विह किन्नरेषु भुवि वा देवेषु देवालये
पातालेष्वथ वा चतुर्मुखगृहे लोकेषु सर्वेषु च ।
अस्माभिश्चिरजीविभिश्चिरतरं दृष्ट्वा दिशः सर्वतो
नाज्ञायीदृशगीतवाद्यगरिमा नादर्शि नाश्रावि च ॥८३॥

एवं स्तुवद्भिरखिलैर्मुनिभिः प्रतिवासरम् । आसते सुखमेकांते वाल्मीकेराश्रमे चिरम् ॥८४॥
रुक्मकंकणमञ्जीरनूपुरैस्तौ विभूषितौ । केयूररशनाहारकुंडलैरतिशोभितौ ॥८५॥
निजक्रीडाकौतुकैश्च बालवाक्यैर्मनोहरैः । सीतां सुमेधां जनकं रञ्जयामासतुर्मुनिम् ॥८६॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विलासकाण्डे
कुशलवजन्मकथनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

(रामरक्षा-महामंत्र)

विष्णुदास उवाच

श्रीरामरक्षया प्रोक्तं कुशस्य ह्यभिमन्त्रणम् । कृतं तेनैव मुनिना गुरो तां मे प्रकाशय ॥ १ ॥
रामरक्षां वरां पुण्यां बालानां शांतिकारिणीम् ।

श्रीशिव उवाच

इति शिष्यवचः श्रुत्वा रामदासोऽब्रवीद्वचः ॥ २ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया शिष्य रामरक्षाऽधुनोच्यते । या प्रोक्ता शंभुना पूर्वं स्कंदार्थे गिरिजां प्रति ॥ ३ ॥

श्रीशिव उवाच

देव्यद्य स्कंदपुत्राय रामरक्षाभिमंत्रणम् । कुरु तारकघाताय समर्थोऽयं भविष्यति । ४ ॥
इत्युक्त्वा कथयामास रामरक्षां शिवः स्त्रियै । नमस्कृत्य रामचन्द्रं शुचिर्भूत्वा जितेन्द्रियः ॥ ५ ॥

वीणाकी झनकारके साथ वनमें रामचरित्र गाया करते थे ॥ ८१ ॥ जहाँ-तहाँ मुनियोंकी मण्डलीमें जब वे दोनों सुकुमार बालक रामचरित्रका गायन करते थे तो सबके मुँहसे सहसा यह वाक्य निकल पड़ता था कि हम लोगोंने अपनी लम्बी आयुमें गंधर्वों, किन्नरों, मनुष्यों, देवताओं, पाताललोकवासियों, ब्रह्मलोकवासियों एवं सारे ब्रह्माण्डवासियोंको अनेक गायकोंके गायन सुने हैं, लेकिन उनमें कहीं न तो मैंने इस प्रकार वाद्यकलाकी निपुणता देखी और न गायनमें ऐसी मिठास ही पायी ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ इस तरह सब ऋषियोंसे प्रशंसित होकर वे दोनों एकान्तमें वाल्मीकिके आश्रमपर रहा करते थे । सुवर्णके कङ्कण, नूपुर, केयूर, करधनी, हार तथा कुण्डल पहननेसे वे और भी सुन्दर दीखते थे ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ प्रतिदिन उनकी मनोहर बाललीला देख-देखकर मुनि, सीता, सुमेधा और जनकजी मारे खुशीके फूले नहीं समाते थे ॥ ८६ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृतभाषाटीकासमन्विते जन्मकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

विष्णुदासने कहा-हे गुरुदेव ! जिस रामरक्षा-मंत्रसे वाल्मीकिने कुशका अभिमंत्रण किया था, उसे हमको बताइए ॥ १ ॥ क्योंकि मैंने सुना है कि वह रामरक्षामंत्र बड़ा पवित्र सुन्दर और बालकोंको शान्ति प्रदान करनेवाला है । शिवजीने कहा-इस प्रकार शिष्यकी प्रार्थना सुनकर श्रीरामदास कहने लगे-हे प्रिय शिष्य ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । मैं तुम्हें वह रामरक्षामन्त्र बतलाता हूँ, जिसे एक बार शिवजीने पार्वतीको स्वामिकार्तिकेयकी रक्षाके लिए बतलाया था ॥ २ ॥ ३ ॥ श्रीशिवजी बोले—हे देवि ! आज षडाननके

अथ ध्यानम्

वामे कोदंडदंडं निजकरकमले दक्षिणे बाणमेकं
पश्चाद्भागे च नित्यं दधतमभिमतं सासितूणीरभारम् ।
वामेऽवामेव सद्भ्यां सह मिलिततनुं जानकीलक्ष्मणाभ्यां
श्यामं रामं भजेऽहं प्रणतजनमनःखेदविच्छेददक्षम् ॥ ६ ॥

अस्य श्रीरामरक्षास्तोत्रमंत्रस्य बुधकौशिकऋषिः श्रीरामचंद्रो देवता राम इति बीजम्
अनुष्टुप् छंदः श्रीरामप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ।

चरित रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम् । एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम् ॥ ७ ॥
ध्यात्वा नीलोत्पलश्यामं रामं राजीवलोचनम् । जानकीलक्ष्मणोपेतं जटामुकुटमंडितम् ॥ ८ ॥
सासितूणधनुर्बाणपाणिं नक्तंचरान्तकम् । स्वलीलया जगत्त्रातुमाविर्भूतमजं विभुम् ॥ ९ ॥
रामरक्षां पठेत्प्राज्ञः पापघ्नीं सर्वकामदाम् । शिरो मे राघवः पातु भालं दशरथात्मजः ॥१०॥
कौसल्येयो दृशौ पातु विश्वामित्रप्रियः श्रुती । घ्राणं पातु मखत्राता मुखं सौमित्रिवत्सलः ॥११॥
जिह्वां विद्यानिधिः पातु कंठं भरतवंदितः । स्कंधौ दिव्यायुधः पातु भुजौ भग्नेशकार्मुकः ॥१२॥
करौ सीतापतिः पातु हृदयं जामदग्न्यजित् । पार्श्वे रघुवरः पातु कुक्षी इक्ष्वाकुनंदनः ॥१३॥
मध्यं पातु खरध्वंसी नाभिं जांबवदाश्रयः । सुग्रीवेशः कटिं पातु सक्थिनी हनुमत्प्रभुः ॥१४॥
ऊरू रघूत्तमः पातु गुह्यं रक्षःकुलांतकृत् । जानुनी सेतुकृत्पातु जंघे दशमुखांतकः ॥१५॥
पादौ विभीषणश्रीदः पातु रामोऽखिलं वपुः ।
एतां रामबलोपेतां रक्षां यः सुकृती पठेत् । स चिरायुः सुखी पुत्री विजयी विनयी भवेत् ॥१६॥
पातालभूतलव्योमचारिणश्छद्मचारिणः । न द्रष्टुमपि शक्तास्ते रक्षितं रामनामभिः ॥१७॥
रामेति रामभद्रेति रामचन्द्रेति वा स्मरन् । नरो न लिप्यते पापैर्भुक्तिं मुक्तिं च विंदति ॥१८॥

रक्षार्थ तुम्हें रामरक्षामन्त्र बतला रहा हूँ। अथ ध्यानम्। जिन रामचन्द्रजीके बायें हाथमें धनुष, दाहिने हाथमें एक बाण और पीठपर बाणोंसे भरा हुआ तरकस है। जिनकी बायीं तथा दाहिनी ओर लक्ष्मण और सीता हैं। भक्तोंके मनकी पीड़ा नष्ट करनेमें निपुण श्रीरामचन्द्रजीका मैं भजन करता हूँ ॥ ४-६ ॥ विनियोगके अनन्तर—सौ करोड़ श्लोकोंमें विस्तारसे वर्णित भगवान् रामके चरित्रका एक-एक अक्षर महान् पापोंका भी नाश करता है। नीलकमलकी नाईं श्याम तथा राजीवलोचन, जिनके आस-पास लक्ष्मण तथा जानकीजी विराज रही हैं। जिनका मस्तक जटा-मुकुटसे अलंकृत है। तलवार, तरकस, धनुष और बाणको लिये जो राक्षसोंको यमराज सदृश भीषण दीखते हैं। जो जगत्की रक्षाके निमित्त अपने इच्छानुसार जगतीतलपर अवतीर्ण हुए हैं, ऐसे रामका ध्यान करके सब कामनाओंको पूर्ण करने तथा पापोंका नाश करनेवाले रामरक्षामन्त्रका पाठ करे। राघव यह रामचन्द्रजीका नाम मेरे सिरकी रक्षा करे ॥ ७-१० ॥ दशरथात्मज ललाटकी रक्षा करें। कौसल्येय नेत्रोंकी, विश्वामित्रप्रिय कानोंकी, मखत्राता नाककी और सौमित्रवत्सल मुखकी रक्षा करें ॥ ११ ॥ विद्यानिधि जिह्वाकी, भरतवंदित कंठकी, दिव्यायुध दोनों कन्धोंकी, भग्नेशकार्मुक भुजाओंकी, सीतापति हाथोंकी, जामदग्न्यजित् हृदयकी, रघुवर पार्श्वभागकी, इक्ष्वाकुनन्दन पेटकी, खरध्वंसी शरीरके मध्यभागकी, जांबवदाश्रय नाभिकी, सुग्रीवेश कमरकी, हनुमत्प्रभु हड्डियोंकी, रघूत्तम दोनों घुटनोंकी, रक्षःकुलांतकृत् गुदाकी और दशमुखान्तक मेरी जाँघोंकी रक्षा करें ॥ १२-१५ ॥ विभीषणको राज देनेवाले पैरोंकी और राम सारे शरीरकी रक्षा करें। जो मनुष्य रामके बलसे परिपूर्ण इस रामरक्षामंत्रका पाठ करता है वह चिरायु, सुखी, पुत्रवान्, विजयी और विनयी होता है ॥ १६ ॥ पाताल-चारी, भूमिचारी, व्योमचारी और छद्मचारी कोई भी भूत-प्रेतादि बाधा रामरक्षा-मंत्रसे अभिमंत्रित जनपर दृष्टिपात नहीं कर सकती। जो मनुष्य राम, रामभद्र अथवा रामचन्द्र इस नामका स्मरण करता है, वह पापसे

जगज्जैत्रैकमंत्रेण रामनाम्नाऽभिरक्षितम् । यः कंठे धारयेत्तस्य करस्थाः सर्वसिद्धयः ॥१९॥
वज्रपंजरनामेदं यो रामकवचं पठेत् । अव्याहताज्ञः सर्वत्र लभते जयमंगलम् ॥२०॥
आदिष्टवान् यथा स्वप्ने रामरक्षामिमां हरः । तथा लिखितवान् प्रातः प्रबुद्धो बुधकौशिकः ॥२१॥
रामो दाशरथिः शूरो लक्ष्मणानुचरो बली । काकुत्स्थः पुरुषः पूर्णः कौसल्यानंदवर्धनः ॥२२॥
वेदांतवेद्यो यज्ञेशः पुराणपुरुषोत्तमः । जानकीवल्लभः श्रीमानप्रमेयपराक्रमः ॥२३॥
इत्येतानि जपेन्नित्यं मद्भक्तः श्रद्धयाऽन्वितः । अश्वमेधायुतं पुण्यं संप्राप्नोति न संशयः ॥२४॥
सन्नद्धः कवची खड्गी चापबाणधरो युवा । गच्छन् मनोरथोऽस्माकं रामः पातु सलक्ष्मणः ॥२५॥
तरुणौ रूपसंपन्नौ सुकुमारौ महाबलौ । पुण्डरीकविशालाक्षौ चीरकृष्णाजिनांबरौ ॥२६॥
फलमूलाशनौ दांतौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ । पुत्रौ दशरथस्यैतौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥२७॥
धन्विनौ बद्धनिस्त्रिंशौ काकपक्षधरौ श्रुतौ । वीरौ मां पथि रक्षेतां तावुभौ रामलक्ष्मणौ ॥२८॥
शरण्यौ सर्वसत्त्वानां श्रेष्ठौ सर्वधनुष्मताम् । रक्षःकुलनिहंतारौ त्रायेतां नो रघूत्तमौ ॥२९॥
आत्तसज्जधनुषाविषुस्पृशावक्षयाशुगनिषंगसंगिनौ ।
रक्षणाय मम रामलक्ष्मणावग्रतः पथि सदैव गच्छताम् ॥३०॥
आरामः कल्पवृक्षाणां विरामः सकलापदाम् । अभिरामस्त्रिलोकानां रामः श्रीमान् स नः प्रभुः ॥३१॥
रामाय रामभद्राय रामचंद्राय वेधसे । रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥३२॥
श्रीराम राम रघुनंदन राम राम श्रीराम राम राम भरताग्रज राम राम ।
श्रीराम राम रणकर्कश राम राम श्रीराम राम शरणं भव राम राम ॥३३॥
लोकाभिरामं रणरंगधीरं राजीवनेत्रं रघुवंशनाथम् । कारुण्यरूपं करुणाकरं तं श्रीरामचंद्रं शरणं प्रपद्ये ॥
दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य वामे च जनकात्मजा । पुरतो मारुतिर्यस्य तं वंदे रघुनंदनम् ॥३५॥

विमुक्त होकर मुक्ति और भुक्तिका भागी होता है ॥ १७ ॥ १८ ॥ समस्त जगत्को जीतनेवाले इस रामरक्षा-मन्त्रको जो मनुष्य कण्ठस्थ कर लेता है तो संसारकी सारी सिद्धियाँ उसके हाथमें आ जाती हैं ॥ १९ ॥ जो प्राणी इस वज्रपंजर रामकवचका पाठ करता है, उसकी आज्ञा कहीं भी नहीं टलती और सर्वत्र उसकी विजय होती है ॥ २० ॥ स्वप्नमें यह रामरक्षामंत्र शिवजीने जैसा बतलाया था, सवेरे सोकर उठते ही विश्वामित्रने उसी तरह लिख लिया ॥ २१ ॥ राम, दाशरथि, शूर, लक्ष्मणानुचर, बली, काकुत्स्थ, पुरुष, कौसल्यानन्दवर्धन, वेदान्तवेद्य, यज्ञेश, पुराणपुरुषोत्तम, जानकीवल्लभ, श्रीमान् तथा अप्रमेय पराक्रम इन नामोंका श्रद्धापूर्वक जप करनेवाला भक्त दस हजार अश्वमेध यज्ञ करनेका फल पाता है। इसमें कोई संशय नहीं है ॥ २२-२४ ॥ सन्नद्धकवची, खड्गी, चापबाणधर, युवा और लक्ष्मणके साथ जाते हुए श्रीरामचंद्र हमारे मनोरथोंकी रक्षा करें ॥२५॥ तरुण, रूपसंपन्न, सुकुमार, महाबली, कमलकी नाईं बड़ी-बड़ी आँखोंवाले, पीतांबरधारी, फल-मूल खानेवाले, उदारप्रकृति, तपस्वी, ब्रह्मचारी, धन्वी, निस्त्रिंशधारी तथा काकपक्षको धारण किये दशरथके दोनों पुत्र राम और लक्ष्मण रास्तेमें जाते समय हमारी रक्षा करें। संसारी जीवोंके आधार, धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ, राक्षसकुलके विनाशक राम और लक्ष्मण मेरी रक्षा करें ॥ २६-२९ ॥ बिल्कुल तैयार धनुष जिसपर बाण चढ़ा है, उसे लिये और अक्षय बाणवाले तूणीरको कसे राम-लक्ष्मण सदा रास्तेमें हमारे आगे-आगे चलें ॥ ३० ॥ जो कल्पवृक्षके आराम (बगीचा), समस्त विपत्तियोंके विराम (समाप्ति) और तीनों लोकोंमें अभिराम (सुन्दर) हैं, वे श्रीमान् रामचन्द्रजी हमारे प्रभु हैं ॥३१॥ राम, रामभद्र, सर्वस्रष्टा, रामचंद्र, रघुनाथ, तथा सीताके पति रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३२ ॥ हे श्रीराम, हे रघुनन्दन राम, हे भरताग्रज राम, हे रणकर्कश श्रीराम, हे राम, हमको शरण दीजिए ॥ ३३ ॥ संसार भरमें अतिशय सुंदर, संग्राममें निपुण, कमल सरीखे नेत्रोंवाले, रघुवंशके स्वामी करुणाकी मूर्ति और दयाके भण्डार श्रीरामचन्द्रकी मैं शरणमें हूँ ॥३४॥ जिनकी दाहिनी ओर लक्ष्मण, बाईं ओर सीता और सामने हनुमानजी उपस्थित हैं, ऐसे रघुनन्दन रामको-मैं

गोष्पदीकृतवारीशं मशकीकृतराक्षसम् । रामायणमहामालारत्नं वंदेऽनिलात्मजम् ॥३६॥
अघौघ तिष्ठ दूरे त्वं रोगास्तिष्ठंतु दूरतः । वरीवर्ति सदाऽस्माकं हृदि रामो धनुर्धरः ॥३७॥
मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेंद्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये ॥३८॥
राम राम तव पादपङ्कजं चिंतयामि भवबन्धमुक्तये ।
वंदितं सुरनरेंद्रमौलिभिर्ध्यायितं मनसि योगिभिः सदा ॥३९॥
रामं लक्ष्मणपूर्वजं रघुवरं सीतापतिं सुन्दरं काकुत्स्थं करुणार्णवं गुणनिधिं विप्रप्रियं धार्मिकम् ।
राजेंद्रं सत्यसन्धं दशरथतनयं श्यामलं शांतिमूर्तिं वन्दे लोकाभिरामं रघुकुलतिलकं राघवं रावणारिम् ।
एतानि रामनामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् । अपुत्रो लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ॥४१॥
माता रामो मत्पिता रामचन्द्रः स्वामी रामो मत्सखा रामचन्द्रः ।
सर्वस्वं मे रामचन्द्रो दयालुर्नान्यं जाने नैव जाने न जाने ॥४२॥
श्रीरामनामामृतमन्त्रबीजसंजीवनी चेन्मनसि प्रविष्टा ।
हालाहलं वा प्रलयानलं वा मृत्योर्मुखं वा विशतां प्रविष्टा ॥४३॥
श्रीशब्दपूर्वं जयशब्दमध्यं जयद्वयेनापि पुनः प्रयुक्तम् ।
त्रिःसप्तकृत्वो रघुनाथनाम जपन्निहन्याद्द्विजकोटिहत्याः ॥४४॥
एवं गिरींद्रजे प्रोक्ता रामरक्षा मया तव । मयोपदिष्टा या स्वप्नेविश्वामित्राय वै पुरा ॥४५॥

श्रीरामदास उवाच

इति शिवेनोपदिष्टां श्रुत्वा देवी गिरीन्द्रजा । रामरक्षां पठित्वा सा स्कन्दं समभिमंत्रयत् ॥४६॥

वन्दना करता हूँ ॥ ३५ ॥ जिन्होंने समुद्रको गौके खुरभर जलवाला बनाया, राक्षसोंको मच्छड़ोंके समान नष्ट किया और जो रामायणरूपी महामालाके मुख्य रत्न हैं, ऐसे पवनकुमार हनुमान्‌जीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥३६॥ हे पापोंके समूह ! तुम हमसे दूर रहो और हे रोगगण ! तुम हमारे पाससे भाग जाओ । क्योंकि हमारे हृदयमें धनुर्धारी रामचन्द्रजी बैठे हुए हैं ॥ ३७ ॥ मनके सदृश जिनकी गति है, वायुके सदृश जिनका वेग है, जिन्होंने इन्द्रियोंको वशमें कर लिया है, जो बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ हैं । ऐसे वायुके पुत्र, वानरी सेनाके सेनापति और श्रीरामचन्द्रजीके दूत हनुमानकी मैं शरणमें हूँ ॥ ३८ ॥ हे राम ! हे राम ! सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त होनेके लिए सुर-नर इन्द्रादि तकके मस्तकोंसे पूजित आपके चरणोंका मैं सदा ध्यान करता हूँ । क्योंकि योगी लोग भी सदा-सर्वदा उन चरणोंके चिन्तनमें लीन रहते हैं ॥ ३९ ॥ लक्ष्मणके ज्येष्ठ भ्राता, रघुवंशमें श्रेष्ठ, सीताके पति, परमरूपवान्, ककुत्स्थके वंशज, करुणाके वारिधि, गुणोंके निधि, ब्राह्मणोंके प्रिय, धर्मके तत्त्वज्ञ, राजाओंके राजा, सत्यप्रतिज्ञ, दशरथके पुत्र, श्यामरूप, शान्तिके मूर्तिस्वरूप, संसारके आनन्ददाता, रघुवंशके तिलक-स्वरूप, रघुवंशज एवं रावणके शत्रु रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४० ॥ जो प्राणी सबेरे उठकर इन नामोंका पाठ करता है, वह यदि अपुत्र हो तो उसे पुत्र मिलता है और धनकी इच्छा रखनेवाला हो तो धन मिलता है ॥ ४१ ॥ राम ही मेरे पिता हैं, राम ही माता हैं, वे ही मेरे स्वामी और सखा हैं । दयालु श्रीराम-चन्द्रजी ही मेरे सर्वस्व हैं । उन्हें छोड़कर मैं और किसीको नहीं जानता—किसीको नहीं जानता ॥ ४२ ॥ जिसके हृदयमें रामनामामृतमंत्ररूपिणी संजीवनी विद्यमान रहती है, वह हालाहल, प्रलयानल अथवा मृत्युके मुखमें भी क्यों न कूद जाय, उसको कहीं भी भय नहीं है ॥ ४३ ॥ पहले श्रीशब्द, बादमें रामनाम, फिर जय शब्द, फिर रामनाम, फिर दो बार जयशब्द जोड़कर (अर्थात् श्रीराम जय राम जय जय राम) इक्कीस बार जप करनेवाला प्राणी करोड़ों ब्रह्महत्याओं जैसे महान् पातकोंको भी नष्ट कर देता है ॥ ४४ ॥ हे पार्वती ! मैंने तुम्हें वह रामरक्षामन्त्र बतलाया है, जिसे एक बार स्वप्नमें मैंने महर्षि विश्वामित्रको बतलाया था । श्रीराम-दासने कहा—इस प्रकार शिवजीके बतलाये हुए रामरक्षामन्त्रको सुनकर पार्वतीजीने स्वामिकार्तिकेयको उन्हीं

तस्यास्तेजोबलेनैव जघान तारकासुरम् । षडाननः क्षणादेव कृतकृत्योऽभवत्पुरा ॥४७॥
सैवेयं रामरक्षा ते मयाऽऽख्याताऽतिपुण्यदा । यस्याः श्रवणमात्रेण कस्यापि न भयं भवेत् ॥४८॥
वाल्मीकिनाऽनया पूर्वं कुशाय ह्यभिषेचनम् । कृतं बालग्रहाणां च शांत्यर्थं सा मयोदिता ॥४९॥
बालानां ग्रहशांत्यर्थं जपनीया निरन्तरम् । रामरक्षा महाश्रेष्ठा महाघौघनिवारिणी ॥५०॥
नास्याः परतरं स्तोत्रं नास्याः परतरो जपः । नास्याः परतरं किंचित्सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥५१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये जन्मकाण्डे
रामरक्षाकथनं नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

(लवका अयोध्यासे कमलपुष्प लाकर माता सीताको देना)

श्रीरामदास उवाच

एकदा जानकी प्राह वाल्मीकिं मुनिपुंगवम् । कथयस्व व्रतं येन रामयोगो भवेन्मम ॥ १ ॥
तत्सीतावचनं श्रुत्वा वाल्मीकिस्तां वचोऽब्रवीत् । प्रतिपद्दिनमारभ्य यावत्सा नवमी सिता ॥ २ ॥
तावन्नवदिनं सीते व्रतं कुरु मयोच्यते । प्रतिपदि रामचन्द्रपादुके धातुनिर्मिते ॥ ३ ॥
कृत्वाऽर्च्य नवकमलैर्देहि मंत्रांजलिं शुभाम् । ततः पुत्राननाभ्यां त्वं जन्मकाण्डं शुभं शृणु ॥ ४ ॥
अष्टादशकमलैश्च द्वितीयायां शुभांजलिम् । मंत्रैर्देहि पूजनान्ते पतिपादुकयोर्मुदा ॥ ५ ॥
पतिं विना स्त्रिया नान्यत्पूजनीयं हि दैवतम् । जन्मकांडं द्विवारं तु शृणु भक्त्या शुचिव्रते ॥ ६ ॥
एवं वृद्धिर्नवाब्जैश्च कार्या सीते दिने दिने । नवम्यामेकाशीत्यब्जैः पूज्यस्व भर्तृपादुके ॥ ७ ॥
नववारं जन्मकांडं पुत्रास्याभ्यां सुखं शृणु । ततो दशम्यां सुस्नातैकाशीति द्विजदंपतीन् ॥ ८ ॥
संपूज्य वस्त्राभरणैर्भोजयस्वात्र मैथिलि । दत्त्वा तेभ्यो दक्षिणास्त्वं विसर्जय प्रणम्य तान् ॥ ९ ॥

मंत्रोंसे अभिमन्त्रण किया ॥ ४५-४६ ॥ उसी मन्त्रके तेज और बलसे षडाननने तारकासुर जैसे महान् शत्रुको मारकर अपना काम पूरा कर लिया था ॥ ४७ ॥ वही रामरक्षामंत्र मैंने तुम्हें बतलाया है। जिसके एक बार श्रवण कर लेनेसे संसारमें किसीका भय नहीं रह जाता ॥ ४८ ॥ इसी रामरक्षा मंत्रसे वाल्मीकिने कुशका अभिषेक किया था। बालकोंका दुःख दूर करनेके लिए इसे मैंने तुम्हें बतलाया है ॥ ४९ ॥ बालकोंका ग्रह शान्त करनेके लिए सदा इसका जप करना चाहिये। यह महान् मंत्र है। यह बड़े-बड़े पापोंके समूहको नष्ट कर देता है। इससे बढ़कर कोई स्तोत्र है ही नहीं। मैं तुमसे सच सच कहता हूँ कि इससे श्रेष्ठ और कोई मंत्र नहीं है ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेय-विरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते जन्मकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीरामदासने कहा—एक दिन सीताजी मुनियोंमें श्रेष्ठ वाल्मीकिसे कहने लगीं कि हमें कोई ऐसा व्रत बतलाइए, जिससे मैं फिर अपने पतिदेव (राम) को प्राप्त कर लूँ ॥ १ ॥ सीताकी उस प्रार्थनाको सुनकर वाल्मीकिने कहा कि प्रतिपदा तिथिसे लेकर नवमी पर्यन्त अर्थात् नौ दिनका मैं जो व्रत बतला रहा हूँ, उसे करो। प्रतिपदाको धातुसे बनी रामकी चरणपादुकाका पूजन करके नौ कमलके फूलोंसे मंत्राञ्जलि दो। इसके अनन्तर अपने पुत्रोंके मुखसे आनन्दरामायणके जन्मकांडकी कथा सुनो ॥ २-४ ॥ फिर द्वितीयाको पादुकाकी पूजा करके अठारह कमलोंकी पुष्पाञ्जलि दो। स्त्रीके लिए पतिके अतिरिक्त दूसरा कोई पूज्य देवता नहीं है। बादमें द्वितीयाको दो बार जन्मकांडकी कथा सुनो ॥ ५ ॥ ६ ॥ इस तरह प्रतिदिन कमलके फूलोंकी संख्या बढ़ाती हुई नवमीको ८१ फूलोंसे पतिकी चरणपादुकाको मंत्राञ्जलि दो और कथाकी भी संख्या बढ़ाती हुई नवमीको अपने पुत्रोंके मुखसे नौ बार जन्मकांडकी कथा सुनो। दशमीको स्नानादि नित्यकर्म करनेके

अनेन व्रतराजेन जन्मकाण्डश्रवादपि । अचिरात्पतिना योगं प्राप्स्यसि त्वं विदेहजे ॥१०॥
संयोगीकरणं नाम व्रतं चेदं सुपुण्यदम् । ये कुर्वन्त्यत्र मनुजाः स्वीयैर्योगं लभन्ति ते ॥११॥
तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा जानकी प्राह तं पुनः । बहून्यब्जानि साकेते पुष्पारामजलाशये ॥१२॥
सन्ति कस्तत्र वै गन्तुं समर्थस्त्विह वर्तते । रामाज्ञया रामदूतैः क्रियते रक्षणं सदा ॥१३॥
तत्सीतावचनं श्रुत्वा तत्पुरः संस्थितो लवः । अब्रवीन्मातरं वाक्यं पञ्चवर्षवयःस्थितः ॥१४॥
अम्बारम्भं व्रतस्याद्य त्वं कुरुष्वाचिरादिह । अब्जान्यहं प्रदास्यामि समानीय निरन्तरम् ॥१५॥
तल्लवस्य वचः श्रुत्वा विहस्यालिंग्य बालकम् । चुचुम्ब तन्मुखं सीता लवं वचनमब्रवीत् ॥१६॥
पङ्कजानि कथं वत्स त्वं समानीय दास्यसि । असंख्यातै रामदूतैः क्रियते रक्षणं सदा ॥१७॥
तन्मातृवचनं श्रुत्वा लवः प्राहाथ मातरम् । अम्ब त्वत्स्तन्यपानेन वाल्मीकेः शस्त्रविद्यया ॥१८॥
तथाशीर्भिर्मुनेश्चापि रामस्यापि भयं न मे । पश्याम्ब पौरुषं मेऽद्य मामनुज्ञातुमर्हसि ॥१९॥
इत्युक्त्वा मातरं नत्वा वाल्मीकिं प्रणिपत्य च । आशीर्भिरीडितस्ताभ्यां धृततूणीरकार्मुकः ॥२०॥
वस्त्रालंकारसंयुक्तस्त्वेकाकी रथमास्थितः । ययौ लवस्त्वयोध्यायां श्रीविहीनां जवेन सः ॥२१॥
क्रोशोपरि रथं स्थाप्य पद्भ्यामारामममायौ । तावन्मध्याह्नसमये गता आरामरक्षकाः ॥२२॥
भोजनार्थं स्वगेहानि लवोऽब्जानि तदाऽहरत् । पुनः स्वस्यंदने स्थित्वा गत्वाऽऽश्रमपदं मुनेः ॥२३॥
नत्वा मुनिं मातरं स्वां पंकजान्यर्पयन्मुदा । मुदिता जानकी चापि व्रतारम्भमथाकरोत् ॥२४॥
एवं सप्तदिनान्यब्जान्यानयामास बालकः । न विदुः रामदूतास्ते नीयतेऽब्जानि चेति हि ॥२५॥
अथाष्टमीदिनेऽयोध्यां पूर्ववत्स लवो ययौ । आरामस्य बहिः स्थाप्य रथं पद्भ्यां ययौ लवः ॥२६॥

पश्चात् ८१ द्विजदम्पतीकी वस्त्राभूषण आदिसे पूजा करके उन्हें भोजन कराओ और दक्षिणा देकर विदा करो। इस व्रतराजके करने तथा जन्मकाण्डकी कथा सुननेसे शीघ्र ही तुम्हारे पति तुम्हें मिल जायँगे ॥७-१०॥ इस व्रतका नाम ही संयोगीकरण व्रत है। जो कोई यह पुनीत व्रत करता है, उसे अपने प्रियजनकी प्राप्ति होती है॥ ११ ॥ वाल्मीकि मुनिकी बात सुनकर सीताने कहा कि अयोध्याके बगीचेवाले सरोवरमें बहुत कमल होता है, वहाँ ही इतने फूल मिल सकेंगे कि जिनसे मैं अपना व्रत पूर्ण कर सकूँ। लेकिन वहाँसे उन्हें लायेगा कौन ? रामचन्द्रजीकी आज्ञासे वहाँ बहुतेरे रक्षक उन फूलोंकी रखवाली करते हैं॥ १२ ॥ १३ ॥ सीताकी बात सुनकर पास खड़े लवने, जिसकी अवस्था पाँच वर्षकी हो चुकी थी, मातासे कहा-॥ १४ ॥ माँ ! तुम आजसे अपना व्रत प्रारम्भ कर दो, मैं नित्य कमलके फूल लाकर तुम्हें दूँगा ॥ १५ ॥ लवकी वीरतापूर्ण वाणी सुनकर सीता हँसीं और छातीसे लगाकर उसका मुख चूमती हुई कहने लगीं—॥ १६ ॥ बेटे ! तुम फूल कैसे लाओगे ? वहाँ रामके असंख्य सिपाही उनकी रक्षा करते हैं ॥ १७ ॥ सीताकी बात सुनकर लवने कहा—माता ! तुम्हारे पवित्र स्तनोंके दुग्ध, महर्षि वाल्मीकिकी सिखायी हुई शस्त्रविद्या और उनके आशीर्वादके प्रभावसे मैं रामसे भी नहीं डरता। आप मुझे आज्ञा दें और मेरा पुरुषार्थ देखें ॥ १८ ॥ १९ ॥ इतना कहकर लवने माता तथा वाल्मीकिको प्रणाम किया। फिर उनका आशीर्वाद लेकर धनुष-बाण सहित एक रथपर जा बैठे और उस अयोध्याकी ओर बढ़े, जो बहुत दिनोंसे कान्तिहीन हो चुकी थी ॥ २० ॥ २१ ॥ बगीचेके एक कोस आगे ही लवने अपना रथ रोक दिया और पैदल ही बगीचेमें जा पहुँचे। दोपहरका समय था। बगीचेके रक्षक भोजन करनेके लिए अपने-अपने घर जा चुके थे। इसलिए लवको फूल लेनेमें कोई बाधा नहीं हुई, फूल लेकर लवने अपने रथपर रखा और आश्रमकी ओर चल दिये ॥ २२ ॥ २३ ॥ वहाँ पहुँचकर लवने माता और वाल्मीकिको प्रणाम करके फूलको सामने रखा। जानकीने भी प्रसन्नताके साथ व्रत प्रारम्भ किया ॥ २४ ॥ इस प्रकार सात दिन तक लव बराबर फूल ले गये, लेकिन रामके दूतोंको कुछ भी पता नहीं लगा। आठवें दिन अष्टमी तिथिको रोजकी तरह लव फिर वहाँ गये। रथको बाहर रोका और सरोवरमें पहुँचकर निर्भीक-भावसे फूल तोड़कर लाने लगे। संयोगवश उस दिन सिपाही लोग भोजन करके बगीचेमें पहुँच

गत्वाऽऽरामस्य कासार गृहीत्वाऽब्जानि निर्भयः। शनैर्यावद्रथं प्राप तावदारामपाऽऽययुः ॥२७॥
ते त दृष्ट्वा लवं साब्जं पप्रच्छुर्विस्मयान्विताः । न त्वं दृष्टः कदाऽस्माभिः श्रीरामानुचरेषु हि॥२८॥
कदारभ्य रामसेवा त्वया चाङ्गीकृता वद । यतस्त्वं निर्भयोऽब्जानि गृहीत्वा गच्छसि प्रभुम्२९॥
रामदूतवचः श्रुत्वा विहस्याह लवोऽपि सः । वाल्मीकयनुचरश्चाहं न रामदर्शनं मम ॥३०॥
दासोऽहं मुनिराजस्य वाल्मीकेः शुद्धचेतसः । तदाज्ञया वै नीयन्ते कमलानि मया मुदा ॥३१॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा वाल्मीकीय लवं तदा । ज्ञात्वा दूताः पारकीयं क्रोधाद्वचनमब्रुवन् ॥३२॥
रामस्त्वया न दृष्टोऽत्र न नः पृष्टस्त्वया पुनः । नाज्ञापितोऽसि रामेण नीयंतेऽब्जानि प्रत्यहम् ॥३३॥
न ज्ञातमेतदस्माभिस्त्विदानीं तिष्ठ मा व्रज । अपराध्यसि रामस्य त्वां नेष्यामो वयं प्रभुम् ॥३४॥
इत्युक्त्वा तस्य पन्थानं रुरुधू रामसेवकाः । चतुर्दश शस्त्रहस्ता सशता रामतो यदा ॥३५॥
तान्दृष्ट्वा स्यन्दनस्थः स लवोऽप्याह विहस्य च । यूयं गच्छत श्रीरामं मद्वृत्तं ब्रूतमादरात् ॥३६॥
यद्यस्ति पौरुषं रामे तर्हि यास्यति मां प्रति । तत्तस्य वचनं श्रुत्वा क्रोधाद्दूता वचोऽब्रुवन् ॥३७॥
कथं वत्स मर्तुकामस्त्वमित्थं वल्गसे मुधा । बद्ध्वा त्वां वयमेवाद्य विनेष्यामो रघूत्तमम् ॥३८॥
इत्युक्त्वा ते लवं धर्तुं ययुस्तस्य रथांतिकम् ।तान्दृष्ट्वा निकटं प्राप्तान् रामदूतान्लवोऽपि सः ॥३९॥
टणत्कृत्य महच्चापं शरान्संधाय वेगतः ।अब्रवीत्तान्पुनर्वाक्यं माऽऽगन्तव्यं ममान्तिकम्॥४०॥
मार्गणैरधुना युष्मान् त्यजामि राघवान्तिके । इत्युक्त्वा तान्पुनर्दृष्ट्वाऽऽत्मानं धर्तुं समुद्यतान् ॥४१॥
रामाग्रे प्राक्षिपद्बाणैर्लीलयाऽध्वरमण्डपे । चतुर्दश रामदूता लवमार्गणताडिताः ॥४२॥
निपेतुर्मूर्च्छिताः सर्वे रामाग्रे जाह्नवीतटे । शतशो रामदूतास्ते दृष्ट्वा चक्रुः पलायनम् ॥४३॥
लवोऽपि विजयी शीघ्रं पूर्ववत्स्वाश्रमं ययौ । समर्प्याब्जानि सीतायै सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् ॥४४॥

गये थे ॥ २५-२७ ॥ लवको फूल लिये देखकर विस्मयपूर्वक वे बोले—हमने तुम्हें कभी रामचन्द्रजीके सेवकोंमें नहीं देखा है ॥ २८ ॥ तुमने कब नौकरी की है ? जो इस तरह निर्भय होकर कमलके फूल ले जा रहे हो ॥ २९ ॥ उन दूतोंकी बात सुनकर हँसते हुए लवने कहा—मैंने तो अभी तक रामको देखा भी नहीं है ॥ ३० ॥ रामका नहीं, मैं महर्षि वाल्मीकिका सेवक हूँ । उन्हींके आज्ञानुसार मैं यहांसे फूल ले जाता हूँ। किन्तु तुमने आज ही हमको देखा है। इसके पहले कभी नहीं देख पाया ॥ ३१ ॥ इस तरह अपनेको वाल्मीकिका सेवक बतलानेपर दूतोंकी समझमें आया कि यह कोई अजनबी मनुष्य है। यह जानते ही वे मारे क्रोधके तमतमा उठे। उन्होंने कहा—॥ ३२ ॥ तुमने न रामकी आज्ञा ली, न हम लोगोंहीसे पूछा और रोज फूल ले जाते हो ॥ ३३ ॥ यह बात हमको मालूम नहीं थी। अस्तु, अब ठहरो। तुम रामचन्द्रजीके अपराधी हो। अतएव हम तुम्हें उनके पास ले चलेंगे ॥ ३४ ॥ ऐसा कहकर उन लोगोंने लवका रास्ता रोक लिया। जब एक सौ चौदह सशस्त्र सैनिकोंने लवको घेर लिया। तब लवने रथपर बैठे ही बैठे उनकी ओर देख तथा हँसकर कहा—तुम लोग रामके पास जाकर हमारा वृत्तान्त कहो ॥ ३५ ॥ यदि राममें कुछ सामर्थ्य होगी तो वे स्वयं मेरे सामने आयेंगे। एक पाँच वर्षके बच्चेकी ऐसी बातें सुनकर दूतोंने क्रोधपूर्वक कहा—॥३६॥३७॥ हे बच्चे ! तुम क्यों मरना चाहते हो, जो ऐसी बढ़-बढ़कर बातें करते हो ? तुमको बाँधकर हमीं लोग उनके पास अभी लिये चलते हैं ॥ ३८ ॥ ऐसा कहकर लवको पकड़नेके लिए कई दूत आगे बढ़े। उनको निकट देखकर लवने तुरन्त अपने धनुषका टंकोर करके उसपर एक बाण चढ़ाया और उनसे कहा—सावधान ! मेरे पास न आना ॥ ३९ ॥ ४० ॥ नहीं मानोगे तो मैं इसी धनुष और बाणसे तुम लोगोंको उठाकर रामके पास फेंक दूँगा। ऐसा कहकर लवने देखा कि वे लोग फिर भी उन्हें पकड़नेका प्रयत्न कर रहे हैं ॥ ४१ ॥ ऐसी दशामें लवने बाणोंसे दूतोंको उठाकर फेंका और वे गङ्गाके समीप रामकी यज्ञशालामें मूर्छित होकर जा गिरे। इस प्रकार लवका पराक्रम देखकर रामके जो सैकड़ों सैनिक वहाँ बचे थे, वे सब इधर-उधर भाग गये ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ तब विजयी होकर वे अपने आश्रमकी ओर बढ़े। वहाँ पहुँचकर लवने कमल

चतुर्दश रामदूताः स्वस्थचित्ताश्चिरेण ते । सर्वं वृत्तं राघवाय कथयामासुरादरात् ॥४५॥
तच्छ्रुत्वा रामचन्द्रोऽपि विस्मयाविष्टमानसः । सहस्रदूतानारामरणक्षणार्थं प्रचोदयत् ॥४६॥
लवोऽप्यथ नवम्यां स साकेतं पूर्ववद्ययौ । सहस्रं रामदूतास्ते लवं योद्धुं समुद्यताः ॥४७॥
लवस्तानाह युष्माकं स्वामिना राघवेण हि । यदा सीता वने त्यक्ता जयश्रीश्च गता तदा । ४८॥
युष्माकं राघवस्यापि गच्छध्वं राघवं पुनः । युष्माभिर्मा मया युद्धं कर्तव्यं मरणोन्मुखैः ॥४९॥
सीतात्यागे तु युष्माकं स्वामिनः पौरुषं न माम् । इति ते लववाग्बाणैर्भिन्नमर्मस्थलास्तदा ॥५०॥
दूताः शस्त्राणि मुमुचुर्लवोपरि महास्वनैः । लवोऽपि चापमाकृष्य रामदूतान्स्वमार्गणैः ॥५१॥
प्राक्षिपत्पूर्ववद्रामं तच्छस्त्रौघं निवार्य च । आरामतो यदा दूताश्चक्रुः सर्वे पलायनम् ॥५२॥
ययौ लवः स विजयी पूर्ववत्कमलान्वितः । आश्रमं मातरं नत्वा सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् ॥५३॥
पुत्रस्य पौरुषं श्रुत्वा तुतोष जानकी तदा । वृत्तं निवेदयामासु रामदूता रघूत्तमम् ॥५४॥
मूर्च्छां लवशरैः प्राप्ता भिन्नदेहा मखांगणे । राम राम महाबाहो शृणुष्वापूर्वमादरात् ॥५५॥
पञ्चवर्षीयबालेन वयमद्य पराजिताः । वाल्मीकेर्लब्धविद्यः स न जेयो लक्ष्मणादिभिः॥५६॥
तद्वधे मंत्रयस्वाद्य त्वमुपायं रघूत्तम । सीतात्यागादिवचनैर्नस्तवापि च बालकः ॥५७॥
चकार निंदां श्रीराम गतभीस्त्वेक एव यः । तत्तेषां वचनैर्वृत्तं कृत्स्नमाकर्ण्य राघवः ॥५८॥
संमंत्र्य सचिवैर्दूतं वाल्मीकिं प्रैषयज्जवात् । नत्वा मुनिं रामदूतो रामवाक्यं न्यवेदयत् ॥५९॥
यस्ते शिष्यो महावीरः सोऽपराध्यस्ति वै मम । तं प्रेषयाथवा तेन त्वमागच्छस्व मन्मखम् ॥६०॥

सीताको दिया और उस दिनका सारा हाल कह सुनाया ॥४४॥ जो दूत रामकी यज्ञशालामें गिरे थे, वे बहुत देर तक मूर्छित पड़े रहे। जब चेतना आयी, तब सादर उन्होंने रामको लवका सब समाचार सुनाया ॥४५॥ सो सुनकर रामचन्द्रजीको भी बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने फिरसे एक हजार दूतोंको बगीचेकी रखवालीके लिए नियुक्त कर दिया ॥ ४६ ॥ दूसरे दिन अर्थात् नवमीको लव फिर फूल लेनेके लिए बगीचेमें जा पहुँचे। लवने दूतोंको देखकर कहा कि जिस दिन तुम्हारे प्रभु रामने सीताको वनमें भेज दिया, उसी दिन उनकी जयश्री भी विदा हो गयी ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ तुम्हें चाहिए कि तुम रामके पास जाकर लड़ाई करनेसे इनकार कर दो। तुम मरणोन्मुख हो। अतएव मैं नहीं चाहता कि तुम्हारे साथ युद्ध करूँ॥ ४९ ॥ सीताको त्यागनेवाले तुम्हारे प्रभु रामके साथ संग्राम करना मुझे उचित नहीं जँचता। इस प्रकार लवके वचनरूपी बाणोंसे सैनिकोंके हृदय विदीर्ण हो गये ॥५०॥ तब उन्होंने लवपर बाणवर्षा आरंभ कर दी। उधर लवने भी अपने बाणोंसे सैनिकोंके प्रहार बचाते हुए अपने बाणोंसे उनको उठा-उठाकर रामके पास फेंकना आरम्भ किया। थोड़ी देरमें ही जब दूत बगीचा छोड़-छोड़कर भाग निकले। तब लव अपनेको विजयी मानते हुए रोजकी तरह फूल लेकर आश्रमको लौट गये। वहाँ पहुँचकर लवने सीता माताको प्रणाम किया और उस दिनका भी सारा हाल सुनाया ॥ ५१-५३ ॥ बेटेका पुरुषार्थ सुनकर सीता परम प्रसन्न हुईं। इधर रामचन्द्रके दूतोंने रामके पास जाकर सब अपनी आपबीती कह सुनायी ॥ ५४ ॥ जिनको लवने अपने बाणसे उठाकर रामके पास फेंका था, वे लोग घायल होकर बहुत देर तक मूर्छित अवस्थामें ही पड़े रहे। जब होशमें आये तो कहने लगे-हे राम! हे महाबाहो! मैं जो कह रहा हूँ, उसे तनिक ध्यान देकर सुनिए। आज हम सब वाल्मीकिके एक शिष्यसे, जिनकी अवस्था अभी पाँच वर्षकी है, परास्त हो गये। मेरा तो यहाँतक विश्वास है कि आपके भ्राता लक्ष्मण आदि भी उसे नहीं हरा सकते॥ ५५ ॥ ५६ ॥ हे रघूत्तम! उसे मारनेके लिए आप कोई उपाय सोचिए। सीतात्याग आदिकी बातें दुहराकर उस एकाकी बालकने हमारी और आपकी भी भरपूर निन्दा की है। उनकी बातें सुनीं तो मंत्रियोंसे परामर्श करके रामने तुरंत कई दूतोंको वाल्मीकिके आश्रमपर भेजा। वे दूत वाल्मीकिके पास पहुँचे और उन्हें प्रणाम करके रामका सन्देश इस तरह सुनाने लगे- ॥ ५७-५९ ॥ रामचन्द्रने कहा है कि आपका महावीर शिष्य लव हमारा अपराधी है। उसे या तो हमारे

विस्मृत्यापूर्वमेव त्वं नाहूतोऽसि क्षमस्व तत् । तद्दूतवचनं श्रुत्वा रामीयं मुनिरब्रवीत् ॥६१॥
शिष्याभ्यामहं चाहमेव यास्यामि त्वं व्रज । तथेति रामदूतोऽपि मुनिं नत्वा ययौ मखम् ॥६२॥
जानन्नेव भावि वृत्तमादौ रामो मुनिं मखम् । नाह्वयामास शिष्याभ्यां लौकिकीं रीतिमाश्रितः ॥६३॥
स्वीयव्रतसमाप्तिं साऽकरोत्सीताऽपि सादरम् ।

विष्णुदास उवाच

अशक्तश्च कथं कार्यं व्रतमेतद्वदस्व माम् ॥६४॥

श्रीरामदास उवाच

कांचनस्याथवा रौप्यस्याथवा ताम्रनिर्मिते । कार्ये द्वे पादुके रम्ये राघवस्य यथासुखम् ॥६५॥
अभावे कमलानां च पुष्पैरंजलिरीरिता । एकाशीतिदंपतीनां न शक्तिः पूजने तदा ॥६६॥
पूजनीयानि युग्मानि नव शक्त्याऽथवा सुखम् । स्वशक्त्या पूजनं कार्यं वित्तशाठ्यं परित्यजेत् ॥६७॥
अनेकदूरगस्यापि संयोगश्च भवेज्जवात् । भाविकार्याणि वेगेन भविष्यन्ति न संशयः ॥६८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये
जन्मकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

(राम-लक्ष्मण आदिका लव-कुशके साथ युद्ध)

श्रीरामचन्द्र उवाच

अथ रामोऽपि धर्मात्मा चरमे तुरगाध्वरे । हयं मुमोच शत्रुघ्नस्तस्य पृष्ठे ययौ जवात् ॥१॥
दक्षिणां पश्चिमामाशामुत्तरां तुरगोत्तमः । अतिक्रम्य तथा प्राचीं यज्ञस्थानं न्यवर्तत ॥२॥
नृपतिभ्यः समस्तेभ्यः शत्रुघ्नो वसु कोटिशः । गृहीत्वा तैर्नृपैर्युक्तस्तुरगस्यानुगो ययौ ॥३॥

दूतोंके साथ भेज दीजिए अथवा आप स्वयं अपने साथ लेकर हमारे यज्ञमण्डपमें आइए ॥ ६० ॥ भूलसे मैंने आपको पहले निमन्त्रण नहीं दिया था, सो क्षमा कीजिएगा। इस प्रकार दूतोंके मुखसे रामका सन्देश सुनकर महर्षि वाल्मीकिने कहा—॥ ६१ ॥ हम अपने शिष्योंके साथ स्वयं यज्ञमण्डपमें आयेंगे, तुम लोग जाओ। रामके दूतोंने ऋषिराजके वचन सुनकर प्रणाम किया और वहाँसे प्रस्थान करके रामको यज्ञशालाको चल पड़े ॥६२॥ राम इस भावी घटनाको पहिलेसे ही जानते थे। इसीलिए लौकिक रीति निभाते हुए शिष्योंके साथ वाल्मीकिजीको पहले यज्ञमें नहीं बुलाया था ॥ ६३ ॥ उधर सीताने भी नौ दिनवाला व्रत समाप्त कर लिया। विष्णुदासने पूछा—जो लोग सामर्थ्यहीन हैं, वे इस व्रतको कैसे करेंगे ? सो बताइए ॥ ६४ ॥ श्रीरामदासने उत्तर दिया—यदि सुवर्णकी पादुका न बनवा सके तो चाँदीकी बनवा ले, वह भी न हो सके तो तामेकी दो चरणपादुकाएँ बनवानी चाहिए ॥ ६५ ॥ यदि उतने कमलके फूल न मिल सकें तो साधारणतया किसी भी फूलकी अंजली दे। यदि इक्यासी द्विजदम्पतीकी पूजा करनेकी सामर्थ्य न हो तो नौ द्विजदम्पतीका ही पूजन करे। उसके भी अभावमें अपनी शक्तिके अनुसार पूजा करे, लेकिन उनमें कंजूसी न होने पाये ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ इस व्रतको करनेसे चाहे कितनी ही दूरीपर रहनेवाले भी प्रियजनका मिलाप अवश्य हो जाता है। इसके अतिरिक्त जितने भी भविष्यके कार्य होंगे, वे सब सम्पन्न हो जायँगे। इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ६८ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृत ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते जन्मकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीरामदास बोले—इस प्रकार रामचन्द्रने ९९ अश्वमेध यज्ञ पूर्ण कर लिये। अन्तिम सौवें यज्ञके लिए भी घोड़ा अभिषिक्त करके छोड़ा और शत्रुघ्न उसकी रक्षा करनेके लिए उसके साथ गये ॥ १ ॥ दक्षिण, पश्चिम, पूर्व और उत्तर दिशाकी प्रदक्षिणा करके घोड़ा रामचन्द्रजीके यज्ञमण्डपकी ओर लौट पड़ा ॥ २ ॥ रास्तेमें कितने ही राजाओंसे अनेक प्रकारकी भेंटें ले लेकर उन राजाओंको अपने साथ लिये शत्रुघ्न अश्वसमेत

सेनया चतुरंगिण्या च दशसाहस्रसंख्यया । तस्मिन्विमाने ऋषयः सर्वे राजर्षयस्तथा ॥ ४ ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः समाजग्मुः सहस्रशः । चरमाध्वरभवं द्रष्टुं रामस्योत्सवमागताः ॥ ५ ॥
वाल्मीकिरपि संगृह्य गायंतौ भूमिजात्मजौ । जगाम यज्ञवाटस्य समीपं सीतया सुखम् ॥ ६ ॥
मार्गे नृपसमूहेषु शिबिकास्थां हि जानकीम् । न विदुः पार्थिवाः सर्वे जनास्तेऽपि यथेतरे ॥ ७ ॥
सुमेधया जनकोऽपि ययौ रामाध्वरं प्रति । क्रोशद्वयांतरे पूर्वं यज्ञवाटान्मुनीश्वरः ॥ ८ ॥
कृत्वा पर्णकुटीं रम्यां तस्यां युक्तः स सीतया । वाल्मीकिर्गोपयामास पर्णकुट्यां विदेहजाम् ॥ ९ ॥
नृपसेनानिवासेषु जनकश्च सुमेधया । स्वसैन्येन ययौ तूर्णं रामेणासौ निरीक्षितः ॥१०॥
वाल्मीकिरपि तौ प्राह न्यस्तालंकारमण्डितौ । जटाचीराजिनधरौ सीतापुत्रौ महाधियौ ॥११॥
यत्र तत्र च गायंतौ पुरे वीथिषु सर्वतः । रामस्याग्रे प्रगायेतां शुश्रूषुर्यदि राघवः ॥१२॥
आजन्मकांडात्कांडानि न नेयान्यत्र बालकौ । यदा करोम्यहं चाज्ञां गायेतां सकलं तदा ॥१३॥
न ग्राह्यं तद्युवाभ्यां स यदि किंचिन्प्रदास्यति । इति तौ चोदितौ तत्र गायमानौ विचेरतुः ॥१४॥
तथोक्तं ऋषिणा पूर्वं तत्र तत्राभ्यगायताम् । तां तु सुश्राव काकुत्स्थः पूर्वियाकृतिं ततः ॥१५॥
अपूर्वपद्यवृत्तादिगेयैश्च समभिप्लुताम् । बालाभ्यां राघवः श्रुत्वा कौतूहलमुपेयिवान् ॥१६॥
अथ कर्मान्तरे रामः समाहूय मुनीश्वरान् । राजश्चैव तरस्वाग्रः पण्डितांश्चैव नैगमान् ॥१७॥
पौराणिकाञ्छब्दविदो गणकांश्च चिकित्सकान् । नानाकौशल्यनिपुणांस्तथा उद्भान् द्विजादिकान्॥१८॥
यज्ञवाटे तु तान्पूज्य गायकौ संप्रवेशयत् । ते सर्वे हृष्टमनसो राजानो ब्राह्मणादयः ॥१९॥
रामं तौ दारकौ दृष्ट्वा विस्मिता निर्निमेषकाः । अवोचन्सर्व एवैते परस्परमथानयोः ॥२०॥
इमौ रामस्य सदृशौ विधाद्विधमिवोदितौ । जटिलौ यदि न स्यातां न वल्कलधारिणौ ॥२१॥

अयोध्याके समीप आ पहुँचे ॥ ३ ॥ उस समय शत्रुघ्नके साथ दस हजार चतुरङ्गिणी सेना थी। इसके अतिरिक्त उस विमानमें कितने ही ऋषि, ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यगण दूर-दूरसे रामचन्द्रके उस अन्तिम यज्ञको देखने आये थे ॥ ४ ॥ ५ ॥ वाल्मीकि भी लव-कुश तथा सीताको अपने साथ लेकर रामके यज्ञमण्डपकी ओर चल पड़े ॥ ६ ॥ रास्तेमें सीता पालकीमें बैठी थीं। अतएव वहाँ राजाओं तथा और लोगोंने नहीं जान पाया कि इसमें कौन हैं ॥ ७ ॥ जनक और सुमेधा भी यज्ञमण्डपको आ रहे थे। जब दो कोस बाकी रह गया, वहीं वाल्मीकीजी सबके साथ एक पर्णकुटीमें ठहर गये और उसी कुटियामें वाल्मीकि ऋषिने जानकीको छुपा दिया ॥ ८ ॥ ९ ॥ जनक अपनी पत्नी सुमेधा तथा सेनाके साथ-साथ रामके यज्ञमण्डपमें जाकर ठहर गये। वहाँ रामसे भेंट हुई ॥ १० ॥ वाल्मीकिने उन दोनों कुमारोंका राजसी वस्त्राभूषण उतार तथा जटा और अचला पहिनाकर कहा कि तुम लोग इधर-उधर गलियोंमें मेरे सिखाये रामचरित्रको गाओ। यदि रामचन्द्र स्वयं सुनना चाहें तो उनको भी सुना देना ॥ ११ ॥ १२ ॥ लेकिन रामके सामने पूरी रामायण तभी गाना, जब मैं कहूँ। रामके जन्मसे लेकर सीतात्याग पर्यन्तकी कथा बिल्कुल अभ्यस्त रक्खो। यदि राम तुम्हें कुछ देना चाहें तो लेनेसे इनकार कर देना। इस प्रकार वाल्मीकिजीके आज्ञानुसार वे दोनों बच्चे रामचरित्र गाते हुए घूमने लगे ॥ १३ ॥ १४ ॥ जहाँ-जहाँ और जिस-जिस प्रकार गुरुजीने आकर गानेको कहा था, वहाँ-वहाँ जाकर उन्होंने गाया। रामचन्द्रजीके पास भी यह खबर पहुँची और उन्होंने लोगोंसे उनके गायनकी प्रशंसा सुनी ॥ १५ ॥ छोटे-छोटे बच्चोंके मुखसे इस प्रकार रामचरित्रके गानकी बात सुनकर उनके हृदयमें बड़ा कौतूहल हुआ ॥ १६ ॥ बादमें जब रामचन्द्रने अपने यज्ञसम्बन्धी कार्योंसे अवकाश पाया। तब अनेक मुनियों, राजाओं, ब्राह्मणों, वैदिकों, पौराणिकों, वैयाकरणों, ज्योतिषियों तथा अनेक प्रकारकी कलाओंमें निपुण लोगोंको उसी यज्ञशालामें बुलवाया। वहाँ पहुँचनेपर रामने सबकी पूजा की और उन दोनों कुमारोंको बुलवाया। उन राजाओं और ब्राह्मणादिकोंने बच्चोंको बड़े प्रेमसे देखा ॥ १७-१९ ॥ वहाँ लोगोंने एक बार रामकी ओर देखा, फिर बच्चोंकी तरफ निहारा तो उनके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। उनकी आँखें निर्निमेष हो गयीं

विशेषं नाधिगच्छामो राघवस्यानयोस्तदा । एवं संवदतां तेषां विस्मितानां परस्परम् ॥२२॥
तदाऽऽह रामदूतोऽपि लवबाणरुजं स्मरन् । रामचंद्रं यज्ञवाटस्थितं वै संभ्रमेण हि ॥२३॥
लवमंगुलिना वीरं दर्शयंश्च मुहुर्मुहुः । राम राम महाबाहो तमेनं पश्य वै लवम् ॥२४॥
येनास्माकं शरौघैश्च प्रक्षिप्य तव सन्निधौ । नीतानि कनकाब्जानि सुगंधीनि निरंतरम् ॥२५॥
सीतात्यागनिमित्तेन येन तेनापि वा मुहुः । कृता निंदा गर्वितेन त्वद्दण्डैकार्थिना प्रभो ॥२६॥
तव दण्डभयादेव पूर्ववेषं विलोपितः । रथवस्त्राभरणानि शस्त्राण्यपि विहाय च ॥२७॥
धृतानि वल्कलादीनि दीनरूपोऽत्र दृश्यते । त्वयाऽद्य दण्डनीयोऽयं बंधुसारातिगर्वितः ॥२८॥
इति स्वदूतवाक्यानि शृण्वन्नपि रघूत्तमः । प्रेम्णाऽवलोकयामास सुधाक्षिभ्यां शिशू मुहुः ॥२९॥
बालावपि सभासंस्थान्नमस्कृत्य यथाक्रमम् । राघवं स्वपितृव्यांश्च वसिष्ठं प्रणिपत्य च ॥३०॥
उपाचक्रमतुर्गातुं वीणे रणयतः शुभे । ततः प्रवृत्तं मधुरं गांधर्वं गीतमुत्तमम् ॥३१॥
श्रुत्वा तन्मधुरं गीतं रामस्तोषमवाप ह । ताभ्यां श्रुतं स्वचरितं विलासावध्यनुक्रमात् ॥३२॥
यद्यदाचरितं पूर्वं सीतया सह सौख्यदम् । ततोऽपराह्णे श्रीरामः प्रसन्नवदनांबुजः ॥३३॥
उवाच तौ समग्रं वै श्वो गेयं मम सन्निधौ । तथेति रामवचनं तावंगीचक्रतुस्तदा ॥३४॥
ततो रामो लवं प्राह मे यद्यप्यपराधितम् । त्वया पूर्वं तथापि त्वां तुष्टोऽहं नात्र शिक्षये ॥३५॥
त्वद्गीतिमच्चरित्रादि श्रवणादद्य मे मनः । परां विश्रांतिमापन्नं त्वत्कृतं क्षमितं मया ॥३६॥
अधुना मद्भयं त्यक्त्वा त्वं सुखं विचरात्र हि । तद्रामवचनं श्रुत्वा लवो राघवमब्रवीत् ॥३७॥
मयाऽपराधितं राजंस्तव दर्शनकाम्यया । मदपराधितं स्मृत्वात्राहूतोऽहं यतस्त्वया ॥३८॥

और वे आपसमें कहने लगे—२० ॥ एक बिंबसे निकले दूसरे प्रतिबिंबकी भाँति ये दोनों बालक बिल्कुल रामचन्द्रके समान हैं। यदि इनके मस्तकपर जटा न रहे और वल्कल वस्त्र उतार दिये जायँ तो इनमें तथा राममें कोई अन्तर ही नहीं रह जाता। जब सब लोग विस्मित होकर परस्पर इस प्रकार बातें कर रहे थे। तभी लवके बाणोंसे बगीचेवाली मारकी पीड़ाका स्मरण करता हुआ रामका एक दूत घबड़ाकर बोला—॥ २१-२३ ॥ हे राम ! हे महाबाहो ! देखिए, यही लव है। जिसने अपने बाणोंसे उठाकर मुझे आपके पास फेंक दिया था और सुगन्धित कनककमलके फूलोंको हठात् तोड़कर ले जाया करता था ॥ २४ ॥ २५ ॥ आपके सीतात्यागविषयक बातको लेकर इसीने बड़े घमण्डके साथ आपकी निन्दा की थी ॥२६॥ ज्ञात होता है कि आपके दण्डसे डरकर इसने रथ तथा वस्त्राभरण त्याग दिये हैं और वल्कलवसन आदि पहन तथा दीनरूप धारण करके आया है। किन्तु मेरा यह परामर्श है कि इस अभिमानीको अवश्य दण्ड दीजिए ॥ २७ । २८ ॥ इस प्रकार दूतकी बातें सुन करके भी रामचन्द्र अपनी अमृतभरी आँखोंसे उन बच्चोंको प्रेमपूर्वक देख रहे थे ॥ २९ ॥ लड़कोंने सभामें पहुँचकर वहाँ बैठे हुए लोगोंको प्रणाम करके रामको, लक्ष्मण आदि अपने चाचाओंको तथा वसिष्ठ आदि गुरुजनोंको प्रणाम किया और वीणा बजाते हुए रामचरित्र गाने लगे। उस समय सभामें जैसे गान्धर्व गायनका रस बरसने लगा ॥ ३० ॥ ३१ ॥ राम उनका मधुर गायन सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। गायनमें रामके उस चरित्रका वर्णन था, जो जन्मसे लेकर विलासकाण्ड पर्यन्त सीताके साथ उन्होंने किया था ॥ ३२ ॥ गाते-गाते दोपहरका समय हो गया। तब रामचन्द्रने प्रसन्नतापूर्वक उन बच्चोंसे कहा—अच्छा, आज समय अधिक बीत चुका। इसलिये रहने दो। कल मेरे पास फिर आना और मुझे सारी रामायण सुनाना। रामकी बातको उन्होंने अङ्गीकार कर लिया ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इसके अनन्तर रामने लवसे कहा—यद्यपि तुम हमारे अपराधी हो, फिर भी मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम्हें कोई दण्ड देनेकी इच्छा ही नहीं होती। तुम्हारे गायनोंमें अपनी चरित्रावली सुनकर मेरा हृदय शान्त हो गया है और तुमने जो अपराध किया था, उसे क्षमा करता हूँ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ अब तुम मुझसे डरो नहीं, निर्भय होकर जहाँ चाहो घूमो। इस प्रकार रामकी बातें सुनकर लवने उत्तर दिया—राजन् ! उस समय

अद्य ते दर्शनेनैव पौरुषं वृद्धिमागतम् । कीर्तिर्मे महती जाता तवाग्रे गायनादपि ॥३९॥
इत्युक्त्वाऽऽसील्लवस्तूष्णीं बन्धुना गंतुमुद्यतः । सभायास्तौ गंतुकामौ स्थलं स्वीयं निरीक्ष्य च ॥४०॥
रामोऽयुतं वसु तयोर्भरतेन प्रदापयत् । दीयमानं सुवर्णं तौ न तज्जग्रहतुस्तदा ॥४१॥
राजन् हेम्ना किमेतेन ह्यावां वै वन्यभोजिनौ । कृपावलोकनेनैव पाहि त्वमावयोः सदा ॥४२॥
इति संत्यज्य तद्दत्तं जग्मतुर्मुनिसन्निधिम् । आसीच्छ्रुत्वा स्वचरितं रामो हृद्यतिविस्मितः ॥४३॥
कुशोऽपि सकलं वृत्तं वाल्मीकिं मातरं तथा । निवेद्य जाह्नवीं स्नातुं कौतुकेन ययौ सुखम् ॥४४॥
लवो मुनीनां शिशुभिः शिशुक्रीडनमाचरत् । एतस्मिन्नंतरे यत्र लवः क्रीडां चकार ह ॥४५॥
बालकैस्तत्र संप्राप्तास्तुरगाध्वरकारिणः । त्यक्त्वा क्रीडां लवः शीघ्रमश्वं धृत्वोटजांतिके ॥४६॥
वृक्षे बबंध शिशुभिः पूर्ववत् क्रीडनं व्यधात् । ततः खे पुष्पकं प्राप्तं दृष्ट्वा बद्धं तुरङ्गमम् ॥४७॥
ज्ञात्वा बालकृतं सर्वे शत्रुघ्नाद्या विहस्य ते । दूतानाज्ञापयामासुर्मुच्यतां तुरगः सुखम् ॥४८॥
लवस्तानागतान् दृष्ट्वा वायव्यास्त्रेण वै तृणम् । संमन्त्र्य तान् मुमोचाथ लीलया शिशुसंयुतः ॥४९॥
झञ्झावातैस्तदा यानं हस्त्यश्वरथपूरितम् । शत्रुघ्नेनापि तैर्दूतैः खेऽभूत्तद्भ्रमरोपमम् ॥५०॥
तच्छ्रुत्वा रामचन्द्रोऽपि प्रेषयामास सादरम् । सुग्रीवमङ्गदं नीलं मैन्दं जाम्बवतं नलम् ॥५१॥
सुमंत्रं भरतं वायुपुत्रं तार्क्ष्यं विभीषणम् । सुषेणं पार्थिवान्सर्वान् स्वस्वामितबलैर्युतान् ॥५२॥
द्विविदं दधिवक्त्रं च वानरान्मकरध्वजम् । ते लवं दुद्रुवुर्गर्वाद्युद्धं चक्रुस्त्वरान्विताः ॥५३॥
तानागतान् लवो दृष्ट्वा कस्यचित्पतितं भुवि । दूतस्याश्वमोचनार्थमागतस्य शरासनम् ॥५४॥
तूणीरं च स्वयं धृत्वा ययौ योद्धुं त्वरान्वितः । टणत्कृत्य महच्चापं चिंतयामास चेतसि ॥५५॥

मैने जो अपराध किया था, उसका उद्देश्य एकमात्र यही था कि मै किसी प्रकार आपसे मिलूँ। आपने भी मेरे अपराधका स्मरण करके भी मुझे बुलाया, सो बड़ी कृपा की ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ आज आपके दर्शन करते ही मेरा पुरुषार्थ बढ़ गया और आपके सामने रामचरित्र गानेसे मेरी कीर्ति भी बढ़ी ॥ ३९ ॥ इतना कहकर लव चुप हो गये और अपने भ्राताके साथ आश्रमको जानेकी तैयारी करने लगे। उधर रामने उन बच्चोंके लिए दस हजार स्वर्णमुद्रायें भरतसे दिलवायीं। किन्तु उन्होंने वह धन नहीं लिया। उन्होंने कहा—राजन्! अरण्यमें फल-मूलपर जीवन बितानेवाले हम वनवासी लोग आपकी इस सुवर्णराशिको लेकर क्या करेंगे। बस, आप अपनी कृपादृष्टिसे हमारी रक्षा करते रहिए ॥ ४०–४२ ॥ इस प्रकार उस दानद्रव्यका परित्याग करके वे दोनों वाल्मीकिजीके पास चले गये। बच्चोंके मुँहसे अपना चरित्र सुनकर रामचन्द्रजी बड़े विस्मित हुए ॥ ४३ ॥ उधर कुश आश्रमपर पहुँचे तो वहाँ वाल्मीकि तथा सीताको उस दिनका वृत्तान्त सुनाया और स्नान करनेके लिए गंगाजीको चले गये ॥ ४४ ॥ इधर लव कुछ मुनिकुमारोंके साथ खेलने लगा। इसी बीच जहाँ वे सब खेलते रहे, उसी तरफसे अश्वमेधका घोड़ा चारों ओर घूमकर रामकी यज्ञशालामें जा रहा था। उसे देखते ही कौतुकवश लड़कोंने घेर लिया। लवने आगे बढ़कर घोड़ेको पकड़ा और अपनी कुटियाके किनारे ले जाकर एक वृक्षमें बाँध दिया ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ लड़के फिर खेलने लगे। उसी समय आकाशमें पुष्पक विमानपर बैठे हुए शत्रुघ्नने देखा तो बहुत हँसे। उन्होंने सोचा कि यह बच्चोंने खेलवाड़ किया है। शत्रुघ्नने दूतोंसे कहा—जाओ और घोड़ेको वहाँसे छीन ले आओ। दूत लवके पास पहुँचे। त्यों ही लवने एक तिनका उठाया और वायव्य मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके उनपर डाल दिया। उसके डालते ही बड़ी जोरसे आँधी चलने लगी और शत्रुघ्न तथा उनके सैनिक हाथी, घोड़े, रथ आदि आकाशमें भौंरोंकी तरह उड़ने लगे ॥ ४७–५० ॥ यह समाचार सुनकर रामने अपने यहाँसे सुग्रीव, अङ्गद, नील, जांबवान्, नल, सुमन्त्र, भरत, हनुमान्, गरुड़, विभीषण, सुषेण तथा देश-देशान्तरसे आये हुए राजाओंको शत्रुघ्नकी सहायताके लिए भेजा। इनके अतिरिक्त द्विविद-दधिवक्त्र आदि वानर तथा मकरध्वज आदि वीर गर्वके साथ युद्धभूमिकी ओर दौड़ पड़े ॥ ५१–५३ ॥ इतनी बड़ी सेनाको सामने देखकर लवने एक साधारण धनुषको, जो घोड़ा छुड़ानेके लिए आये हुए किसी सैनिकका गिर पड़ा था,

पितृव्याद्याः स्थिता योद्धुं मयाऽद्य पुरतस्त्विह । कथमेभिश्च योद्धव्यं मया च समरांगणे ॥५६॥
कथं तीक्ष्णानद्य शरानेतेषु प्रक्षिपाम्यहम् । स्वीयानां वधकर्तारं मां सीतामुनिरावधाः ॥५७॥
सहिष्यंति कथं दृष्ट्वा कर्त्तव्यं किं मयाऽधुना । युद्धात्पराङ्मुखोऽहं चेद्भूत्वा गच्छामि तं मुनिम् ॥५८॥
वाल्मीकिशिक्षिता विद्या तर्हि सा विफला भवेत् । अतः केषामपि वधं विना युद्धं करोम्यहम् ॥५९॥
इति निश्चित्य मनसि मेघशब्दवदाह तान् । आगम्यते किमर्थं मां युष्माभिर्द्रुत वेगतः ॥६०॥
न सीतावत्सुलभोऽहं पीडनार्थमिहाद्य हि । सीताक्लेशानलहरं मां मेघं वेत्थ भो खलाः ॥६१॥

सीतोष्णोच्छ्वसितोग्राग्निज्वालाभिर्वेऽद्य पौरुषम् ।
विदग्धं न स्फुटं लोकान्दर्शनीयं ममापि च ॥ ६२ ॥

इति स्ववाक्शरैर्भिन्नहृदयान्स लवः पुनः । मोहयामास सकलान् मोहनास्त्रं विसृज्य च ॥६३॥
ततो लवः स विजयी सुमंत्रं भरतं तथा । कृत्वा स्वकक्षयोः शीघ्रं कराभ्यां वायुनंदनम् ॥६४॥
सुग्रीवं च मुदा धृत्वा सीतायै तान् प्रदर्शयत् । दृष्ट्वा सीतापि तान् वीरान् मोहनास्त्रेण मोहितान् ॥६५॥
पुत्रात्तान् मोचयामास रक्षयामास तान् रहः । तांश्चीतान्राघवः श्रुत्वा लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ॥६६॥
ईदृशं पौरुषं बंधो रावणेनापि नो कृतम् । यथा कृतं बालकेन करणीयं किमत्र वै ॥६७॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा लक्ष्मणः प्राह राघवम् । मा चिंतेयं त्वया कार्या धृत्वाहं तं शिशुं क्षणात् ॥६८॥
त्वत्सन्निधावानयामि सिंहो मृगशिशुं यथा । इत्युक्त्वा राघवं नत्वा रथारूढो ययौ जवात् ॥६९॥
सेनया सचिवैर्युक्तो वाल्मीकेर्वसतिस्थलम् । तमागतं विबुध्याथ लवोऽपि तत्पुरो ययौ ॥७०॥
तं दृष्ट्वा बालकं रम्यं कृपया लक्ष्मणोऽब्रवीत् । मा शिशो त्वं कुरुष्वाद्य साहसं मत्पुरस्त्विह ॥७१॥

उसको हाथमें लिया। पीठपर तरकस बाँधी और युद्ध करनेके लिए धनुषका भयानक टंकार करके मनमें सोचने लगे—मेरे चाचा आदि युद्ध करनेके लिए सामने खड़े हैं। मैं समरभूमिमें इनके ऊपर अपने तीक्ष्ण बाण कैसे चलाऊँगा। स्वजनोंका वध करनेपर माता सीता तथा रामचन्द्रजी मेरे इस दुष्कर्मको भला कैसे सहेंगे। ऐसी अवस्थामें मैं क्या करूँ? यदि युद्धसे मुहँ मोड़कर गुरु वाल्मीकिके पास लौट जाऊँ तो महर्षिकी सिखायी विद्या निष्फल हो जायगी। अतएव इस समय ऐसा युद्ध उपयोगी होगा, जिसमें किसीका वध न हो ॥ ५४-५९ ॥ ऐसा निश्चय करके मेघकी तरह गर्जते हुए लवने कहा– हे दुष्टो! तुमलोग किसलिये मेरी ओर दौड़े चले आ रहे हो? ॥ ६० ॥ माता सीताकी तरह मैं भोला-भाला नहीं हूँ, जो रामकी दी हुई पीड़ाको चुप चाप सह लूँगा। देख लो, सीताके क्लेशरूपी अग्निको बुझानेवाला मैं मेघ हूँ। सीताकी उष्ण उच्छ्वासकी उग्र ज्वालाके सामने आज तुम सबका पुरुषार्थ स्पष्टरूपसे संसारके सामने उपस्थित होगा और दुनिया देखेगी। इस प्रकार पहले लवने अपने वचनरूपी बाणोंसे शत्रुओंके हृदयपर प्रहार किया। तदनन्तर अपने मोहनास्त्रसे वहाँ उपस्थित सारी सेनाको मूर्छित कर दिया ॥ ६१-६३ ॥ इस तरह विजय प्राप्त करके लवने सुमन्त्र और भरतको अपनी काँखमें दबा लिया। हाथोंसे हनुमान्‌जी तथा सुग्रीवको पकड़कर प्रसन्नतापूर्वक माताके पास ले गये और सीताको दिखाया। उन वानरोंको मोहनास्त्रसे मोहित देखकर सीताने उन्हें लवके हाथोंसे छुड़ा दिया। उधर जब रामने यह सुना कि लव मोहनास्त्रसे सैनिकोंको मोहित करके सुग्रीवादिको पकड़ ले गया है। तब एकान्तमें लक्ष्मणसे कहने लगे— हे लक्ष्मण! इस प्रकारका पुरुषार्थ तो रावण भी नहीं दिखा सका था, जैसा कि यहाँ वह छोकरा दिखा रहा है। इस विषयमें क्या करना चाहिये, यह मैं कुछ भी नहीं सोच सका हूँ। इस प्रकार रामकी बात सुनकर लक्ष्मणने कहा—आप कुछ चिन्ता न करें। मैं अभी आता हूँ और क्षणमात्र में उस बच्चेको बन्दी बनाकर आपके पास लाता हूँ ॥ ६४-६८ ॥ ऐसा कहकर लक्ष्मण रथपर बैठे और वेगके साथ चल दिये। एक बड़ी सेना और मन्त्रियोंके साथ लक्ष्मण थोड़ी ही देरमें आश्रमके पास जा पहुँचे। जब लवने सुना कि लक्ष्मण आये हैं तो वे स्वयं उनके सामने गये। लक्ष्मणने जब उस सुन्दर और सुकुमार किन्तु वीर

न समर्थोऽसि वै स्थातुं गच्छ नोचेन्मरिष्यसि । शेषं रामायणं श्रोतुं त्वत्तोऽहं त्वां निहन्मि न ॥७२॥
त्वयाऽपराधितं बाल राघवस्य मुहुर्मुहुः । तत्सर्वं त्वद्य वेद्मि तथापि त्वां निहन्मि न ॥७३॥
नीतान् वीरान् समर्प्याथ वाजिना रघुनंदनम् । एहि त्वं शरणं बाल यद्यस्ति जीवितस्पृहा ॥७४॥
तत्सौमित्रेर्वचः श्रुत्वा लवोऽभीतस्तमब्रवीत् । वेद्मि त्वां राघवं चापि सीतात्यागापरौरुषम् ॥७५॥
सीतायामेव युवयोः पौरुषं न लवे मयि । सीतादुःखापनोदार्थं मुनिना निर्मितस्त्वहम् ॥७६॥
युवां जित्वाऽद्य समरे सीतादुःखं प्रणाशये । मुधा युवाभ्यां सा सीता छलितापि पतिव्रता ॥७७॥
तस्या विनिष्कृतिं चाहं कर्तुमत्र समागतः । सीतादुःखाग्निना युष्मत्पौरुषं दग्धमस्ति तत् ॥७८॥
न स्थातव्यं ममाग्रेऽत्र गच्छध्वं विधवोपमाः । इति ते लववाग्बाणैर्भिन्नमर्मस्थलाश्च वै ॥७९॥
लक्ष्मणाद्या ववर्षुस्तं शस्त्रैरस्त्रैर्लवं क्रुधा । ततो लवश्च स्वैर्बाणैः शस्त्रवृष्टिं निवार्य च ॥८०॥
श्रीरामसचिवादींश्च प्राक्षिपद्यज्ञमण्डपे । ते सर्वे सचिवाद्याश्च लवमार्गणताडिताः ॥८१॥
भिन्नदेहा लोहिताक्ताः प्रोचू रामं स्खलिद्गिरः । राम त्वं नो पश्यसि किं तूष्णीमध्वरमण्डपे ॥८२॥
उपायं चिंतयस्वान्यं वधे तस्य लवस्य च । शस्त्रैरस्त्रैर्मृतिं युद्धे न गच्छति लवः प्रभो ॥८३॥
साहाय्यं कुरु सौमित्रेर्यदि बन्धुं सजीवितम् । त्वमिच्छसि लवशरप्रहाराद्बन्धुवत्सल ॥८४॥
इत्युक्त्वा लववाक्यानि राघवं ते न्यवेदयन् । तानि श्रुत्वा राघवोऽपि तूष्णीमासीत्तदा क्षणम् । ८५॥
लवोऽपि लक्ष्मणं बाणैर्विव्याध दशभिर्दृढम् । आपुंखमग्नास्ते बाणाः शरीरे लक्ष्मणस्य च ॥८६॥
ततः क्रोधपरीतात्मा लक्ष्मणो वेगवत्तरः । लवदेहे स्वशस्त्राणि भवन्ति विफलानि हि ॥८७॥

बालकको सामने देखा तो कृपापूर्वक कहने लगे—देखो बच्चे! अब मैं आया हूँ। मेरे सामने किसी तरहकी दुष्टता न करना। तुम मेरे सामने नहीं ठहर सकते। जाओ, चले जाओ, नहीं तो तुम नहीं बच सकोगे। अभी हमें तुम्हारे मुखसे बाकी रामचरित्र सुनना है। इसीलिए नहीं मार रहा हूँ। हे अबोध बालक! तुमने कई बार रामका अपराध किया है। मैं सब जानता हूँ। फिर भी मैं तुमको नहीं मारूँगा ॥ ६९–७३ ॥ यदि तुम्हें अपने प्राणोंका लोभ हो तो तुमने जिन लोगोंको पकड़ लिया है, उन्हें लाकर हमें दे दो और घोड़ेको लेकर मेरे साथ रामचन्द्रजीकी शरणमें चलो ॥ ७४ ॥ इस तरह लक्ष्मणकी बातें सुनकर लवने कहा—बेचारी सीताके ऊपर अपनी वीरता दिखलानेवाले तुमको और रामको मैं अच्छी तरह जानता हूँ। सीताके ऊपर तुम्हारा जो पुरुषार्थ चला था, वह लवपर नहीं चल सकेगा। सीताके दुःखको दूर करनेके लिए ही महर्षि वाल्मीकिने मेरी रचना की है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ आज मैं तुम दोनोंको जीतकर सीताका दुःख दूर करूँगा। तुमने भोली-भाली सीताके साथ कपटका व्यवहार किया है। उसका प्रतीकार करनेके लिए ही मैं यहाँ आया हूँ। सीताके दुःखरूपी अग्निमें तुमलोगोंका पुरुषार्थ जल चुका है ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ तुम लोगोंको चाहिए कि मेरे सामनेसे हट जाओ। इस प्रकार लवके वचनरूपी बाणोंसे लक्ष्मणका हृदय विदीर्ण हो गया ॥ ७९ ॥ ८० ॥ अतः क्रुद्ध होकर सब एक साथ लवपर बाणवर्षा करने लगे। लवने भी अस्त्रोंसे उनके शस्त्रोंका निवारण किया और लक्ष्मणके साथ आये हुए मन्त्री-सैनिक आदिको अपने बाणोंसे उठा-उठाकर रामके यज्ञमण्डपमें फेंक दिया। लवके बाणोंसे आहत मन्त्री आदिकी देहमें जहाँ-तहाँ घाव हो गये थे और उनसे रुधिर बह रहा था। इसी दशामें वे सब रामके पास जाकर कहने लगे—हे राम! इस यज्ञमण्डपमें चुपचाप बैठे-बैठे आप क्या देख रहे हैं? ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ लवको मारनेके लिए कोई दूसरा उपाय सोचिये। हे प्रभो! लव संग्राममें किसी तरहके अस्त्र-शस्त्रसे नहीं मर रहा है। हे बन्धुवत्सल! यदि लक्ष्मणको जीवित देखना चाहते हों तो उनकी सहायता करिये। लवके कराल बाणोंके प्रहारसे उन्हें बचाइए। इस तरह वहाँका समाचार सुनानेके बाद उन बातोंको बतलाया, जो लवने रामके विषयमें कही थीं। उनकी बातें सुनकर राम कुछ देरतक चुप बैठे रहे। उधर लवने दस बाणोंसे लक्ष्मणको घायल कर दिया और वे दसों बाण लक्ष्मणके शरीरमें सिरसे लेकर पूँछतक धुस गये थे ॥ ८३–८६ ॥ ऐसी अवस्थामें लक्ष्मण क्रोधसे आग-

दृष्ट्वेति व्यग्रचित्तः सः क्षणं सञ्चिन्त्य वै हृदि । ब्रह्मास्त्रेण लवं बद्ध्वा साश्वं राज्ञे न्यवेदयत् ॥८८॥
ब्रह्मास्त्रं मानयंस्तूष्णीं ययौ राम लवोऽपि सः । राघवस्तं समानीत दृष्ट्वा लक्ष्मणमब्रवीत् ॥८९॥
जानन्नपि सुतं स्वीयं कौतुकं दर्शयञ्जनान् । महत्कार्यं कृतं बन्धो त्वमनं विद्धि बाहुजम् ॥९०॥
द्विजहत्याभयं त्यक्त्वा घातयस्वैनमद्य हि । रामं प्रोवाच सौमित्रिर्नायं शस्त्रैर्मरिष्यति ॥९१॥
भरताद्यैर्मया चापि नायं किं ताडितोऽसिभिः । अस्य देहे क्षतं चैकमपि किं दृश्यते त्वया ॥९२॥
तच्छ्रुत्वा राघवः प्राह प्रष्टव्यो बालकस्त्वया । केनोपायेन ते मृत्युर्भवेदिति ममाग्रतः ॥९३॥
गोपायन्ति निजं मृत्युं न शूरा वधशङ्कया । न वदन्त्यनृतं क्वापि स्वबलेनैव जीविताः ॥९४॥
ततः पृष्टो लक्ष्मणेन लवः प्राहाथ लक्ष्मणम् । जलस्य सेचनाद्वृद्धिं स्वीयां ज्ञात्वा मुनेर्गिरा ॥९५॥
कापट्यबुद्ध्या लोकान्हि दर्शयन् स्वपराक्रमम् । जलस्य सेचनेनाद्य मृत्युर्मे निश्चितो भवेत् ॥९६॥
तत्तस्य वचन श्रुत्वा शिलायां तं निवेश्य च । सेवनं तोयकलशैः कारयामास लक्ष्मणः ॥
अयोध्यावासिभिर्नारीपुरुषैः परमादरात् ॥९७॥
चतुर्मुखैश्च घटैर्वृषानीतैश्च कोटिशः । तथा कार्पटिकैश्चापि रथोष्ट्रवारणादिभिः ॥९८॥
आनयित्वा जलं शीघ्रं सिषेच लववालकम् । यथा यथा जलैस्तं हि सेचनं चक्रिरे जनाः ॥९९॥
तथा तथा लवस्तत्र व्यवर्द्धत घनो यथा । सप्ततालप्रमाणोऽभूद्वृद्ध्या भीमपराक्रमः ॥१००॥
ततस्तं लक्ष्मणः प्राह त्वया लव मृषेरितम् । नायं तव वधोपायः स्ववृद्ध्यर्थं कृतः खलु ॥१०१॥
लवोऽप्याहाथ सौमित्रं कौटिल्येन प्रतारयन् । यथा तैलक्षते दीपो वृद्धिमते प्रगच्छति ॥१०२॥
तथायुषः क्षये मेऽपि वृद्धिं पश्य क्षणं त्विमाम् । तद्वाक्य मानयन्सत्यं सेचयत्तं स लक्ष्मणः ॥१०३॥
जलैर्गङ्गैः समानीतैः पूर्ववच्च पुनः पुनः । काष्ठसोपानमार्गेण सेचनं चक्रिरे जनाः ॥१०४॥

बबूले हो उठे। उन्होंने कई शस्त्र लवपर चलाये, लेकिन जब उन्हें बेकार होते देखा तो घबड़ा उठे। क्षण भर उन्होंने न जाने क्या सोचा और तब ब्रह्मास्त्रसे लवको बांध लिया और घोड़ेको भी साथ लेकर अयोध्यामें रामके पास ले आये ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ब्रह्मास्त्रकी मर्यादा रखनेके लिए लव भी चुपचाप लक्ष्मणके साथ चले गये। जब रामने लवको देखा तो लक्ष्मणसे कहा—यद्यपि मैं जानता हूँ कि यह मेरा ही पुत्र है। फिर भी संसारको शिक्षा देनेके लिये मैं आज्ञा देता हूँ कि द्विजहत्याके भयको दूर करके आज ही इसे मार डालो। इसने बड़े अपराध किये हैं। लक्ष्मणने उत्तर दिया कि यह किसी शस्त्रास्त्रसे नहीं मरेगा ॥ ८९–९१ ॥ हमने तथा भरतजीने इसपर कितनी ही बार तलवारके प्रहार किये हैं, किन्तु देखिए न! इसके शरीरमें कहीं कोई घाव दीखता है? ॥ ९२ ॥ रामने कहा—इसीसे पूछो कि तू किस प्रकार मर सकेगा। जो सच्चे शूरवीर होते हैं, वे अपनी मृत्युके उपायको भी नहीं छिपाते। सच्चे वीर कभी झूठ नहीं बोलते ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ इस प्रकार पूछनेपर लव कुछ सोचने लगे। एक बार महर्षि वाल्मीकिने लवसे कहा था कि तुम्हारे ऊपर जितना जल डाला जायगा, तुम उतने ही बढ़ोगे। इसी बातका ख्याल करके लवने संसारको अपना पराक्रम दिखानेके लिए लक्ष्मणसे कहा—जलसे सींचनेपर मेरी मृत्यु होगी ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ लवकी बात सुनकर लक्ष्मणने लवको पास ही एक पत्थरपर बिठाया और पानीके घड़ोंसे नहलाने लगे। अयोध्यानिवासी बहुतसे नरनारी बड़े आदरके साथ लवपर जल डालने लगे। चार मुँहवाले बड़े-बड़े चमड़ेके मोट बैल, रथ, हाथी, घोड़े, और ऊँटपर लद-लदकर करोड़ोंकी संख्यामें वहाँ आने लगे और वे सब लवके ऊपर डाल दिये गये। जैसे-जैसे पानी पड़ता था, त्यों त्यों लव मेघके समान बढ़ते जाते थे। वह परम वीर बढ़ते-बढ़ते जब सात ताड़की ऊँचाई तक बढ़ा ॥ ९७–१०० ॥ तब लक्ष्मणने कहा—लव! ज्ञात होता है कि तुम झूठ बोले हो। तुमने मरनेके लिये नहीं, अपने बढ़नेका उपाय बताया था ॥ १०१ ॥ लवने भी लक्ष्मणको बहकाकर कहा—दीपक जब बुझनेवाला होता है तो उसकी लौ कितनी बढ़ जाया करती है। उसी तरह आयुके क्षय होनेसे मैं भी बढ़ रहा हूँ। अबकी बार भी लक्ष्मणने लवकी बात सच मानी और उसी तरह लवके ऊपर जलके कलसे डालते रहे ॥१०२॥१०३॥ गङ्गाणीसे

ब्रह्मास्त्रेण विनिर्मुक्तः प्रचचाल लवस्तदा । भुजावास्फालयामास तथोरू बाललीलया ॥१०५॥
तं दृष्ट्वा दुद्रुवुः सर्वे त्यक्त्वा तोयघटानपि । शकृन्मूत्रं प्रमुंचंतो मुक्तकच्छा लवेक्षणाः ॥१०६॥
एतस्मिन्नन्तरे क्रीडन् गंगायां तान् जनान्कुशः । पप्रच्छाद्य मुहुर्नीरं किमर्थं नीयते जवात् ॥१०७॥
जनाः प्रोचुर्लवं हंतुमस्माभिर्नीयते जलम् । विश्वस्तैर्लववाक्येन तच्छ्रुत्वा स ययौ कुशः ॥१०८॥
संगृह्य स्वाश्रमाच्चापं तूणीरं वेगवत्तरः । लव मोचयितुं चापं टणत्कृत्वाऽध्वरस्थले ॥१०९॥
कुशचापध्वनिं श्रुत्वा तस्थौ तूष्णीं लवः क्षणम् । ततो दृष्ट्वा कुश प्राप्तं ययौ योद्धुं स लक्ष्मणः ॥११०॥
तं दृष्ट्वा स कुशः प्राह छलितौ जानकीलवौ । त्वया रामेण लोकैश्च तयोः कर्तुं विनिष्कृतिम् ॥१११॥

अहं प्राप्तोऽस्मि मां बाल लववत्त्वं न मानय ।
युवयोः पौरुषं नार्यां शिशावस्तीति वेद्म्यम् ॥११२॥

सीताक्लेशानलज्वालासंदग्धं युवयोर्बलम् । न ममाग्रे स्फुटं कार्यं युवाभ्यामुपहासकृत् ॥११३॥
वाल्मीकिशिक्षितां विद्यां रामं त्वामद्य दर्शये । इत्युक्त्वा तुमुलं युद्धं पितृव्येण चकार सः ॥११४॥
आसन् वृथा जानकीये लक्ष्मणोत्सृष्टमार्गणाः । रामायणात्कुशो ज्ञात्वा शेष एवात्र लक्ष्मणः ॥११५॥
जातोऽस्तीति वधे तस्य गारुडास्त्रं मुमोच सः । क्षात्रधर्मं पुरस्कृत्य न तद्धिंसाभयं दधे ॥११६॥
जानन् युद्धे पितुर्हत्या जाता चेन्न भयं त्विति । तद्दृष्ट्वा खगराजास्त्रं सौमित्रेः कुठिता मतिः ॥११७॥
भयभीतः पृथिव्यां हि पपात लक्ष्मणो रथात् । च्युतं दृष्ट्वा स्वयं तत्र दीक्षायुक्तोऽपि वेगतः ॥११८॥
धृत्वा चापं च तूणीरं यज्ञकुण्डाग्रतः स्थितः । चापं संधाय ब्रह्माणं सौमित्रेर्जीविताशया ॥११९॥

जल भर-भरकर आता जा रहा था और सीढ़ी लगाकर लवपर जलकी धार डाली जाती थी ॥ १०४ ॥ उसी समय सबके देखते ही देखते लव ब्रह्मास्त्रसे छूट गया और भुजाएँ तथा ताल ठोंकता हुआ दौड़ने लगा। उसको देखकर वहाँके सारे नर-नारी अपने-अपने कलसोंको छोड़-छोड़कर भाग गये। उसके उस विकराल रूपको देखकर बहुतोंकी धोतियाँ खुल गयीं। कई एकको तो मारे डरके पेशाब टट्टी तक हो गयी ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ उधर कुश बच्चोंकी तरह खेलता-कूदता गङ्गाजीके किनारे गया। वहाँ उसने देखा कि बहुतसे लोग पानी भर रहे हैं। उनसे कुशने पूछा—तुमलोग इतना पानी क्यों भरे लिये जा रहे हो ? ॥ १०७ ॥ उन्होंने कहा—लवको मारनेके लिए। यह सुनकर कुश अपने आश्रमपर गया और धनुष-बाण लेकर लवको छुड़ानेके लिए रामकी यज्ञशालाके समीप जा पहुँचा और धनुषका भीषण टंकोर किया ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ कुशके धनुषकी टंकोर सुनकर लव कुछ देरके लिए शान्त खड़ा हो गया और कुशसे युद्ध करनेके लिए लक्ष्मणके सामने जा पहुँचे ॥ ११० ॥ लक्ष्मणको देखकर कुशने कहा—तुमने और रामने लव तथा सीताके साथ बड़ा छल किया है। उसीका बदला लेनेके लिए मैं आया हूँ। मुझको लवकी तरह साधारण बालक न समझना। तुम लोगोंकी वीरता स्त्री और छोटे-छोटे बच्चोंपर ही चल सकती है, यह मैं जानता हूँ। सीताके क्लेशरूपी धधकती अग्निमें तुम्हारा बल जल चुका है। अब अपना उपहास करानेके लिए मेरे सामने लड़नेको व्यर्थ आये हो। अच्छा, यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो वाल्मीकिकी सिखायी विद्या आज मैं तुम्हें और रामको दिखाता हूँ। ऐसा कहकर कुशने लक्ष्मणके साथ तुमुल युद्ध प्रारम्भ कर दिया ॥ १११–११४ ॥ लक्ष्मणने कुशपर जितने बाण चलाये, वे सब व्यर्थ गये। रामायणकी भविष्यवाणीसे कुशको ज्ञात हो चुका था कि अब लक्ष्मणके सिवाय और कोई वीर बाकी बचा ही नहीं है कि जिसके साथ युद्ध करके मारनेकी आवश्यकता हो। यह सोचकर क्षात्रधर्मके अनुसार उसने चाचाको मारनेमें कोई अपराध न समझकर उन्हें मारनेके लिए गारुडास्त्रका प्रयोग किया ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ उस गारुडास्त्रको अपने ऊपर आते देखकर लक्ष्मण सिटपिटा गये। उनकी सारी चातुरी भूल गयी और मूर्छित होकर रथसे पृथ्वीपर गिर पड़े। लक्ष्मणको रथसे गिरते देखकर राम दीक्षित होते हुए भी धनुष-बाण लेकर दौड़े और लक्ष्मणको बचानेके लिए उन्होंने कुशके छोड़े हुए गारुडास्त्रपर अपना ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया। ब्रह्मास्त्रके पहुँचनेपर गारुडास्त्र आकाशमें ही ठंढा हो

मुमोच बाणमाकाशे गरुडोपरि सादरम् । तेन तच्छांतिमगमद्ब्रह्मास्त्रेण तु गारुडम् ॥१२०॥
ततः कुशः संदधे स सर्पास्त्रं राघवोपरि । उवाच नाहं सीतावत्सुलभश्छलितं त्वया ॥१२१॥
जनान् दर्शयितुं स्वीयं पौरुषं जानकी वने । त्यक्ता त्वया वृथा पूर्वं जानेऽहं तव चेष्टितम् ॥१२२॥
वाल्मीकिशिक्षितां विद्यां ममाद्य त्वं विलोकय । नोचेत्त्वं याहि शरणं वाल्मीकिं जानकीमपि ॥१२३॥
तद्वाक्शरैर्भिन्नमर्मा रामः सार्पं विलोक्य तत् । औषधास्त्रं ससृजे घोरं तेन तच्छांतिमाप वै ॥१२४॥
सदधे सारमेयास्त्रं कुशस्तं राघवं पुनः । रामोऽपि मौशलास्त्रेण सारमेयं न्यवारयत् ॥१२५॥
ब्रह्मास्त्रं ससृजे घोरं कुशोऽपि राघवं जवात् । न्यवारयच्च तद्रामो मेघास्त्रेण स लीलया ॥१२६॥
वायव्यं ससृजे रामं जानकीजठरोद्भवः । न्यवारयच्च तद्रामः पर्वतास्त्रेण लीलया ॥१२७॥
वज्रास्त्रं ससृजे रामं सीतेयः सोऽतिसम्भ्रमात् । याम्यास्त्रेणाथ रामोऽपि वज्रास्त्रं तन्न्यवारयत् ॥१२८॥
ब्रह्मास्त्रं ससृजे रामं सीतेयः परमादरात् । हाहाकारस्तदा चासीद्राघवस्याध्वरांगणे ॥१२९॥
न्यवारयत्तद्ब्रह्मास्त्रं वैष्णवेन रघूत्तमः । ततो रामं कुशस्तीक्ष्णान्नाराचांश्छतशः पुनः ॥१३०॥
मुमोच राघवश्चापि मार्गणांश्छतशः कुशम् । एवं तत्तुमुलं युद्धं बभूव प्रहरं तयोः ॥१३१॥
तदाऽऽसीत्कौतुकं रामकुशयोर्युध्यतोर्महत् । रामचापविनिर्मुक्ता गता ये ये पतत्रिणः ॥१३२॥
ते ते कुशस्योत्तमांगोपरिष्टाद्धरणीतले । पतंति स्म तथा ये ये कुशचापविनिर्गताः ॥१३३॥
शरास्ते रामचंद्रस्य पतंति स्म पदांतिके । तद्दृष्ट्वा कौतुकं रामो विस्मयाविष्टमानसः ॥१३४॥
आज्ञापयत्स्वसचिवं गच्छ वाल्मीकिसन्निधिम् । पृच्छस्व तं नमस्कृत्य कौ ते शिष्यावितौ बली१३५॥
ततो ज्ञात्वाऽनयोर्घाते करिष्यामि मतिं क्षणात् । तथेति रामवचनात्स मन्त्री रथमास्थितः ॥१३६॥
क्रोशद्वयांतरेणैव सख्यं कृत्वा कुशं लवम् । दृष्ट्वा नत्वाऽथ वाल्मीकिं रामवाक्यं न्यवेदयत्॥१३७॥
मुनिः प्राह मन्त्रिणं त्वं वद रामाय मे वचः । सभामध्ये गायनस्य काले श्वो विदितं तव ॥१३८॥

गया ॥ ११७—१२० ॥ इसके अनन्तर कुशने रामपर सर्पास्त्र छोड़ा और कहा—मैं सीताकी तरह सहजमें नहीं छला जा सकूँगा । संसारको दिखानेके लिए तुमने सीतापर अपना पुरुषार्थ दिखाया था । अब यदि सती-साध्वी नारीके साथ तुमने जो विश्वासघात किया है, उसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ । यदि सामर्थ्य हो तो महर्षि वाल्मीकिकी दी हुई अस्त्रविद्याका चमत्कार देखो । यदि ऐसा न कर सको तो हाथ बाँधकर वाल्मीकि तथा सीताकी शरणमें चलकर आत्मरक्षाकी भीख माँगो ॥ १२१–१२३ ॥ कुशकी उन नोक-झोंक भरी बातोंको सुनकर रामने कुशके सर्पास्त्रपर विद्यास्त्रका प्रयोग किया । जिससे वह शान्त हो गया । फिर कुशने रामपर सारमेयास्त्र चलाया और रामने मौशलास्त्र चलाकर उसका निवारण किया । कुशने रामपर ब्रह्मास्त्र चलाया तो रामने मेघास्त्र चलाकर उसको शान्त किया । तब सीताके सुकुमार बेटे कुशने रामपर वायव्यास्त्र चलाया । तब रामने पर्वतास्त्र चलाकर उसका निवारण किया ॥ १२४–१२७ ॥ तब कुशने वज्रास्त्र चलाया और रामने याम्यास्त्र चलाकर उसको शान्त किया ॥ १२८ ॥ जब कुशने रामके ऊपर ब्रह्मास्त्र चलाया, उस समय यज्ञशालामें हाहाकार मच गया । किन्तु रामने अपने वैष्णवास्त्रसे उसको व्यर्थ कर दिया । इसके बाद कुशने रामके ऊपर और भी सैकड़ों बाण चलाये ॥ १२९ ॥ १३० ॥ रामने भी उनके प्रतीकारके रूपमें सैकड़ों बाण चलाये । इस प्रकार एक प्रहर तक राम और कुशमें तुमुल युद्ध होता रहा ॥ १३१ ॥ उस समय बाप-बेटेके युद्धमें यह बड़ा कौतुक था कि जो बाण रामके हाथोंसे छूटते, वे कुशके मस्तकपर गिरते थे तथा कुश द्वारा छूटे बाण रामके पैरोंपर गिरा करते थे । यह कौतुक देखकर विस्मित रामने अपने मंत्रीको बुलाया और उससे कहा कि वाल्मीकिके पास जाकर पूछो कि आपके ये महाबलवान् शिष्य कौन हैं ॥ १३२—१३५ ॥ यह जानकर मैं इनको मारनेका शीघ्र कोई उपाय करूँगा । रामके आज्ञानुसार मन्त्री रथपर सवार हुआ और दो कोस चलकर वाल्मीकिके पास जा पहुँचा । वाल्मीकिको देखकर मन्त्रीने प्रणाम किया और रामका सन्देश सुनाया ॥ १३६ ॥ १३७ ॥ मुनि वाल्मीकिने कहा—उनसे कह दो कि कल

भविष्यति समस्तं हि वृत्तं बालकयोः शुभम् । ततो मन्त्री मुनेर्वाक्यं राघवाय न्यवेदयत् ॥१३९॥
कुशं लवं समाहूय वाल्मीकिरपि तौ मुदा । समालिंग्य कथाभिस्तां निनाय रजनीं सुखम् ॥१४०॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये जन्मकाण्डे
कुशलवयोः पराक्रमवर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

(रामका सीताको पुनः स्वीकार करना)

श्रीरामदास उवाच

अथ प्रभाते रामेण समाहूतावुभौ शिशू । नत्वा मुनिं मातरश्च सभायां जग्मतुर्मुदा ॥ १ ॥
वाल्मीकेराज्ञया बालौ जटाकृष्णाजिनांबरौ । जन्मकांडं त्वेकमेव जगतुस्तौ पितुः पुरः ॥ २ ॥
जनैः श्रुत्वा स्वचरितं रामोऽभूदतिविस्मितः ॥ ३ ॥
आसन् जनाश्चापि सर्वे विस्मयाविष्टमानसाः । ज्ञात्वा सीताकुमारौ तौ सन्तोषं परमं ययुः ॥ ४ ॥
एतस्मिन्नन्तरे सर्वे लववाग्बाणपीडिताः । शत्रुघ्नाद्या ययुस्तत्र यानस्थाश्चास्त्रजीविताः ॥ ५ ॥
अंगदाद्याः पार्थिवाश्च मोहनास्त्रैकजीविताः । ययुः सवानराः सर्वे लक्ष्मणोऽपि ययावरुक् ॥ ६ ॥
सर्वे नत्वा रामचन्द्रं तस्थुस्तस्यांतिके मुदा । अथ संमंत्र्य रामोऽपि तौ विसृज्यादरेण हि ॥ ७ ॥
राक्षसेंद्रं लक्ष्मणं च शत्रुघ्नं मकरध्वजम् । खगराजं सुषेणं च जांबवन्तं वचोऽब्रवीत् ॥ ८ ॥
आनयध्वं मुनिवरं ससीतं देवसंमितम् । अद्यास्तु पर्षदां मध्ये प्रत्ययो वै सभांगणे ॥ ९ ॥
गंगाया दक्षिणे तीरे सभा कार्याऽऽयता शुभा । करोतु शपथं सीता ममाग्रे जाह्नवीतटे ॥१०॥
मुनीश्वराद्याः सर्वे तां जानन्तु गतकल्मषाम् । तथा ममापि वाल्मीके शुद्धिं जानंतु वेगतः ॥११॥

जब सभामें ये दोनों रामायण गाने पहुँचेंगे, उस समय सारा वृत्तान्त ज्ञात हो जायगा ॥ १३८ ॥ तदनुसार मंत्री लौट आया और वाल्मीकिने जो कुछ कहा था, सो रामको बतला दिया । उधर वाल्मीकिने लव और कुशको पास बुलाकर हृदयसे लगाया और अनेक प्रकारकी कहानियाँ कहते हुए रात बितायी ॥ १३९ ॥ १४० ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयकृत-'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते जन्मकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

श्रीरामदास बोले--दूसरे दिन सबेरे रामने उन दोनों बालकोंको बुलवाया और वे अपनी माता तथा मुनि वाल्मीकिको प्रणाम करके रामकी सभामें गये ॥ १ ॥ जटा एवं वल्कल वस्त्र धारण किये हुए उन बच्चोंने उस दिन वाल्मीकिके आज्ञानुसार केवल जन्मकाण्डका गान किया ॥ २ ॥ रामने जब अपना चरित्र सुना तो बड़े विस्मित हुए । सभामें बैठे हुए लोगोंको भी बड़ा आश्चर्य हुआ और जब यह जाना कि ये सीताके बेटे हैं तो बहुत ही प्रसन्न हुए ॥ ३ ॥ ४ ॥ उसी समय लवके बाणोंसे पीडित लक्ष्मण-शत्रुघ्न आदि भी वहाँ आ पहुँचे । उनके साथ अङ्गद-हनुमान् आदि जो लवके मोहनास्त्रसे मूर्छित हो गये थे, वे भी आये । वहाँपर सबोंने रामको प्रणाम किया और उनके समीप जाकर बैठ गये । तब रामने अपने मंत्रियोंसे सलाह करके लव कुशको विदा कर दिया ॥ ५--७ ॥ तदनन्तर विभीषण, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, मकरध्वज तथा अङ्गदको सम्बोधित करके राम बोले--तुम सब जाकर वाल्मीकिके साथ सीताको यहाँ ले आओ । आज इस सभामें यह निश्चय किया जायगा कि सीता-का क्या अपराध है । इसी पुनीत जाह्नवीके तटपर सीता शपथ खायगी । यहाँपर आये हुए समस्त ऋषिगण जिससे यह समझ जायँ कि सीता सर्वथा निष्कलंक तथा पापोंसे रहित है । साथ ही हमारी ओरसे वाल्मीकिकी भी परीक्षा होगी । इस प्रकार रामके आज्ञानुसार लक्ष्मणादि वाल्मीकिके पास गये और उन्होंने

इति तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणाद्या महीं गताः । ऊचुर्यथोक्तं रामेण वाल्मीकिं लक्ष्मणादिकाः ॥१२॥
रामस्य हृद्गतं सर्वं ज्ञात्वा वाल्मीकिरब्रवीत् । समर्चितान् सुमंत्राद्यान् लक्ष्मणाय समर्प्य च ॥१३॥
युष्माभिः कथनीयं यद्वाक्यं श्रीराघवं प्रति । श्वः करिष्यति वै सीता शपथं जनसंसदि ॥१४॥
योषितां परमो देवः पतिरेको न चापरः । पतिं विना गतिः काऽन्या नार्याश्चास्ति जगत्त्रये॥१५॥
लक्ष्मणाद्यास्ततः सर्वे राममागत्य ते पुनः । सुमंत्रादींश्चतुर्वीरान्राघवाय समर्प्य च ॥१६॥
वाल्मीकेर्वचनं हर्षाद्ऊचुस्तं रघुनायकम् । वाल्मीकिवचनं श्रुत्वा तुतोष राघवोऽपि च ॥१७॥
सुमंत्रं भरतं वायुपुत्रं वानरनायकः । समालिंग्य चतुर्भ्यः स पुनर्जातानमन्यत ॥१८॥
सीतया पालिताः सर्वे वयं लवजितास्त्विति । कथयामासुः श्रीरामं सुमंत्राद्याः सविस्तरम् ॥१९॥
द्वितीये दिवसे कृत्वा सभां श्रेष्ठां मनोरमाम् । सर्वांस्तस्यां समाहूय रामो वाक्यमथाब्रवीत् ॥२०॥
मुनयः पार्थिवाः सर्वे शृणुत स्वस्थमानसाः । सीतायाः शपथं लोका विजानंत्वशुभं शुभम् ॥२१॥
इत्युक्ता राघवेणाथ लोकाः सीतादिदृक्षवः । ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव सहस्रशः ॥२२॥
सवानराः समाजग्मुस्तद्दिव्यं द्रष्टुमुद्यताः । ततो मुनिवरस्तूर्णं ससीतः समुपागतः ॥२३॥
अग्रतस्तं मुनिं कृत्वा यांती किञ्चिदवाङ्मुखी । कृतांजलिर्मुदा सीता शनैर्यज्ञं विवेश तम् ॥२४॥
दृष्ट्वा लक्ष्मीमिवायांतीं श्रीविष्णोरनुयायिनीम् । वाल्मीकेः पृष्ठतः सीतां जयघोषं प्रचक्रिरे ॥२५॥
तदा मध्ये जनौघस्य प्रविश्य मुनिपुङ्गवः । सीतासहायो वाल्मीकिस्तदा राघवमब्रवीत् ॥२६॥
इयं दाशरथे सीता सुवृत्ता धर्मचारिणी । त्वया पापात्पुरा त्यक्ता ममाश्रमसमीपतः ॥२७॥
लोकापवादभीतेन यमुनादक्षिणे तटे । प्रत्ययं दास्यते साऽद्य तदनुज्ञातुमर्हसि ॥२८॥
इमौ तु सीतातनयौ कुशस्त्वत्तो लवो मया । लवैर्विनिर्मितः सीताभयात्प्रत्यग्रचेतसा ॥२९॥

जो कुछ कहा था, सो कह सुनाया ॥ ८–११ ॥ रामके मनकी बात जानकर वाल्मीकिने कहा—आज तुम लोग जाओ और रामसे कह दो कि कल सभामें जाकर सीता सब लोगोंके सामने शपथ खायगी ॥ १२–१४ ॥ स्त्रियोंके लिए पतिके सिवाय और कोई देवता नहीं होता। ऐसी अवस्थामें सीता और कर ही क्या सकती है। पतिके बिना स्त्रीके लिए लोकमें और कोई गति भी नहीं है ॥ १५ ॥ तब लक्ष्मण आदि वहाँसे लौट आये। रामने उनके मुखसे वाल्मीकिका सन्देश सुना तो परम प्रसन्न हुए। वे लोग वहाँसे लौटते समय सुमन्त्र आदि चारों वीरोंको, जिनको कि लवने बन्दी बना रक्खा था, अपने साथ छुड़ा लाये थे। राम उन सबको अपनी छातीसे लगाकर मिले और यह समझा कि इन लोगोंका पुनर्जन्म हुआ है ॥ १६–१८ ॥ उन सबोंने अपना हाल बतलाते हुए कहा कि यद्यपि लवने हम लोगोंको कैद कर लिया था, किन्तु सीताने पूर्णरूपसे हमारी रक्षा की ॥ १९ ॥ दूसरे दिन एक विशाल सभा आयोजित की गयी। उसमें सब लोगोंको सम्बोधित करके रामने कहा—हे देशविदेशसे आये हुए ऋषियों ! आज इस सभामें आप लोगोंके समक्ष सीता शपथ खायगी। इससे आप लोगोंको उसके सुकृत तथा दुष्कृतका पता लग जायगा। इस प्रकार रामके वचन सुने तो सब लोग सीताको देखनेके लिए उतावले हो उठे। नगरमें भी यह समाचार पहुँच गया। अतएव इस दिव्य शपथको देखनेकी लालसासे कितने ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वहाँ आ पहुँचे ॥ २०–२२ ॥ थोड़ी देर बाद सीताके साथ वाल्मीकि भी सभामें पधारे। आगे-आगे वाल्मीकि थे और उनके पीछे नीचा सिर किये सीता मन्दगतिसे सभामें आयीं। उस समय सीता और वाल्मीकिको देखकर ऐसा लगता था कि मानों विष्णुके पीछे-पीछे लक्ष्मी चली आ रही हैं। सीताको देखते ही लोगोंने जयजयकार किया और वाल्मीकिजी सभाके बीचमें पहुँचकर रामसे कहने लगे—॥ २३–२६ ॥ हे राम ! कुछ दिन हुए, जब आपने लोकापवादके भयसे सीताको मेरे आश्रमके समीप छोड़वा दिया था। आज वह ही सीता आपके सामने शपथ खायगी, आप इसके लिए आज्ञा दें। सीताके इन दोनों पुत्रोंमें कुश आपका तथा लव (जलकी बूँदोंसे) बनाया हुआ मेरा बेटा है। उसे मैंने सहसा सीताके डरसे बनाया था। ये दोनों बेटे

सुताविमौ तु दुर्धर्षौ तथ्यमेतद्ब्रवीमि ते । प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो रघुकुलोद्वह ॥३०॥
अनृतं न स्मराम्युक्तं यथेमौ तव पुत्रकौ । बहून्वर्षगणान् सम्यक् तपश्चर्या मया कृता ॥३१॥
नोपश्नीयां फलं तस्या दुष्टेयं यदि मैथिली । इत्युक्त्वा राघवस्यांके दक्षिणे स्थाप्य वै कुशम् ॥३२॥
लवं विन्यस्य वामांके तस्थौ तस्याग्रतो मुनिः । रामोऽपि तौ समालिंग्य गूर्ध्न्यवघ्राय सादरम् ॥३३॥
लवस्य मस्तके हस्तं संस्थाप्य जगदीश्वरः । अतिह्रस्वतरं बालं पूर्ववत्सोऽकरोच्च तम् ॥३४॥
ततो रामोऽपि तां सीतां दृष्ट्वा बाहुद्वयान्विताम् । अज्ञात इव संप्राह लक्ष्मणं पुरतः स्थितम् ॥३५॥
त्वया भुजः समानीतः सीताया मां प्रदर्शितुम् । पुरा तमानयस्वाद्य चेदस्ति रक्षितस्त्वया ॥३६॥
तथेत्युक्त्वा लक्ष्मणोऽपि पेटिकानिहितं भुजम् । सीतायाः पुरतो रामं दर्शयामास सादरम् ॥३७॥
सीताभुजोपमं दृष्ट्वा भुजं मांसादिभिर्युतम् । पञ्चवर्षान्तरे काले ह्यासन् सर्वेऽतिविस्मिताः ॥३८॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र पश्यत्सु सकलेष्वपि । भुजः स गुप्ततां प्राप्तो विश्वकर्मोद्भवः क्षणात् ॥३९॥
तद्दृष्ट्वा कौतुकं लोका ह्यभूवन्नतिविस्मिताः । रामोऽपि विस्मितः प्राह वाल्मीकिं प्रणिपत्य च ॥४०॥
एवमेव महाप्राज्ञ यदुक्तं मां त्वयाऽधुना । प्रत्ययो जनितो मह्यं तव वाक्यैरकिल्बिषैः ॥४१॥
लंकायामपि दृष्टो मे वैदेह्याः प्रत्ययो महान् । देवानां पुरतस्तेन मन्दिरं संप्रवेशिता ॥४२॥
सेयं लोकभयाद्गुह्यरूपापाऽपि सती पुरा । सीता मया परित्यक्ता तद्भवान् क्षन्तुमर्हति ॥४३॥
मत्तो जातोऽस्ति जानामि कुशोऽयं च लवस्त्वया । लवैर्भ्रांत्या कृतो वेद्मि सीताशापभयान्मुने ॥४४॥
तथापि लोकान्सकलान्द्रष्टुं सीताऽत्र प्रत्ययन् । करोतु शपथं चापि सभायां तव सन्निधौ ॥४५॥
शुद्धायां जगतीमध्ये सीतामंगीकरोम्यहम् । तदा तच्छपथं द्रष्टुमासंल्लोकाः समुत्सुकाः ॥४६॥
सभया जानकी चाथ तदा कौशेयवासिनी । उदङ्मुखी ह्यधोदृष्टिः प्रांजलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥४७॥

असाधारण वीर है । कोई भी योद्धा इसके सामने नहीं टिक सका । विधाताका मैं दसवाँ पुत्र हूँ । आज तक मैं कभी झूठ नहीं बोला । अनेक वर्षोंतक मैंने घोर तपस्या की है । यदि सीता किसी तरह भी पापाचारिणी होती तो मैं इसके हाथोंका जलतक न ग्रहण करता । इतना कहकर वाल्मीकिने कुशको रामके दाहिनी बगल तथा लवको बायीं ओर बिठला दिया और स्वयं उसके सामने एक ऊँचे आसनपर बैठे । रामने बड़े स्नेहसे उन बच्चोंका आलिंगन किया, माथा सूँघा और लवके मस्तकपर अपना दाहिना हाथ रखकर कुशके समान ही अवस्थाका उसको भी बना दिया ॥ २७-३४ ॥ इसके अनन्तर रामने सीताकी ओर देखा तो सीताकी दोनों भुजायें ज्योंकी त्यों ठीक देखीं । उन्होंने अज्ञातभावसे लक्ष्मणको आज्ञा दी कि उस समय जो सीताकी भुजा काटकर जङ्गलसे तुम दिखाने लाये थे, यदि वह सुरक्षित रीतिसे रक्खी हो तो यहाँ ले आओ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ लक्ष्मणने "बहुत अच्छा" कहकर पेटीमें रक्खी भुजा लाकर रामके सामने रख दी ॥ ३७ ॥ इतने दिन बीतनेपर भी ठीक सीताकी भुजाओंके समान लटकते मांसके लोथड़े तथा रुधिरसंयुत भुजाओंको देखकर सभामें जितने लोग बैठे थे, वे बड़े विस्मित हुए ॥ ३८ ॥ इसी बीच लोगोंके देखते ही देखते वह विश्वकर्माकी बनायी भुजा गायब हो गयी । यह कौतुक देखकर लोगोंको और भी आश्चर्य हुआ । तब रामने विस्मित होकर वाल्मीकिसे कहा—हे महाप्राज्ञ ! मुझे तो आपकी बातोंसे ही विश्वास हो गया था कि सीता परम पवित्र है ॥ ३९-४१ ॥ लङ्कामें भी मैंने सीताकी शपथ देखी थी । उस समय देवताओंके समक्ष शपथ लेनेपर ही मैंने इसे अङ्गीकार किया था ॥ ४२ ॥ तथापि लोकापवादके भयसे पवित्र समझकर भी मैंने सीताका परित्याग किया । आप मेरे इस अपराधको क्षमा करें ॥ ४३ ॥ यह भी मैं जानता हूँ कि कुश मेरा पुत्र है और लवको आपने सीताके शापभयसे बनाया था ॥ ४४ ॥ यह सब होते हुए भी इन संसारवालोंको विश्वास दिलानेके लिए सीता इस सभामें शपथ ले ॥ ४५ ॥ यदि इस जनसमाजमें और इस संसारमें सीता शुद्ध सिद्ध हो गयी तो मैं इसको फिरसे अङ्गीकार कर लूँगा । उस समय सीताकी शपथको देखनेके लिए वहाँ बैठे हुए सब लोग उत्सुक हो रहे थे ॥ ४६ ॥ तदनन्तर सभामें रेशमी कपड़े पहने सीता खड़ी हो गयीं और हाथ

रामादन्यमहं चेद्धि मनसाऽपि न चिन्तये । तर्हि मे धरणी देवि विवरं दातुमर्हसि ॥४८॥
एवं शपंत्याः सीतायाः प्रादुरासीन्महाद्भुतम् । भूतलाद्दिव्यमत्यर्थं सिंहासनमनुत्तमम् ॥४९॥
भुवो विवरमार्गेण समानीतं मनोरमम् । नागेन्द्रैर्ध्रियमाणं तद्दिव्यदेहं रविप्रभम् ॥५०॥
भूदेवी जानकीं दोर्भ्यां धृत्वा दुहितरं निजाम् । स्वागतासीति तामुक्त्वाऽऽसने सा संन्यवेशयत् ॥५१॥
वस्त्रालङ्कारस्रग्गंधसुगंधैः पूज्य मैथिलीम् । समालिंग्याथ भूदेवी वीजयामास सादरम् ॥५२॥
तदा शनैः शनैर्भूम्यां गुप्तं सिंहासनं त्वभूत् । सिंहासनस्थां वैदेहीं प्रविशन्तीं रसातलम् ॥५३॥
दृष्ट्वाऽऽकाशस्थिता देवस्त्रियः सर्वास्तु सम्भ्रमात्। निरन्तराभिर्वैदेहीं ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥५४॥
साधुवादश्च सुमहान्बभूव सुरकीर्तितः । अन्तरिक्षे च भूमौ च सर्वं स्थावरजङ्गमम् ॥५५॥
तदा बभूव चकितं सीताशपथदर्शनात् । ऊचुस्ते वसुधा वाचो वानराश्च नरादिकाः ॥५६॥
केचिच्चिन्तापराः केचिदासन्ध्यानपरायणाः । केचिद्रामं निरीक्षन्तः केचित्सीतामचेतसः ॥५७॥
मुहूर्तमात्रं तत्सर्वं तूष्णींभूतमचेतनम् । प्रविशन्तीं भुवं सीतां दृष्ट्वा संमोहितं जगत् ॥५८॥
एतस्मिन्नन्तरे रामः प्रविशन्तीं हि भूतले । विदेहजां तदा स्पृष्ट्वा वामहस्तेन संभ्रमात् ॥५९॥
यां दधार करेणादौ धृत्वा हस्तेन वै भुवम् । ततस्तां प्रार्थयामास भुवं स रघुनन्दनः ॥६०॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

देवि त्वं सर्वलोकानां निवासस्थानमुत्तमम् । असि लोकैकमाता त्वं महानीरोर्ध्वतः सदा ॥६१॥
वर्तसे पुण्यरूपा त्वं वसुदा सकलान् जनान् । स्वजठरादौषधीस्त्वं करोषि विश्वतृप्तिदाः ॥६२॥
त्वं दुर्गा त्वं स्वरा लक्ष्मीर्मम विष्णोः प्रिया शुभा। त्वमेवाद्यात्र मे शक्तिर्निर्मिताऽसि मयैव हि ॥६३॥
निजोदराद्ददासि त्वं धातून्प्रीत्या जनान्सदा । श्रमायुक्ता त्वमेवासि सूक्तासूक्तादिकर्मसु ॥६४॥

जोड़कर नीची निगाह तथा ऊपर मुँह करके बोलीं-॥ ४७ ॥ हे पृथ्वी माता ! यदि रामके सिवाय अन्य किसीको मैंने अपने हृदयसे भी न सोचा हो तो आप मुझे ऐसी जगह दीजिए कि जिससे मैं आपमें समा जाऊँ ॥ ४८ ॥ इस प्रकार सीताके प्रार्थना करनेपर तुरन्त एक दिव्य सिंहासन पृथ्वीके भीतरसे निकला । उसको बड़े-बड़े नाग अपने सिरपर उठाये हुए थे । सूर्यके समान देदीप्यमान उन नागोंका प्रकाश था ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इतनेमें साक्षात् पृथ्वी देवीने अपनी दोनों भुजाओंसे सीताका स्वागत किया । फिर छातीसे लगा तथा गोदमें लेकर उन्हें उस सिंहासनपर बिठाल दिया । इसके अनन्तर वस्त्र-अलंकार-माला-फल आदिसे सीताकी पूजा की और छातीसे लगाकर पंखा झलने लगीं ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ इसके बाद धीरे-धीरे वह सिंहासन पृथ्वीके भीतर घुसने लगा । सिंहासनपर बैठी हुई सीताको पातालमें जाती देखकर आकाशमें स्थित सारी देवांगनाएँ उनपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगीं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ आकाश और पृथ्वीमें देवताओं और मनुष्योंने साधुवाद किया । सीताकी उस शपथको देखकर समस्त स्थावर-जंगम प्राणी चकित हो गये और अपनी सुधि-बुधि भूलकर परस्पर बातें करने लगे ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ उनमें कुछ लोग चिन्तित थे और कुछ ध्यानमग्न । कुछ लोग रामको देख रहे थे । कुछ लोग अपनी सुधि-बुधि भूलकर सीताकी ओर निहार रहे थे ॥ ५७ ॥ मुहूर्तभरके लिए वहाँ सारा समाज सन्न हो गया । सीताको पृथ्वीके भीतर समाती देखकर समस्त संसार मुग्ध हो गया ॥ ५८ ॥ राम सीताको पृथ्वीमें धँसती देखकर अपने सिंहासनसे कूद पड़े और पृथ्वीके पास जा पहुँचे । वे उनका हाथ अपने हाथसे पकड़कर इस प्रकार पृथ्वीसे प्रार्थना करने लगे ॥ ५९ ॥ ६० ॥ श्रीरामचन्द्र बोले—हे देवि ! आप सारे संसारकी निवासभूमि हैं । समस्त जगत्की माता होकर महानीरके ऊपर आप स्थित हैं ॥ ६१ ॥ आप पुण्यरूपा हैं । समस्त जनोंको हर प्रकारकी सम्पत्तियां देनेकी सामर्थ्य रखती हैं । आप अपने उदरसे अनेक प्रकारकी ओषधियाँ उत्पन्न करके सबकी रक्षा करती हैं । आप दुर्गा, स्वरा और विष्णुकी प्रिया लक्ष्मी हैं । आप आदिशक्ति हैं और मैंने ही आपको बनाया है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ आप अपने उदरसे भाँति-भाँतिके धातु निकालकर

जानकी तव कन्येयं श्वश्रूस्त्वं मेऽधुना त्विह । कन्यादानं कुरु मुदा त्वया पूर्वं कृतं न हि ॥६५॥
प्रसीद देवि नोचेन्मे त्वयि क्रोधो भविष्यति ।
श्रीरामदास उवाच
इति संप्रार्थिता चापि राघवेण महात्मना ॥६६॥
नारी काठिन्यभावात्सा नाशृणोद्राघवेरितम् । शनैः शनैरधः सीतासहिता सा जगाम ह ॥६७॥
तां गच्छन्तीं पुनर्दृष्ट्वा भुवं रामो धृतामपि । बभूव क्रोधताम्राक्षस्तदा लक्ष्मणमब्रवीत् ॥६८॥
चापमानय सौमित्रे शिक्षयेऽहं भुवं त्विमाम् । मत्तुरोपमबाणेन वसुधेयं विदेहजाम् ॥६९॥
मामद्य दास्यति क्षिप्रमस्य घातं न रोचये । ततोऽसौ लक्ष्मणानीतं करे कोदण्डमुत्तमम् ॥७०॥
धृत्वा ज्यारोपणं कृत्वा शरसंधानमातनोत् । तदा ववौ महान्वायुश्चुक्षुभे लवणार्णवः ॥७१॥
तारा निपेतुर्धरणीं बभूवुः सरजा दिशः । चकम्पे धरणी सापि त्राहीति वदती मुहुः ॥७२॥
कराभ्यां जानकीं धृत्वा रामस्यांके न्यवेशयत् । श्रीरामपदयोः पृथ्वी शिरसा नमनं व्यधात् ॥७३॥
तदा खे देववाद्यानि नेदुः कुसुमवृष्टिभिः । ववर्षुर्जानकीं राम देवसंघा मुदान्विताः ॥७४॥
ततो रामोऽपि तां दृष्ट्वा पदयोर्नमतीं भुवम् । स्वक्रोधं शान्तमकरोत्कराभ्यां चापमार्गणौ ॥७५॥
विसृज्योत्थापयामास स्वकरेणावनिं प्रभुः । ततः सा राघवं नत्वा प्रसाद्य च पुनः पुनः ॥७६॥
दत्त्वा विदेहकन्यायै तं सिंहासनमुत्तमम् । सीतां स्तुत्वाऽथ तां पृष्ट्वा तथा संपूजिताऽपि च ॥७७॥
आमन्त्र्य राघवं पृथ्वी क्षणादंतर्हिताऽभवत् । तदा सीतां जनाः सर्वे पुनर्जातां तु मेनिरे ॥७८॥
जयशब्दैः प्रणमुस्तां चक्रुः पूजां पृथक् पृथक् । ददौ दानान्यनेकानि तदा रामो मुदान्वितः ॥७९॥
नववाद्यनिनादाश्च सम्बभूवुः समन्ततः । ननृतुर्वारनार्यश्च तुष्टुवुर्वन्दिमागधाः ॥८०॥

संसारी लोगोंको प्रीतिपूर्वक प्रदान करती हैं। सूक्त और असूक्त जितने भी कर्म हैं, उनमें आप क्षमारूपा हैं ॥ ६४ ॥ यह सीता आपकी कन्या है । इस नाते आप मेरी सास हैं । आपने विवाहके समय कन्यादान नहीं किया था, सो अब कर दीजिए ॥ ६५ ॥ हे देवि ! आप मेरेपर प्रसन्न हो जायँ । नहीं तो मैं आपके ऊपर क्रुद्ध हो जाऊँगा । श्रीरामदासने कहा—रामके इस तरह प्रार्थना करनेपर भी पृथ्वीने उनकी एक न सुनी । क्योंकि स्वभावसे ही नारियोंका हृदय कठिन हुआ करता है । सीता धीरे-धीरे पृथ्वीतलमें समाती जा रही थीं ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ विनय करनेपर भी जब रामने देखा कि पृथ्वी मेरी बातोंपर कुछ ध्यान नहीं दे रही है तो मारे क्रोधके उनकी आँखें लाल हो गयीं और लक्ष्मणसे बोले—॥ ६८ ॥ लक्ष्मण ! मेरा धनुष तो उठा लाओ, मैं पृथ्वीको उसके दुराग्रहका दण्ड दे दूँ । मेरे छुरे सदृश तीक्ष्ण बाणसे डरकर यह सीताको लौटा देगी । इसे मैं मारना नहीं चाहता, चाहता हूँ केवल सीताको इसके हाथोंसे लौटना । तदनुसार तुरन्त लक्ष्मण धनुष उठा लाये । रामने उसे लेकर रोदा ठीक किया और बाण चढ़ाया । उस समय जोरोंसे आँधी चलने लगी, समुद्रमें प्रलयकालकी लहरें उठने लगीं, तारे टूट-टूटकर गिरने लगे और चारों दिशाएँ धूलसे आच्छादित हो गयीं । ऐसी अवस्थामें "त्राहि-त्राहि" करती हुई पृथ्वी काँपने लगी और उसने अपने हाथों सीताको उठाकर रामकी गोदमें बिठा दिया । इसके बाद पृथ्वीने सिर झुकाकर रामके चरणोंकी वन्दना की ॥ ६९–७३ ॥ उस समय स्वर्गमें देवताओंने देववाद्य बजाये और राम तथा सीतापर फूलोंकी वर्षा की ॥ ७४ ॥ इसके बाद जब रामने देखा कि पृथ्वी मेरे चरणमें झुकी हुई विनती कर रही है तो अपना कोप शान्त कर लिया तथा धनुष-बाणका परित्याग करके अपने दोनों हाथोंसे पृथ्वीको उठाया । इसके अनन्तर पृथ्वीने फिर भगवान्‌को बार-बार नमस्कार किया, प्रार्थना की और सीता तथा वह सुवर्णमय सिंहासन रामको समर्पण कर दिया । फिर सीताकी स्तुति की । साताने भी पृथ्वीकी विधिवत् पूजा की । तत्पश्चात् रामकी आज्ञा लेकर क्षण भरके भीतर ही पृथ्वी अन्तर्धान हो गयी । उस समय सभामें बैठे हुए लोगोंने सीताका पुनर्जन्म समझा ॥ ७५–७८ ॥ सब लोगोंने सीताकी विधिवत् पूजा की और जय-जयकार करके प्रणाम किया । तब रामने अनेक प्रकारके दान दिये ॥ ७९ ॥ भाँति-भाँतिके नवीन बाजे बजे,

सीतायाः शपथो यत्र जाह्नव्या दक्षिणे तटे । सीताकुण्डमिति ख्यातं तत्र तीर्थं बभूव ह ॥८१॥
पातालस्थं जलं पुण्यं सन्तप्तमनलोपमम् । वर्ततेऽद्यापि तत्तीर्थं सीतोष्णश्वासकारणात् ॥८२॥
तदत्र जानकीकुण्डं स्मरणाद्भयनाशनम् । पत्युरायुष्यवृद्ध्यर्थं स्त्रीभिः सेव्यं सदा भुवि ॥८३॥
ततः सीतायुतो रामः पुत्राभ्यां सहितो मुदा । वस्त्रालङ्कारयुक्ताभ्यां स्नानं ह्यवभृथाह्वयम् ॥८४॥
चकार कथितोत्साहैः पूर्ववच्च सविस्तरम् । अथ यज्ञशतं पूर्णमेवं कृत्वा रघूत्तमः ॥८५॥
जातकर्मादिसंस्कारान् लवस्य विधिनाऽकरोत् । चकार नानादानानि देवान् संपूज्य भक्तितः ॥८६॥
ततो मुनीश्वरान् पूज्य पूजयामास पार्थिवान् । जनकं च सुमेधां च पूजयामास राघवः ॥८७॥
विससर्ज ऋषीन्सर्वान् ऋत्विजो ये समागताः । द्विजाद्यास्तान् धनाद्यैश्च तोषयामासुरादरात् ॥८८॥
ततो विसृज्य विप्रांश्च पार्थिवैः सह राघवः । कुमाराभ्यां सीतया च बन्धुभिश्चागमत्पुरीम् ॥८९॥
नीराजितः पुरस्त्रीभिर्वारणस्थो रघूत्तमः । सीतया तनयाभ्यां च ययौ निजगृहं प्रति ॥९०॥
तदा महोत्सवश्चासीदयोध्यायां समन्ततः । चिरकालेन वैदेह्या दर्शनं च जनैः कृतम् ॥९१॥
ततो नृपादिकान् पूज्य विससर्ज रघूद्वहः । जनकं च सुमेधां च ददावाज्ञां निजां पुरीम् ॥९२॥
ततः सीतायुतो रामः पुत्राभ्यां बन्धुभिः सह । पूर्ववत्स सुखं रेमे चिरकालं रघूद्वहः ॥९३॥
रामेण सीतया सार्धं सहस्राणि त्रयोदश । वर्षाण्यत्र कृतं राज्यं कस्मिन्कल्पे द्विजोत्तम ॥९४॥
एकादश सहस्राणि वत्सराणि महान्ति च । तथैकादश वर्षाणि मासा एकादशैव तु ॥९५॥
दिनान्येकादशैवात्र रामेण सीतया सह । अयोध्यायां कृतं राज्यं कस्मिन्कल्पे द्विजोत्तम ॥९६॥
एकादश सहस्राणि चैकादश दिनानि च । सप्तद्वीपवतीपालो रामोऽभूत् कल्पभेदतः ॥९७॥
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च । रामेण सीतया राज्यं कस्मिन्कल्पे कृतं द्विज ॥९८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये
जन्मकांडे जानकीग्रहणं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

वेश्याओंने नृत्य किया और बन्दीजनों तथा मागधोंने विविध प्रकारसे स्तुति की ॥ ८० ॥ जाह्नवीके दक्षिणी तटपर जहाँ सीताने शपथ ली थी, वह सीताकुण्डके नामसे एक विख्यात तीर्थ बन गया ॥ ८१ ॥ सीताके उष्ण उच्छ्वास निकलनेके कारण आज भी वहां अग्निके सदृश तपता हुआ पवित्र जल निकलता रहता है ॥८२॥ इस जानकीकुण्डके स्मरणमात्रसे सब भय नष्ट हो जाते हैं। अपने पतिकी आयुवृद्धिके लिए स्त्रियोंको इसमें स्नान करना चाहिये ॥ ८३ ॥ इसके बाद सीता तथा अपने पुत्रोंके साथ रामने यज्ञान्तका अवभृथ स्नान किया। यह अवभृथ स्नान भी पूर्वकथित स्नानके सदृश ही उत्साहके साथ हुआ। इस प्रकार रामने सौ यज्ञ पूर्ण करके विधिपूर्वक लवका जातकर्मादि संस्कार किया। अनेक प्रकारके दान दिये और देवताओंका विधिवत् पूजन किया। इसके अनन्तर यज्ञमें आये हुए समस्त ऋषियों तथा राजाओंकी पूजा की और जनक तथा सुमेधाका भी पूजन किया। इसके बाद ऋषियों तथा ऋत्विजोंको धनादिसे सन्तुष्ट करके विदा किया ॥ ८४-८८ ॥ साथ ही ब्राह्मणों तथा राजाओंको भी विदा किया और सीता, पुत्रों तथा बन्धु-बान्धवोंके साथ राम अपनी अयोध्यापुरीको गये ॥८९॥ अयोध्यामें ज्यों ही राम हाथीपर सवार होकर पहुँचे, त्यों ही नगरकी स्त्रियोंने उनकी आरती उतारी और सब लोग अपने महलोंमें गये। उस समय अयोध्यामें चारों ओर महान् उत्सव हो रहा था। बहुत दिनोंसे वियुक्त सीताका लोगोंने दर्शन पाया ॥ ९० ॥ ९१ ॥ कई दिनों बाद रामने जनक, सुमेधा तथा अन्य राजाओंको अपने-अपने नगर जानेकी आज्ञा दी ॥ ९२ ॥ इसके अनन्तर फिर पहलेके समान रामचन्द्रजी सीता तथा पुत्रोंके साथ आनन्दपूर्वक अयोध्यामें रहने लगे ॥ ९३ ॥ किसी कल्पमें रामने सीताके साथ तेरह हजार वर्ष तक राज्य किया, किसी कल्पमें ग्यारह हजार वर्ष तथा किसी कल्पमें ग्यारह हजार वर्ष ग्यारह मास और ग्यारह दिनतक राज्य किया ॥ ९४-९७ ॥ किसी कल्पमें रामने दस हजार दस सौ वर्ष तक राज्य किया है ॥ ९८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेय-कृत 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते जन्मकाण्डे अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः

(रामादिके बालकोंका उपनयन-संस्कार)

श्रीरामदास उवाच

अथोर्मिला मांडवी च श्रुतकीर्तिः सहैव ताः । बभूवुरंतरात्किंचिदंतर्वत्न्यो महोदराः ॥ १ ॥
तासां चकार सीता सा कौतुकानि च सादरम् । तासां पुंसवनादीनि विविधानि रघूत्तमः ॥ २ ॥
आहूय पत्न्या जनकं कारयामास बन्धुभिः । दोहदान् पूरयामासुस्तासां पौरसुहृत्स्त्रियः ॥ ३ ॥
तासां सर्वान् समुत्साहानेवं कृत्वा रघूत्तमः । वस्त्रालंकारभूषाभिस्तोषयामास ताः सुखम् ॥ ४ ॥
अथोर्मिला सा तनयं सुषुवे परमोदयम् । ततः सा माण्डवी पुत्रं सुषुवे परमे दिने ॥ ५ ॥
ततः सा श्रुतकीर्तिश्च सुषुवे यमलौ सुतौ । कालांतरेणोर्मिलाया द्वितीयस्तनयोऽभवत् ॥ ६ ॥
तथाऽपरस्तु मांडव्याः पुत्रः कालांतरादभूत् । जातकर्मादिसंस्कारान् कृत्वा रामः पृथक् पृथक् ॥ ७ ॥
चकार गुरुणा विप्रैर्महोत्साहैर्यथाविधि । लक्ष्मणस्यांगदो ज्येष्ठश्चित्रकेतुः कनिष्ठकः ॥ ८ ॥
मांडव्याः पुष्करो ज्येष्ठः कनिष्ठस्तक्षबालकः । श्रुतकीर्त्याः सुबाहुश्च यूपकेतुः परः स्मृतः ॥ ९ ॥
एवं कृतानि नामानि गुरुणा विधिपूर्वकम् । एतेऽन्तरेण संजाताः काले काले क्रमेण च ॥१०॥
तेऽत्रैकत्र मया प्रोक्ताः संक्षेपेणांग स्वपुत्राः । सर्वेषां जन्मकालेषु सुराः सर्वे मुदान्विताः ॥११॥
वादयामासुर्वाद्यानि ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः । मातृभिः पितृभिर्युक्तान् बालकान् सूर्यसन्निभान् ॥१२॥
राजद्वारि महानासीदुत्सवश्च नृपाज्ञया । निनेदुर्नववाद्यानि ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥१३॥
वादयन्ति स्म तूर्याणि तुष्टुवुर्वन्दिमागधाः । नगरीं शोभयामासुः पताकाध्वजतोरणैः ॥१४॥
सुहृदः पार्थिवाः सर्वे रामादीनां च पूजनम् । वस्त्रैराभरणाद्यैश्च चक्रिरे ते पृथक् पृथक् ॥१५॥
ददुर्दानानि विप्रेभ्यो रामाद्या बंधवश्च ते । ब्राह्मणान् भोजयामासुः श्राद्धानि चक्रुरादरात् ॥१६॥

श्रीरामदास बोले—कुछ काल बाद उर्मिला, माण्डवी तथा श्रुतकीर्तिने साथ साथ गर्भ धारण किया ॥ १ ॥ सीताने इस समयपर बड़ी खुशियाली की और रामने विधिपूर्वक पुंसवनादि संस्कार किये ॥ २ ॥ इस संस्कारके समय जनक तथा सुमेधाको भी रामने बुलवा लिया और उन्हींके द्वारा यह कार्य सम्पन्न हुआ। पुरवासिनी स्त्रियोंने उर्मिलादिकी जो-जो इच्छा हुई, सो पूर्ण किया ॥ ३ ॥ रामने इस प्रकार उत्सव करके अनेक तरहके वस्त्र और आभूषण दिये ॥ ४ ॥ इसके बाद समय पूरा होनेपर उर्मिलाने एक परम तेजस्वी पुत्र उत्पन्न किया और दूसरे दिन माण्डवीके भी एक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर श्रुतकीर्तिके एक साथ दो पुत्र उत्पन्न हुए। कुछ दिनों बाद उर्मिलाने एक दूसरा पुत्र और उत्पन्न किया ॥ ६ ॥ इसी प्रकार कालांतरमें माण्डवीके भी एक और पुत्र हुआ। रामने अपने कुलगुरु वसिष्ठके साथ उन पुत्रोंका जातककर्मादि संस्कार किया। लक्ष्मणके ज्येष्ठ पुत्रका नाम अङ्गद और दूसरे बेटेका नाम चित्रकेतु पड़ा ॥ ७ ॥ ८ ॥ माण्डवीके ज्येष्ठ पुत्रका नाम पुष्कर तथा कनिष्ठका तक्ष नाम पड़ा। इसी तरह श्रुतकीर्तिके ज्येष्ठ पुत्रका नाम सुबाहु तथा कनिष्ठ बेटेका नाम यूपकेतु पड़ा ॥ ९ ॥ १० ॥ गुरु वसिष्ठने विधिपूर्वक सबका नामकरणादि संस्कार किया। हे शिष्य ! यहाँपर मैंने तुम्हें संक्षेपमें एक ही एक पुत्रका नाम बतलाया है। इनके सिवाय भी बहुतसे पुत्र हुए। प्रत्येक पुत्रके जन्मसमयपर देवतागण हर्षपूर्वक अपने बाजे बजाते और उनपर तथा उनके माता-पितापर पुष्पोंकी वृष्टि किया करते थे। रामचन्द्रजीके आज्ञानुसार राजद्वारपर बड़े-बड़े उत्सव रचाये जाते, नये-नये बाजे बजते और वेश्याएँ नृत्य करती थीं। बन्दीजन तथा सूत-मागध आ-आकर विविध प्रकारकी स्तुतियाँ किया करते थे। पताका-ध्वजा तथा तोरणादिकोंसे अयोध्या नगरीका शृङ्गार किया जाता था। रामके मित्र समस्त राजे अनेक प्रकारके वस्त्राभूषणोंको देखकर उनका पूजन करते थे ॥ ११–१५ ॥ राम-लक्ष्मण आदि चारों भ्राता भी ब्राह्मणोंको दान देते, उन्हें भोजन कराते एवं नान्दीश्राद्धादि कृत्योंको

एवमष्टौ कुमारास्ते रामादीनां मनोरमाः । ववृधुश्चंद्रवदना मातृभिर्लालिताः सुखम् ॥१७॥
शृंखलाबद्धरुक्मादिनिर्मितेषु वरेषु च । प्रखेषु हि कुमारास्ते विरेजू रुक्मभूषिताः ॥१८॥
भाले स्वर्णमयाश्वत्थपर्णान्यतिमहान्ति च । मुक्ताफलाग्रलंबीनि शोभयंति स्म बालकान् ॥१९॥
कंठे रत्नमणिव्रातमध्यद्वीपिनखांचिताः । कर्णयोः स्वर्णसंपन्नरत्नार्जुनसुतालकाः ॥२०॥
सिंजानमणिमंजीरकटिसूत्रांगदैर्युताः । स्मितवक्त्रालपदशना इंद्रनीलमणिप्रभाः ॥२१॥
अंगणे रिंगमाणाश्च संस्कारैः संस्कृताः शुभाः । ते पितॄन् रञ्जयामासुर्मातॄश्चापि विशेषतः ॥२२॥
नानाशिशुक्रीडनकैश्चेष्टितैर्मुखचुंबनैः । बालकृत्रिमयुद्धश्च गमनैर्मधुरेरितैः ॥२३॥
ततस्ते बालकाः सर्वे वस्त्रालंकारभूषिताः । सभायां राघवं नत्वा तस्थुः सिंहासनोपरि ॥२४॥
एकदा राघवः प्राह वसिष्ठं सदसि स्थितम् । अवलोकय बालानां त्वं चिह्नानि यथाक्रमम् ॥२५॥
तच्छ्रुत्वा रामवचनं वसिष्ठो भूसुरैः सह । आदौ कुशं समाहूय दृष्ट्वा रामं वचोऽब्रवीत् ॥२६॥

वसिष्ठ उवाच

पंचसूक्ष्मः पंचदीर्घः सप्तरक्तः षडुन्नतः । त्रिपृथुर्लघुगंभीरो द्वात्रिंशल्लक्षणस्त्वयम् ॥२७॥
पंच दीर्घाणि शस्तानि यथा दीर्घायुषोऽत्र च । भुजौ नेत्रे हनुर्जानू नासा च तनयस्य ते ॥२८॥
ग्रीवाजंघामेहनैश्च त्रिभिर्ह्रस्वोऽयमीडितः । स्वरेण सत्त्वनाभिभ्यां त्रिगंभीरः शिशुः शुभः ॥२९॥
त्वक्केशांगुलिदशनाः पर्वाण्यङ्गुलिजान्यपि । तथाऽस्य पंच सूक्ष्माणि सूचयंति परां श्रियम् ॥३०॥
पाण्यंघ्रितलनेत्रांते तालुजिह्वाधरोष्ठकम् । सप्तारुणं च सनखमस्मिन् राज्यसुखप्रदम् ॥३१॥
वक्षः कुक्ष्यालिकस्कन्धकरवक्त्रं षडुन्नतम् । तथाऽत्र दृश्यते बाले महदैश्वर्यभोगभाक् ॥३२॥

किया करते थे। इस तरह रामादि चारों भ्राताओंके आठों कुमार—जिनका चन्द्रमाके समान मुखमण्डल था—माताओंसे लालित होकर बढ़ते जाते थे। सोनेके जंजीरोंसे बंधे हुए एवं तरह-तरहके रत्नोंसे सुसज्जित पालनों-पर वे आनन्दकी किलकारियाँ भरा करते थे ॥ १६ ॥ उन बच्चोंको कितने ही प्रकारके स्वर्णमय आभूषण पहनाये जाते और माथेपर पीपलके पत्तेकी नाईं सुवर्णका पत्ता बनाकर लगाया जाता था। जिसमें छोटे-छोटे मोतियोंके झुब्बे लटकते हुए बड़े भले लगते थे ॥ १७ ॥ १८ ॥ गलेमें रत्नों और मणियोंके समूहके बीचमें व्याघ्रका नख शोभायमान हो रहा था। कानोंमें सुवर्णके कुण्डल झूलते रहते थे और उनमें लगा हुआ हीरा प्रकाशित हो रहा था ॥ १९ ॥ २० ॥ रुनझुन करती हुई मणियोंकी करधनी पड़ी थी। हाथोंमें कङ्कण तथा बिजायठ अपना असाधारण निखार दिखा रहा था। जिस समय वे बच्चे तनिक मुस्करा देते तो इन्द्रनील-मणिके समान उनके छोटे-छोटे दाँत दीखने लगते थे। हाथ और पैरके सहारे आँगनमें रेंगते हुए वे बालक नाना प्रकारके बालविनोद, तरह-तरहकी चालें, मुखचुम्बन, बालकोंमें कृत्रिम युद्ध और मीठी-मीठी बोलोंसे अपने-अपने माता-पिताको आनन्दित करते रहते थे। कुछ दिनों बाद वे अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषण पहिनकर राजसभामें जाते और वहाँ नियमतः रामचन्द्रको प्रणाम करके अपने आसनपर बैठ जाते थे ॥ २१-२४ ॥ एक दिन राजसभामें बैठे हुए वसिष्ठजीसे रामने कहा—आप कृपया इन बालकोंका शुभाशुभ लक्षण देखकर हमें बतलाइए। यह बात सुनकर वसिष्ठने सबसे पहले कुशको अपने सामने बुलाया और रामसे कहने लगे—॥ २५ ॥ २६ ॥ पाँच प्रकारके लक्षण सूक्ष्म, पाँच ही तरहके दीर्घ, सात रक्त, छः उन्नत, तीन विस्तृत, तीन ही तीन लघु तथा तीन गंभीर सब मिलाकर ३२ प्रकारके लक्षण होते हैं ॥ २७ ॥ जैसे कि इस चिरंजीवी कुशके हाथ, नेत्र, बाहु, घुटने, नाक ये पाँच दीर्घ हैं। अतएव ये बहुत अच्छे हैं। ग्रीवा, जंघा और लिंग इन तीनोंके छोटे होनेसे इसके तीन ह्रस्व हैं। ये भी अच्छे हैं। शब्द, बल तथा नाभि ये तीन गंभीर हैं। इसकी त्वचा, केश, उँगलियाँ, दाँत, शरीरकी संधियाँ तथा वक्ष ये पाँच सूक्ष्म इसकी श्रीकी सूचना दे रहे हैं। हाथ, पैर, तलवे, नेत्रके आस-पासवाले भाग तथा तालु, जिह्वा, अधरोष्ठ और नख ये रक्तवर्णके होनेसे राज्यसुख देनेवाले हैं ॥ २८-३१ ॥ छाती, पेट, कन्धा,

ललाटकटिवक्षोभिस्त्रिविस्तीर्णो यथा ह्यसौ । सर्वतेजो महैश्वर्यं तथा प्राप्स्यति नान्यथा ॥३३॥
अच्छिन्नां तर्जनीं प्राप्य तथा रेखाऽस्य दृश्यते । कनिष्ठामूलनिर्याता दीर्घायुष्यं यया भवेत् ॥३४॥
कमठपृष्ठकठिनावकर्मकरणौ करौ । राज्यहेतू शिशोरस्य पादौ चाध्वनि कोमलौ ॥३५॥
पादौ समांसलौ रक्तौ समौ सूक्ष्मौ सुशोभनौ । समगुल्फौ स्वदेहेन स्निग्धावैश्वर्यसूचकौ ॥३६॥
स्वल्पाभिः कररेखाभिश्चारक्ताभिः सदा सुखी । लिंगेन कृशह्रस्वेन राजराजो भविष्यति ॥३७॥
उत्कटासनगुल्फस्फिङ्नाभिरस्यापि वर्तुला । दक्षिणावर्तमरुणं महदैश्वर्यसूचकम् ॥३८॥
धारैका मूत्रके यस्य दक्षिणावर्तिनी यदि । गंधश्च मीनमधुनोर्यदि वीर्यं तदा नृपः ॥३९॥
विस्तीर्णौ मांसलौ स्निग्धौ भुजावस्य सुखोचितौ । वामावर्तौ सप्रलंबौ भुजौ भूरक्षणोचितौ ॥४०॥
श्रीवत्सवज्रचक्राब्जमत्स्यकोदंडदंडभृत् । तथाऽस्य करगा रेखा यथा स्यात्त्रिदिवस्पतिः ॥४१॥
द्वात्रिंशद्दशनश्चायं वरकंबुशिरोधरः । क्रौंचदुंदुभिहंसाभ्रस्वरः सर्वेश्वराधिकः ॥४२॥
मधुपिंगलनेत्रोऽसौ नैनं श्रीस्त्यजति क्वचित् । पंचरेखाललाटस्तु तथा सिंहोदरः शुभः ॥४३॥
ऊर्ध्वरेखांकितपदो निःश्वसन्पद्मगन्धवान् । अच्छिद्रपाणिः सुनसो महालक्षणवानयम् ॥४४॥
एवं कुशं निरीक्ष्याथ सर्वान् दृष्ट्वा क्रमेण सः । लवादीनां सुचिह्नानि पूर्ववत्प्राह राघवम् ॥४५॥
ततः प्रीतमना रामः पूजयामास तं गुरुम् । वस्त्रैराभरणैश्चैव ययौ हर्षात्ततो गृहम् ॥४६॥
एतस्मिन्नंतरे सीता भूमिदत्तवरासने । संस्थिता चामरैर्दिव्यैर्दासीभिः परिवीजिता ॥४७॥
सखीभिः सेविता रम्या धृतार्धांकोपबर्हणा । मुकुरे स्वं निरीक्षंती मुखं चन्द्रनिभं वरम् ॥४८॥

हाथ, पसलियाँ और मुँह ये छः उन्नत दीखते हैं, जो महान् ऐश्वर्यभोगके दाता हैं ॥३२॥ मस्तक, कमर और छाती ये तीन विस्तीर्ण हैं, जो सब ऐश्वर्योंको देनेवाले हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ३३ ॥ हाथकी एक रेखा ठीक तर्जनी पर्यन्त चली गयी है, वह दीर्घायुसूचक है ॥ ३४ ॥ कछुईकी पीठके समान कड़े-कड़े इसके हाथ राज्यप्राप्तिकी सूचना दे रहे हैं। इसके कोमल, बराबर, लाल, पतले, सुन्दर और बराबर एँड़ीवाले पैर भी इसके राज्यप्राप्तिकी सूचना दे रहे हैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ थोड़ी और लाल रङ्गकी रेखाएँ यह बतलाती हैं कि यह सदा सुखी रहेगा। इसका लिंग पतला और छोटा है। इससे यह जाना जाता है कि यह बच्चा भविष्यमें राजाओंका भी राजा होगा। इसका नितम्ब तथा घुटने मजबूत हैं और नाभि गहरी तथा दक्षिणावर्त होकर लाल रङ्गकी है। ये सब भी महान् ऐश्वर्यकी सूचना दे रहे हैं। लक्षणशास्त्रोंमें कहा गया है कि मूत्रत्यागके समय जिसके लिंगसे मूत्रकी केवल एक धार दक्षिणावर्त बहे और उसके वीर्यसे मछली तथा शहदके समान गन्ध निकले तो वह मनुष्य राजा होता है ॥ ३७–३९ ॥ इसकी बड़ी, मोटी और चिकनी भुजाएँ सुख भोगने लायक हैं। लम्बे और वामावर्त बाहुदण्ड पृथ्वीकी रक्षा करनेके योग्य हैं ॥ ४० ॥ श्रीवत्स, वज्र, चक्र, कमल, मत्स्य, धनुष तथा दण्ड आदिके आकारकी ऐसी रेखाएँ इसके हाथोंमें पड़ी हैं, जिससे ज्ञात होता है कि यह देवताओंका भी राजा होगा ॥ ४१ ॥ इसके मुखमें पूरे बत्तीस दाँत हैं। शङ्खके समान सुन्दर इसकी ग्रीवा है। क्रौंच पक्षी, नगाड़ा, हंस तथा मेघके समान गम्भीर इसका स्वर है। इससे जान पड़ता है कि यह संसारके समस्त राजाओंसे बढ़कर होगा ॥ ४२ ॥ मधु (शहद) के समान पिंगल वर्ण इसकी आँखें हैं, इसके ललाटमें पाँच रेखाएँ हैं, सिंहके समान उदर है, इसके पैरोंकी रेखाएँ ऊपरको गयी हैं, इसके श्वाससे कमलकी गन्ध आती है और सुन्दर-सी नासिका है, इन सब लक्षणोंसे ज्ञात होता है कि यह असाधारण लक्षणसम्पन्न बालक है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ इस प्रकार कुशके लक्षणोंको बतलाकर वसिष्ठने बाकी लव आदि बालकोंके भी लक्षण बतलाये। तदनन्तर रामने अनेक प्रकारके वस्त्रों और आभूषणोंसे वसिष्ठकी पूजा की और उनकी आज्ञा लेकर रामचन्द्रजी अपने महलमें चले गये ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ वहाँ सीताजी पृथ्वीके दिये हुए सुन्दर सिंहासनपर बैठी थीं। कितनी ही दासियाँ चँवर-पंखे आदि झल रही थीं। बहुत-सी सखियें तरह-तरहकी सेवामें लगी थीं। उस समय सीताजी पीछे तकिया लगाकर बैठी हुई दर्पणमें अपना मुख देख रही थीं। जब उन्होंने सुना कि

रामस्यागमनं श्रुत्वा संचचालासनाज्जवात् । ततो ददर्श श्रीरामं बालकैः परिवेष्टितम् ॥४९॥
स्वकट्यां यूपकेतुं च दधानमवरं शिशुम् । तथैव दक्षिणे हस्ते दधानं चांगदं शुभम् ॥५०॥
कुशं लवं पुरस्कृत्य सभायां तं शनैः शनैः । तत्पृष्ठे सा ददर्शाथ लक्ष्मणं बालकान्वितम् ॥५१॥
तक्षं कट्यां पुष्करं च दधानं दक्षिणे करे । तत्पृष्ठे भरतं सीता ददर्श मुदिताननां ॥५२॥
चित्रकेतुं शिशुं कट्यां दधानं रुक्ममण्डितम् । तथैव दक्षिणे हस्ते सुबाहुं पंकजेक्षणम् ॥५३॥
तत्पृष्ठे सा ददर्शाथ शत्रुघ्नं जनकात्मजा । रामशस्त्राणि बिभ्रंतं समायांतं शनैः शनैः ॥५४॥
एवं सा राघवं दृष्ट्वा सीता प्रत्युज्जगाम तम् । शिंजन्मंजीररशना पीतकौशेयधारिणी ॥५५॥
कराभ्यां पुरतो यांतं लवं धृत्वा चुचुंब सा । निधाय तं लवं कट्यां धृत्वा हस्तेन तं कुशम् ॥५६॥
ययौ शनैः सा रामेण वदती स्वस्थलं पुनः । सखीभिर्वेष्टिता सीता रंजयामास राघवम् ॥५७॥
अथ रामोऽपि सीतायाः स्थित्वा सिंहासनोपरि । अंकयोः पुरतश्चापि बालकान्सस्थितांश्च सः ॥५८॥
सीतायै दर्शयन् प्रीत्या लालयामास सादरम् । सीतायै राघवः प्राह सभायां गुरुणा पुरा ॥५९॥
यान्युक्तानि सुचिह्नानि शिशूनां तानि विस्तरात् । श्रुत्वा राममुखात्तानि सीता तोषं परं ययौ ॥६०॥
राघवः प्राह वैदेहीमुर्मिलापरिवीजिताम् । सीतेऽङ्गदं चित्रकेतुं लक्ष्मणांके निवेशय ॥६१॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा सीता शीघ्रं शिशू ययौ । तावदुत्थाय सौमित्रिर्लज्जया गंतुमुद्यतः ॥६२॥
तं गन्तुकामं रामोऽपि दृष्ट्वा तां मांडवीं तथा । श्रुतकीर्तिं कंजनेत्रसंज्ञयाऽचोदयत्तदा ॥६३॥
ताभ्यां धृतोऽथ सौमित्रिः स्मितास्याभ्यामुपाविशत्। तावत्तदंकयोः सीता तत्पुत्रौ सन्न्यवेशयत् ॥६४॥
तद्वच्च भरतस्यांके निवेश्य तक्षपुष्करौ । शत्रुघ्नांके सुबाहुं च यूपकेतुं न्यवेशयत् ॥६५॥
ततः सीतां पुनः प्राह स्मितास्यः स रघूद्वहः । बोजयंतूर्मिलाद्याश्च स्वं स्वं स्वामिनमादरात् ॥६६॥

राम आ रहे हैं तो आसनसे उठ खड़ी हुई। उधरसे राम भी बालकोंके साथ सीताके समक्ष आगये ॥ ४७–४९ ॥ उस समय वे अपनी बायीं गोदमें यूपकेतु तथा दाहिनी गोदमें अंगदको लिये हुए थे और लव-कुश आगे-आगे चल रहे थे। उनके पीछे बालकोंको लिये लक्ष्मणको भी आते हुए सीताने देखा ॥ ५० ॥ ५१ ॥ लक्ष्मण तक्षको गोदमें लिये थे और पुष्करको अपने दहिने हाथकी उँगली पकड़ाये चले आ रहे थे। उनके बाद सीताने भरतको आते देखा ॥ ५२ ॥ वे भी चित्रकेतु नामक बच्चेको बायीं गोदमें लिये और दाहिनी गोदमें कमलकी नाईं आँखोंवाले सुबाहु नामक बेटेको लिये हुए थे ॥ ५३ ॥ उनके पीछे सीताने शत्रुघ्नको देखा। वे रामजीके शस्त्रोंको लिये धीरे-धीरे महलोंकी ओर आ रहे थे ॥ ५४ ॥ इस प्रकार उन्हें आते देखकर सीता रामकी ओर बढ़ीं। कमरकी करधनी और क्षुद्रघंटिका अपनी रुनझुनकी ध्वनि कर रही थी और शरीरमें रेशमी पीताम्बर सुशोभित हो रहा था ॥ ५५ ॥ उन्होंने रामके पास पहुँचते ही लवका मुख चूमा। फिर गोदमें उठा लिया और कुशको दाहिने हाथ-की उँगली पकड़ाकर रामसे बातें करती हुई चलीं। उस समय भी चारों ओरसे कितनी ही सखियाँ घेरकर सीता तथा रामको प्रसन्न करती हुई चल रही थीं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ इसके अनन्तर रामचन्द्रजी सीताके सिंहासनपर बैठ गये और बच्चोंको गोदमें लेकर खेलाने लगे। कुछ देर बाद रामचन्द्रजीने सीताको वसिष्ठसे सुने हुए बालकोंके शुभ लक्षण कह सुनाये। जिन्हें सुनकर सीता बहुत प्रसन्न हुईं ॥ ५८–६० ॥ उर्मिला सीताके ऊपर पंखा झल रही थीं। इसी समय रामने सीतासे कहा कि अङ्गद और चित्रकेतुको ले जाकर लक्ष्मणकी गोदमें बिठा दो ॥ ६१ ॥ रामकी यह बात सुनकर सीता झटपट बच्चोंके पास पहुँचीं और उन्हें लक्ष्मणकी गोदमें बिठलाना ही चाहती थीं कि लक्ष्मण लज्जाके मारे चलनेको तैयार हो गये ॥ ६२ ॥ लक्ष्मणको जाते देखकर रामने आँखोंसे संकेत कर दिया, जिससे श्रुतिकीर्ति और माण्डवीने लक्ष्मणको पकड़ लिया। तभी सीताने उन दोनों बच्चोंको लक्ष्मणकी गोदमें बिठा दिया ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ उसी प्रकार भरतकी गोदमें तक्ष और पुष्कर तथा शत्रुघ्नकी गोदमें सुबाहु और यूपकेतुको बिठलवाया ॥ ६५ ॥ इसके बाद मुस्कराते हुए रामचन्द्रने

ततस्ता द्रुद्रुवुः सर्वाः सखीभिर्लज्जिता धृताः । व्यजनैर्वीजयामासुः स्वं स्वं कांतं सुलज्जिताः ॥६७॥
एवं नानाकौतुकानि भोजनासनकर्मसु । कारयामास वैदेह्या बंध्वादीनां रघूत्तमः ॥६८॥
अथ रामो वसिष्ठं स एकदा वाक्यमब्रवीत् । कुशस्याथ लवस्यापि व्रतबन्धो विधीयताम् ॥६९॥
तथेति गुरुणा प्रोक्तस्ततो रामः शुभे दिने । गणकान् स समाहूय मंत्रयामास सादरम् ॥७०॥
कुशाय पंचमं वर्षं किंचिन्न्यूनं लवाय च । ज्ञात्वा ते गणकाः सर्वे गुरुशुक्रादिकं बलम् ॥७१॥
दृष्ट्वा पंचांगपट्टेषु राघवं वाक्यमब्रुवन् । ब्राह्मणस्याष्टमे प्रोक्तो द्वादशे क्षत्रियस्य च ॥७२॥
वैश्यस्य षोडशे वर्षे व्रतबंधो मुनीश्वरैः । जन्मात् षष्ठे तथा गर्भात्सप्तमेऽब्दे नृपस्य च ॥७३॥
व्रतबंधो विधातव्यो यत्नतश्च बलार्थिनः । ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यो विप्रस्य पंचमे ॥७४॥
राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्यार्थार्थिनोऽष्टमे । विद्वद्भिश्चोपनयनमेवं शास्त्रेषु निर्णयः ॥७५॥
अतो गर्भाच्च षष्ठेऽब्दे पुत्रयोस्त्वं रघूत्तम । सुखं कुरूपनयनं मुहूर्तं शृणु सादरम् ॥७६॥
अद्यारभ्य पंचदशदिने दत्तं कुशाय हि । पक्षांतरेण तं श्रुत्वा मुहूर्तं रघुनंदनः ॥७७॥
गणकान् धनवस्त्राद्यैः पूज्य लक्ष्मणमब्रवीत् । आकारणीया राजानः सुहृदश्च मुनीश्वराः ॥७८॥
सांतःपुराः सपौराश्च स्वस्वजानपदैः सह । शृङ्गारणीयाऽयोध्येयं परिखाः सप्त सादरम् ॥७९॥
शोधनीयास्तथा सौधसमूहेषु सुधाः शुभाः । दत्त्वा चित्राणि लेख्यानि प्रासादेषु समंततः ॥८०॥
देवालयेषु सर्वेषु सुधा देया मनोरमा । लेखनीयानि चित्राणि स्थाप्यंतां बलयः पृथक् ॥८१॥
बधनीयाः पताकाश्च रोपणीया ध्वजा अपि । समंततस्तोरणानि बंधनीयानि लक्ष्मण ॥८२॥

सीतासे कहा—अब उर्मिला, श्रुतकीर्ति तथा माण्डवी अपने-अपने पतियोंको पंखा झलें ॥ ६६ ॥ इस बातको सुनकर वे स्त्रियाँ लज्जाके मारे वहाँसे भाग खड़ी हुईं । किन्तु सखियाँ दौड़कर उन्हें पकड़ लायीं और अन्तमें उन्हें रामके आज्ञानुसार अपने-अपने पतियोंपर पंखे झलने पड़े ॥ ६७ ॥ इस तरह भोजन, आसन तथा शयनके समय रामचन्द्रजी सीता तथा भ्राताओंके साथ विविध प्रकारके कौतुक किया करते थे ॥ ६८ ॥ कुछ दिन बीतनेपर एक दिन वसिष्ठसे रामने कहा—अब कुश और लवका व्रतबन्ध (यज्ञोपवीत-संस्कार) कर डालना चाहिए ॥ ६९ ॥ वसिष्ठने कहा—अच्छी बात है । एक पवित्र दिवसको रामने बहुतसे ज्योतिषियोंको बुलाकर सलाह की ॥ ७० ॥ जब ज्योतिषियोंको यह बात मालूम हुई कि कुशका पाँचवाँ वर्ष चल रहा है और लवका कुछ कम है । तब उन्होंने गुरु-शुक्रादिका बलाबल देखा ॥ ७१ ॥ पञ्चांगमें सब देख-सुनकर उन्होंने रामसे कहा—ब्राह्मणका उपनयन आठवें वर्षमें, क्षत्रियका बारहवें वर्षमें और वैश्यका सोलहवें वर्षमें यज्ञोपवीत-संस्कार होना चाहिए । यह बड़े-बड़े ऋषियोंने कहा है । अपना वर्चस्व बढ़ानेकी इच्छा रखनेवाले विप्रको गर्भसे पाँचवें वर्षमें, बलवृद्धिकी कामनावाले राजाको छठें वर्षमें एवं धनवृद्धिकी इच्छा रखनेवाले वैश्यको आठवें वर्षमें ही उपनयन-संस्कार करना उचित है । यह शास्त्रोंका निर्णय है ॥ ७२–७५ ॥ अतएव हे रघूत्तम ! आपके बच्चोंका गर्भसे लेकर यह छठा वर्ष चल रहा है । इसलिए इस समय इनका व्रतबन्ध करना अतिशय श्रेयस्कर है । अब बच्चोंके व्रतबन्धके लिए सुन्दर मुहूर्त बतलाता हूँ, सो सुनिए ॥ ७६ ॥ आजसे पन्द्रहवें दिन कुशके यज्ञोपवीतका पवित्र मुहूर्त मिलता है । इस प्रकार एक पक्षके बाद यज्ञोपवीतका मुहूर्त सुनकर रामचन्द्रजीने अनेक प्रकारके धन-वस्त्रसे उन गणकोंकी पूजा की और लक्ष्मणसे कहा कि समस्त राजाओं, मित्रों तथा मुनियोंके पास निमन्त्रण भेजकर कहला दो कि सब लोग अपनी स्त्रियों, पुरवासियों तथा देशवासियोंके साथ इस उपनयनसंस्कारके उत्सवमें मेरे यहाँ पधारें । इस अयोध्या नगरीको अच्छी तरह सजवाओ । इसके आस-पासकी सातों खाइयोंको साफ करवा दो ॥ ७७–७९ ॥ महलोंको चूनेसे पुतवा दो । अटारियों और दीवारोंपर नाना प्रकारके चित्र बनवाओ । अयोध्याके समस्त देवालयोंको चूनेसे पुतवाकर उनमें नाना प्रकारकी चित्रकारियाँ करवाओ और तरह-तरहके पूजनका प्रबन्ध कर दो ॥ ८० ॥ ८१ ॥ चारों ओर पताका

वेद्यः कार्या रुक्ममय्यो बन्धनीयाश्च मंडपाः । श्रृङ्गारणीया हस्त्यश्वशिबिकाश्च सहस्रशः ॥८३॥
अन्यच्चापि यथायोग्यं यद्यज्जानासि लक्ष्मणः । तत्तत्कुरुष्व यत्प्रोक्तं मया तव रघूत्तम ॥८४॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा स लक्ष्मणः । तथा चकार तत्सर्वं यथा रामेण शिक्षितः ॥८५॥
ततो मुहूर्ते श्रीरामः स्नानमभ्यंगपूर्वकम् । कृत्वा कुमारैर्वैदेह्या बंधुस्त्रीभिश्च बंधुभिः ॥८६॥
नानालंकारवस्त्राणि परिधायाथ तैः सह । पुण्याहवाचनं चक्रे गुरुं पूज्य ऋषीश्वरान् ॥८७॥
नांदीश्राद्धादिकं कृत्वा प्रतिष्ठां दैवतस्य च । चकार मंगलैस्तूर्यनादैः सीतासमन्वितः ॥८८॥
ततो ययुः कोटिशस्ते पार्थिवाश्च मुनीश्वराः । सप्तद्वीपांतरस्थाश्च सावरोधाः सवाहनाः ॥८९॥
तैः साऽयोध्या तदा व्याप्ता विरेजे नितरां तदा । ततो मुहूर्तदिवसे वसिष्ठो ब्राह्मणैर्युतः ॥९०॥
रामस्याथ कुशस्याथ मध्ये धृत्वा वरं वटम् । उवाच मंगलान्येव सुस्वरैर्मधुराक्षरैः ॥९१॥

ध्यात्वा श्रीगणनायकं विधिसुतां शंभुं विधिं माधवं
लक्ष्मीं शैलसुतां विधेस्तु दयितामिंद्रं सुरांस्तान् ग्रहान् ।
पुण्यान्स्थावरनिम्नगाश्च सुमुनीन् स्वीयां कुलस्यांबिकां
तातं मातरमादरेण वटवे भूयात्सदा मंगलम् ॥९२॥
तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव ।
विद्याबलं दैवबलं तदेव सीतापतेर्यत्स्मरणं विधेयम् ॥९३॥

इति नानामंगलवाद्यैस्तूर्यघोषैर्मनोहरैः । ॐकारघोषैः स गुरुर्मुमोचांतःपटं तदा ॥९४॥
ततस्तं राघवस्याङ्के निवेश्य हवनादिकम् । विधिं कृत्वाऽथ कौपीनं दण्डं चाथ कमण्डलुम् ॥९५॥
बद्ध्वादौ रुक्मजां मौंजीं बबन्धैणाजिनं तदा । ततः कुशाय स गुरुर्गायत्रीमुपदिष्टवान् ॥९६॥
ब्रह्मचर्यव्रतादीनि स कुशायोपदिष्टवान् । कृत्वोक्तविधिना शौचं कुर्यादाचमनं तथा ॥९७॥

लगवाओ और जगह-जगहपर ध्वजा आरोपित करो। सुवर्णकी वेदियाँ बनवायी जायँ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ इनके सिवाय भी जो-जो बातें तुम्हें मालूम हों और मैंने न बतलायी हों, उन्हें भी ठीक कर देना ॥ ८४ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनी तो 'जो आज्ञा' ऐसा कहकर लक्ष्मण चले गये और रामने जैसा बतलाया था, वह सब प्रबन्ध कर दिया ॥ ८५ ॥ जिस दिन मुहूर्त था, उस रोज उबटन लगाकर उन कुमारों तथा सीता और भाइयोंके साथ रामने स्नान किया। नाना प्रकारके वस्त्र-अलंकारादि पहने । वसिष्ठ तथा निमन्त्रणमें आये हुए ऋषियोंका पूजन करके पुण्याहवाचन, नान्दीश्राद्ध, देवताओंकी स्थापना आदि कार्य तुरही और नगाड़ेके मंगलमय निनादके साथ राम तथा सीताने सम्पादित किये ॥ ८६–८८ ॥ इसके बाद सातों द्वीपोंके करोड़ों राजे तथा ऋषि अपने-अपने परिवार एवं वाहनोंके साथ वहाँ आ पहुँचे। उन लोगोंसे सारी अयोध्या भरकर बड़ी सुन्दर मालूम पड़ने लगी । यज्ञोपवीत-मुहूर्तके अवसरपर बहुतसे ब्राह्मणोंके साथ वसिष्ठजी राम और कुशके मध्यमें एक सुन्दर कपड़ेका पर्दा बाँधकर मीठे तथा स्पष्ट स्वरमें मङ्गलपाठ करने लगे ॥ ८९–९१ ॥ उन मङ्गलमय श्लोकोंका अर्थ इस प्रकार है-गणेश, सरस्वती, शिव, ब्रह्मा, विष्णु, लक्ष्मी, पार्वती, ब्रह्माणी, इन्द्र, समस्त देवता, सम्पूर्ण ग्रह, पवित्र पर्वत तथा नदियाँ, अच्छे-अच्छे ऋषि, अपनी कुलदेवी तथा माता-पिता इन सबको प्रणाम करके आपलोग प्रार्थना करें कि जिस बच्चेका यज्ञोपवीत संस्कार होनेवाला है, उसका कल्याण हो ॥ ९२ ॥ वही लग्न लग्न है, वही दिन दिन है, वही विद्याबल तथा देवबल है, जिसमें सीतापति रामचन्द्रका स्मरण किया जाय ॥ ९३ ॥ इस तरह विविध प्रकारके मङ्गलमय मन्त्रोंका पाठ करके गुरु वसिष्ठने ॐकार शब्दके साथ पर्दा खोल दिया। तदनन्तर वसिष्ठने लव-कुशको रामकी गोदमें बिठाकर हवनादि विधियोंको सम्पन्न किया । इसके अनन्तर कुशको सुवर्णके तारोंसे बनी करधनी पहनायी, मृगचर्म बाँधा और कौपीन पहनायी। फिर दण्ड-कमण्डलु देकर वसिष्ठजीने कुशको गायत्री-मंत्रका उपदेश दिया ॥ ९४–९६ ॥ फिर ब्रह्मचर्यव्रतके नियम आदि बतलाते हुए कहने लगे कि शास्त्रोंमें जो नियम बतलाये

दन्तान् जिह्वां विशोध्याथ कृत्वा मलविशोधनम् । स्नात्वाऽम्बुदैवतैर्मन्त्रैः प्राणानायम्य यत्नतः ॥९८॥
उपस्थानं रवेः कृत्वा संध्ययोरुभयोरपि । अग्निकार्यं ततः कृत्वा ब्राह्मणानभिवादयेत् ॥९९॥
ब्रुवन्नमुकगोत्रोऽहमभिवादय इत्यपि । धारयन्मेखलां दण्डोपवीताजिनमेव च ॥१००॥
अनिंद्येषु चरेद्भैक्ष्यं ब्राह्मणेष्वात्मवृत्तये । वाग्यतो गुर्वनुज्ञातो भुञ्जीतान्नमकुत्सयन् ॥१०१॥
एकान्नं च समश्नीयाच्छ्राद्धेऽश्नीयात्तथाऽऽपदि । द्विवारं नैव भुञ्जीत दिवा क्वापि द्विजोत्तमः ॥१०२॥
सायंप्रातर्द्विजोऽश्नीयादग्निहोत्रविधानवित् । मधु मांसं प्राणिहिंसां भास्करालोकनं जले ॥१०३॥
स्त्रियं पर्युषितोच्छिष्टे परिवादं विवर्जयेत् । यथेष्टचेष्टो न भवेद्गुरोर्नयनगोचरे ॥१०४॥
न नाम परिगृह्णीयात्परोक्षेऽप्यविशेषणम् । गुरुनिंदा भवेद्यत्र पारवादस्तु यत्र च ॥१०५॥

श्रुती पिधाय स्थातव्यं यातव्यं वा ततोऽन्यतः ।
न मात्रा न पितुः स्वस्रा न स्वस्रैकान्तशीलता ॥१०६॥

बलवतींद्रियाण्यत्र मोहयंत्यतिकोविदान् । एवमादीन्यनेकानि ब्रह्मचारिव्रतानि हि ॥१०७॥
तस्मै गुरुश्चोपदिश्य ददौ दानान्यनेकशः । भोजयामास तं मात्रा सह नानोत्सवैस्तदा ॥१०८॥
कारयित्वाऽथ पालाशपूजनं विधिपूर्वकम् । तेनापि कुशबालेन देवकस्य विसर्जनम् ॥१०९॥
चकार राघवेणैव सीतया स गुरुस्तदा । ततो रामो नृपतिभिर्जनकेनापि पूजितः ॥११०॥
चकार धनवस्त्राद्यैस्तुष्टान् विप्रान्नृपादिकान् । आचांडालांस्तदा रामस्तोषयामास सादरम् ॥१११॥
एवं नानासमुत्साहैर्मासमेकं निनाय सः । रामो विसर्जयामास ततस्तान्पार्थिवादिकान् ॥११२॥
एवं कालांतराद्रामो व्रतबंधं लवस्य च । चकार पूर्ववद्भूपात्समाहूय नृपादिकान् ॥११३॥

गये हैं, उनके अनुसार शौचसे निवृत्त होकर दाँत तथा जीभ साफ कर लेनेके बाद वरुण देवतासे सम्बन्ध रखनेवाले मन्त्रोंका पाठ करता हुआ स्नान करे। फिर आचमन-प्राणायामादि करके दोनों शामको सूर्यका उपस्थान करना चाहिये। इसके पश्चात् हवन करके ब्राह्मणोंको प्रणाम करे ॥ ९७-९९ ॥ प्रणाम करते समय यह भी कहता जाय कि अमुक गोत्रका अमुक व्यक्ति मैं आपको प्रणाम करता हूँ। उच्च जातिके लोगों अथवा जहाँतक हो सके, सुपात्र ब्राह्मणोंके यहाँसे भिक्षा माँगकर अपनी जीविका चलाये। किसीकी निन्दा न करे तथा मौनव्रतका पालन करे और जब गुरुकी अनुमति मिल जाय, तभी भोजन करे ॥ १०० ॥ १०१ ॥ सदा केवल एक अन्नका भोजन करे। श्राद्धादि तथा किसी आपत्तिमय कार्यके आ जानेपर भी दिनमें दो बार भोजन न करे। ब्राह्मणको चाहिये कि केवल सुबह-शाम भोजन करे। मधु तथा मांसका आहार, प्राणिहिंसा, जलमें सूर्यके प्रतिबिम्बका दर्शन, स्त्रीप्रसंग, बासी और जूठा भोजन तथा दूसरेकी निन्दा इन कामोंको छोड़ दे। गुरुके सामने अपने इच्छानुसार जो चाहे, सो न कर डाले ॥ १०२-१०४ ॥ परोक्षमें भी बिना विशेषण लगाये गुरुका नाम न ले। जहाँपर गुरुकी निन्दा हो रही हो अथवा उनकी ठठोली की जाती हो, वहाँ कान ढाँककर बैठे या वहाँसे उठ जाय। अपनी माता, बुआ अथवा बहिनके साथ भी एकान्तमें न बैठे ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ क्योंकि इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल होती हैं। वे बड़े-बड़े पण्डितोंको भी बातकी बातमें विचलित कर देती हैं। इस प्रकार गुरुने बहुतसे ब्रह्मचर्य व्रतसम्बन्धी नियम बतलाये ॥ १०७ ॥ इसके अनन्तर अनेक तरहके दान दिये गये। कुशको माताके साथ भोजन कराया गया ॥ १०८ ॥ तब विधिपूर्वक पलाशका पूजन कराया। फिर कुश, सीता तथा रामके द्वारा आहूत देवताओंका पूजन कराया ॥ १०९ ॥ इसके बाद बहुतसे राजाओं तथा जनकजीने रामका पूजन किया। रामने बहुतसे धन-वस्त्रों द्वारा आये हुए राजाओं तथा ब्राह्मणोंको प्रसन्न करके अयोध्यानिवासी चाण्डालसे लेकर ऊँचेसे ऊँचे कुल तकके लोगोंको सादर प्रसन्न किया ॥ ११० ॥ १११ ॥ इस तरह नाना प्रकारके उत्सवोंके साथ एक महीनेका समय बिताकर मेहमानीमें आये हुए राजाओं और ऋषियोंको विदा किया ॥ ११२ ॥ कुछ समय बीतनेके बाद उसी तरह उत्साहके

ततस्तौ बालकौ रम्यौ वेदाध्ययनमुत्तमम् । चक्रतुर्गुरुसान्निध्ये विधिवद्द्विसत्तमौ ॥११४॥
एवं तेषां तु बालानां सर्वेषां रघुनंदनः । व्रतबंधविधानानि यथाकाले महोत्सवैः ॥११५॥
चकार गुरुणा विप्रैः समाहूय नृपादिकान् । विशेषैर्निजपुत्राभ्यां चकार स महोत्सवैः ॥११६॥
अकरोदधिकं किंचिन्न न्यूनमकरोद्विभुः । ततस्ते बालकाः सर्वे ब्रह्मचर्यव्रते स्थिताः ॥११७॥
चक्रुस्ते गुरुसान्निध्ये वेदाध्ययनमुत्तमम् । अथ रामोऽपि वैदेह्या बालकैः परिवारितः ॥११८॥
विरेजे स्कन्दगणपादिभिर्देव्या यथा शिवः । अथ ते बालकाः सर्वे कृत्वाऽध्ययनमुत्तमम् ॥११९॥
वेदादीनां गुरुमुखाल्लब्ध्वा ज्ञानं गुरोस्ततः । जग्मुस्तीर्थानि वै कर्तुं सेनया गुरुमंत्रिभिः ॥१२०॥
पृथिव्यां भारते खंडे यानि तीर्थानि तानि ते । कृत्वा समाययुः पंच मासैः स्वां नगरीं शनैः ॥१२१॥

बालान्समागतान् श्रुत्वा शोभयित्वा निजां पुरीम् ।
प्रत्युज्जगाम सौमित्रिः पुरस्कृत्याथ वारणम् ॥१२२॥

ते दृष्ट्वा लक्ष्मणं नेमुस्तेनालिंगिता अपि । नानोत्सवैर्ययुर्बाला अयोध्याया गृहं प्रति ॥१२३॥
मार्गे मार्गे पुरस्त्रीभिः सौधस्थाभिस्तु वर्षिताः । वृष्टिभिः कुसुमादीनां दीपैर्नीराजिता अपि ॥१२४॥
ततस्ते बालकाः सर्वे सभायां रघुनन्दनम् । नेमुस्तेनालिंगिताश्च ययुः सीतागृहं ततः ॥१२५॥
एतस्मिन्नन्तरे सीतोर्मिला सा मांडवी यथा । श्रुतकीर्तिश्च वेगेन चक्रुर्नीराजनं पृथक् ॥१२६॥
दध्योदनभवैर्दीपैः पक्वान्नैस्तैलपाचितैः । सर्षपैर्लवणैर्माषैस्तोयकुंभैश्च सादरम् ॥१२७॥

ततस्ते बालकाः सर्वे नेमुः सीतां पृथक् पृथक् ।
ततो नेमुः स्वमातॄश्च पूर्वं नत्वा पितामहीः ॥१२८॥
ततस्ते बालकाः सर्वे ददुर्दानान्यनेकशः ।
ब्राह्मणान् भोजयामासुः कोटिशस्ते पृथक् पृथक् ॥१२९॥

साथ सब लोगोंको बुलाकर लवका यज्ञोपवीतसंस्कार किया ॥ ११३ ॥ फिर वे दोनों बालक गुरु वसिष्ठके पास विधिपूर्वक वेदाध्ययन करने लगे। इसी रीतिसे रामचन्द्रने समय-समयपर लक्ष्मण-भरत आदिके बच्चोंका भी व्रतबन्ध-संस्कार कराया और अपने लड़कोंसे बढ़कर उत्सव-दानादि किये। उसमें किसी प्रकारकी न्यूनता नहीं होने दी। वे बच्चे भी संस्कृत होकर विधिपूर्वक ब्रह्मचर्यके नियमोंका पालन करते हुए गुरुके पास वेदाध्ययन करने लगे। यह सब हो जानेके बाद सीता तथा पुत्रोंके साथ बैठे हुए रामचन्द्रजी पार्वती, गणेश तथा स्वामिकार्तिकेयके साथ बैठे शिवजीके सदृश सुन्दर लगते थे। इसके बाद जब उन बालकोंने अच्छी तरह विद्याध्ययन कर लिया तो एक विशाल सेना, गुरु तथा कितने ही मन्त्रियोंको साथ लेकर तीर्थयात्रा करनेको निकले ॥ ११४–१२० ॥ पृथ्वीके भरतखंडमें जितने तीर्थ हैं, उन्हें करके पाँच महीनेमें वे सब बालक अयोध्या वापस आ गये ॥ १२१ ॥ लक्ष्मणने जब सुना कि लड़के तीर्थयात्रासे अयोध्या लौट आये हैं तो बहुतसे गाजे-बाजे तथा हाथी-घोड़े साथ लेकर अगवानी करने गये ॥ १२२ ॥ जब उन्होंने लक्ष्मणको देखा तो मस्तक झुका-झुकाकर प्रणाम किया और लक्ष्मणने उनको अपनी छातीसे लगा-लगाकर आलिंगन किया। फिर अनेक प्रकारके उत्सवोंके साथ उनको महलोंमें ले चले। रास्तेमें अयोध्याकी नारियाँ अटारियोंपर चढ़-चढ़कर उनपर फूलोंकी वर्षा करतीं और आरती उतारती थीं। इसके बाद बालकोंने राजदरबारमें जाकर रामको प्रणाम किया और वहाँसे सीताके महलोंको गये। वहाँ पहुँचनेपर सीता, उर्मिला, मांडवी तथा श्रुतकीर्तिने अलग-अलग उन बालकोंकी आरती उतारी। पकवान, दही, भात, तेलके बने पकवान, सरसों, नमक, उड़द तथा पानी भरे कलश आदि ढरकाकर बलि दी गयी। इसके बाद उन सबोंने कौसल्या आदि तथा पिता और भाइयोंको प्रणाम करके सीता आदि माताओंको प्रणाम किया ॥ १२३–१२८ ॥ इसके बाद उन बालकोंने भाँति-भाँतिके दान दिये और अलग-अलग करोड़ों ब्राह्मणोंको भोजन कराया।

एवं नानोत्सवास्तत्र बभूवुः रामसद्मनि । अथ ते बालकाः सर्वे स्यंदनादिषु संस्थिताः ॥१३०॥
दिव्यवस्त्राणि चित्राणि परिधाय समंततः । अयोध्याराजमार्गेषु हट्टेषु च चतुष्पथे ॥१३१॥
आरामोपवनारण्यवाटिकासु नदीतटे । गमनागमने चक्रुः सेनया मंत्रिबालकैः ॥१३२॥
एवं साकेतनगरे बालकैः सीतया सुखम् । रेमे स बंधुभिर्युक्तश्चिरं राजा रघूद्वहः ॥१३३॥
एवं शिष्य मया प्रोक्तं जन्मकांडमिदं तव । कुशादीनां च जन्मानि वर्णितान्यत्र विस्तरात् ॥१३४॥
रम्यं पवित्रमानंददायकं च मनोहरम् । पुत्रपौत्रप्रदं जन्मकांडमेतत्सुखावहम् ॥१३५॥

जन्मकांडमिदं पुण्यं ये शृण्वंति नरोत्तमाः ।
तेषां पुत्रैश्च पौत्रैश्च वियोगो न भविष्यति ॥१३६॥
जन्मकांडमिदं ये भक्त्या शृण्वंति मानवाः ।
तेषां स्त्रीणां वियोगो हि न कदाप्यत्र जायते ॥१३७॥

जन्मकांडमिदं पुण्यं याः शृण्वंत्यत्र वै स्त्रियः । स्वभर्तृभिर्वियोगं ता न गच्छंति यथा रमा ॥१३८॥
ग्रामं देशान्तरं तीर्थं ये गताश्च चिरं नराः । तेषामागमनार्थं हि जन्मकांड पठेदिदम् ॥१३९॥

येषां भावीनि कार्याणि लब्धुं त्वरयते मनः ।
तैर्नरैः पठनीयं वै जन्मकांडं दिने दिने ॥१४०॥
पूर्वे दिने चैकवारं द्विवारं चापरे दिने ।
एवं नवदिनं वृद्धिस्तथैकेन क्षयोऽपि हि ॥१४१॥
कार्यो नरैः स्वस्थचित्तैस्तेषां कार्यं भविष्यति ।
वर्षमेकं पठेदेवमपुत्रोऽपि लभेत्सुतम् ॥१४२॥
पुत्रार्थी प्राप्नुयात्पुत्रं धनार्थी धनमाप्नुयात् ।
इष्टान् कामांश्च कामार्थी जन्मकाण्डश्रवाल्लभेत् ॥१४३॥

इस तरह रामचन्द्रजीके भवनमें अनेक प्रकारके उत्सव हुए । वे सब रथ, हाथी, घोड़े आदि सवारियोंपर सवार हो-होकर बगीचे, उपवन, वन तथा नदीतट आदिपर अयोध्याके चौराहों तथा बाजारमें अनेक प्रकारके वस्त्र-आभूषण पहनकर मन्त्रियोंके लड़कोंके साथ आने-जाने लगे ॥ १२९-१३२ ॥ इस तरह उस साकेतपुरीमें उन बालकों तथा सीताके साथ आनन्दपूर्वक रामचन्द्रजी रहने लगे । हे शिष्य ! यह जन्मकाण्ड मैंने तुम्हें सुनाया । जिसमें कुश आदि बालकोंकी विस्तृत जीवनी वर्णित है ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ यह जन्मकाण्ड परम रम्य, आनन्ददायक, मनोहर, सुख-सौभाग्यको देनेवाला और पुत्र-पौत्रादिका दाता है । जो लोग जन्मकाण्डको सुनते हैं, उनको कभी अपने पुत्रपौत्रादिके वियोगका दुःख नहीं उठाना पड़ता । जो लोग भक्तिपूर्वक इस जन्मकाण्डका श्रवण करते हैं, उनको अपनी स्त्रीका भी वियोग कभी नहीं होता । यदि स्त्रियाँ इसे सुनती हैं तो उन्हें अपने स्वामीसे कभी वियुक्त नहीं होना पड़ता । बल्कि लक्ष्मीके समान वे जन्मभर आनन्दसे अपना जीवन बिताती हैं ॥ १३५ ॥ १३६ ॥ यदि किसीके परिवारका कोई मनुष्य किसी तीर्थ या परदेशको चला गया हो तो उसे लौटानेके लिए इस जन्मकाण्डका पाठ करना चाहिए । जिसको अपना कोई भावी कार्य सिद्ध करना हो, उसको चाहिए कि पहले दिन एक बार, दूसरे दिन दो बार, तीसरे दिन तीन बार, इस क्रमसे बढ़ाते-बढ़ाते नवें दिन नौ बार जन्मकाण्डका पाठ करे । नवें दिनसे एक-एक पाठ घटाता हुआ फिर नवें दिन केवल एक पाठ करे । इस तरह यदि स्वस्थचित्तसे इसका पाठ किया जाय तो प्रत्येक कार्यकी सिद्धि हो सकती है। यदि इस विधिसे एक वर्ष पर्यन्त जन्मकाण्डका पाठ किया जाय तो पुत्रहीन व्यक्ति भी पुत्र प्राप्त कर सकता है ॥ १३७-१४२ ॥ कहनेका

आनन्दरामायणमध्यसंस्थं श्रीजन्मकांडं तनयप्रदं च ।
पारायणं संश्रवणं तथा वा करोति यो ना स लभेत्सुपुत्रम् ॥१४४॥

इति श्रीमच्छतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये जन्मकाण्डे
कुशलवादीनां जन्मकथनव्रतबंधविस्तारो नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

जन्मकांडे सर्गा आनन्दरामायणे नवैव ज्ञातव्याः । चतुरुत्तराष्टशतश्लोका विष्णुदासरामदासाभ्यामुपदिष्टाः ॥१॥

उपवनदर्शनम् ॥ १ ॥ उपवनक्रीड़ा ॥ २ ॥ सीतात्यागः ॥ ३ ॥ कुशलवोत्पत्तिः ॥ ४ ॥ रामरक्षा ॥ ५ ॥ कमलहरणम् ॥ ६ ॥ पुत्रैर्यां संग्रामः ॥ ७ ॥ सीताग्रहणम् ॥ ८ ॥ बालानामुपनयनम् ॥ ९ ॥

मतलब यह कि जन्मकाण्डका पाठ करनेसे पुत्रार्थी पुत्र, धनार्थी धन तथा किसी भी प्रकारकी कामनावालेकी कामना पूर्ण हो सकती है। इस आनन्दरामायणके मध्यमें स्थित जन्मकाण्ड सन्तानदायक है। जो मनुष्य इसका पारायण करता या सुनता है, उसे सुपुत्रकी प्राप्ति होती है ॥ १४३ ॥ १४४ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते जन्मकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

इस जन्मकाण्डमें कुल नौ सर्ग तथा आठ सौ चार श्लोकों द्वारा श्रीरामदासने विष्णुदासको उपदेश दिया है। ॥ १ ॥ उन नवों सर्गोंमें ये कथायें वर्णित हैं—(१) उपवनदर्शन, (२) उपवनक्रीडा, (३) सीतात्याग, (४) कुशलवकी उत्पत्ति, (५) रामरक्षा, (६) लव द्वारा कमलहरण, (७) पुत्रोंके साथ रामका संग्राम, (८) सीताका पुनर्ग्रहण और (९) बालकोंका उपनयनसंस्कार।

इति श्रीमदानन्दरामायणे जन्मकाण्डं समाप्तम् ।

श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु

श्रीसीतापतये नमः

श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं–

आनन्दरामायणम्

'ज्योत्स्ना'ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

विवाहकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

(स्वयंवरके प्रसंगमें रामका राजा भूरिकीर्तिकी पुरीको प्रस्थान)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः सभामध्ये मन्त्रिभिः परिवेष्टितः । तस्थौ सिंहासने रम्ये वरछत्रोपशोभितः ॥ १ ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र कश्चिद्दूतः समाययौ । नत्वा सभायां श्रीरामं स्वामिवृत्तं न्यवेदयत् ॥ २ ॥
पूर्वदेशाधिपतिना राज्ञा श्रीभूरिकीर्तिना । प्रेषितोऽस्मि महाराज द्रष्टुं त्वत्पादपंकजे ॥ ३ ॥
पत्रं पठित्वा श्रीराम कार्या मत्स्वामिने कृपा । इत्युक्त्वा रामदूतस्य करे पत्रं समर्पयत् ॥ ४ ॥
रामदूतोऽपि सौमित्रेः पुरस्तात्पत्रमादरात् । स्थापयामास वेगेन गत्वा तस्थौ निजस्थलीम् ॥ ५ ॥
ततः स लक्ष्मणः पत्रं वरबन्धनवेष्टितम् । समुद्घाट्य राघवाग्रे पपाठ मंजुलस्वनः ॥ ६ ॥
हेमकृत्रिमपुष्पाद्यैरङ्कितं कुंकुमान्वितम् । दर्शनादेव मांगल्यसूचकं तोषकारकम् ॥ ७ ॥
उवाच पत्रलिखितैरक्षरैर्लक्ष्मणः शनैः । स्थितः श्रीरामपुरतो वरसिंहासनान्तिके ॥ ८ ॥

श्रीमान् श्रीराघवेन्द्रो जयतु दशशिरश्छेदनार्थं जगत्यां
कौसल्यायां नृपेशो दशरथतनयश्चेति नाम्नाऽवतीर्णः ।
तस्याहं भूरिकीर्तिः पदजलरुहयोर्गन्धमाघ्रातुकामः
कृत्वा नैज शिरस्तु भ्रमरवदनिशं प्रार्थनां प्रार्थयामि ॥ ९ ॥

श्रीरामदास बोले–एक दिन रामचन्द्र सभामें अपने राजसिंहासनपर बैठे थे। उनके ऊपर सुन्दर छत्र लगा हुआ था और उनके चारों ओर कितने ही मंत्री बैठे हुए थे। इसी समय एक दूत आया और वह अपने प्रभुका सन्देश सुनाने लगा। उसने कहा—पूर्व देशके अधिपति महाराज भूरिकीर्तिने आपके चरणोंका दर्शन करनेके लिए मुझे भेजा है। आप मेरे स्वामीपर कृपा करके यह पत्र पढ़ लीजिए। इतना कहकर उसने वह पत्र रामके दूतको दे दिया। उस दूतने लक्ष्मणके हाथमें दिया और प्रणाम करके चुपचाप बैठ गया ॥ १–५ ॥ लक्ष्मणने सुन्दर कपड़ेमें बँधे हुए उस पत्रको खोला और मधुर स्वरसे बाँचकर रामको सुनाने लगे। पत्रपर सुवर्णके फूल बने हुए थे और कुमकुमके छींटे पड़े थे। जिसे देखनेमात्रसे वह मांगल्यसूचक तथा आनन्ददायक प्रतीत होता था ॥ ६ ॥ ७ ॥ पत्रमें जो लिखा था, उसे रामके पास जाकर धीरे-धीरे लक्ष्मण सुनाने लगे–॥ ८ ॥ रघुवंशमें उत्पन्न श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो, जो राम रावणको मारनेके लिए दशरथके पुत्र

मम पौत्र्यावुभे राम चंपिका सुमतीति च । तयोः स्वयंवरार्थं ह्यायाताश्च बहवो नृपाः ॥१०॥
बंधुपुत्रैर्बंधुभिस्त्वं स्वसुताभ्यां च मंत्रिभिः । सुहृज्जनैस्तथा पौरैः सावरोधः स्वसेनया ॥११॥
आगच्छस्व मम पुरं मयि कृत्वा महत्कृपाम् । विफलां प्रार्थनां मे त्वं मा कुरुष्व त्विमां प्रभो ॥१२॥
इति पत्रार्थमाकर्ण्य स्वस्थचित्तो रघूत्तमः । स्वयंवरं ततो गन्तुं गुरुणा निश्चयं व्यधात् ॥१३॥
ततोऽब्रवीत्स सौमित्रिमद्य सेनां प्रचोदय । श्वोऽहं गच्छामि पुत्राभ्यां त्वया मंत्रिजनैः सह ॥१४॥
भरतेनापि युष्माकं पुत्रैः शत्रुघ्नसंयुतः । स्वयंवरं सावरोधः पौरैर्जानपदैः सह ॥१५॥
विजयो नगरीं राज्यं पालितुं स्थापितो मया । अद्य वै वस्त्रगेहानि बहिर्नेयानि लक्ष्मण ॥१६॥
पंथानं शोधयंत्वद्य नानादूतास्त्वरान्विताः । गच्छन्तु सकला नार्यः पुष्पकेण विहायसा ॥१७॥
तथेति लक्ष्मणश्चोक्त्वा चकार स यथोदितम् । राघवेण सभामध्ये प्रबद्धकरसंपुटः ॥१८॥
ततो द्वितीयदिवसे प्रभाते रघुनन्दनः । स्नात्वा नित्यविधिं कृत्वा निनायाग्नीन् स पुष्पके । १९॥
स्थापयामास कुण्डेषु भुक्त्वा सह सुहृज्जनैः । ततः सीतां समाहूय त्वरयामास राघवः ॥२०॥
ततः स्त्रियस्तदा सर्वाः सीताद्या रुक्मभूषिताः । यानमारुरुहुः शीघ्रं दिव्यवस्त्रादिमण्डिताः ॥२१॥
ततो रामो गजारूढो वरछत्रोपशोभितः । ययावग्रे चामराद्यैर्वीजितश्च मुहुर्मुहुः ॥२२॥
रामाग्रे वारणारूढो ययौ शीघ्रं गुरुस्तदा । राघवस्य पृष्ठभागे करिस्थो लक्ष्मणो ययौ ॥२३॥
ततः कुशाद्यास्ते ह्यष्टौ बाला जग्मुर्गजस्थिताः । ततो भरतशत्रुघ्नौ जग्मतुर्गजसंस्थितौ ॥२४॥
ततः सर्वे मंत्रिणश्च पौरा जानपदादयः । नानावाहनसंस्थास्ते ययुः सर्वे त्वरान्विताः ॥२५॥
चतुर्दन्ते शुक्लवर्णे वारणैरावतोद्भवे । संस्थितो राघवो रेजे मुक्ताजालविराजिते ॥२६॥
एवं रामः शनैर्मार्गे वंदिमागधसंस्तुतः । शृण्वन् वाद्यनिनादांश्च ययौ पूर्वदिशं शनैः ॥२७॥

होकर कौसल्याकी कोखसे जन्मे हैं। मैं भूरिकीर्ति भ्रमरकी नाईं उनके चरणकमलोंको सूँघनेकी कामनासे रात-दिन प्रार्थना करता रहता हूँ ॥ ९ ॥ हे राम ! मेरी चम्पिका तथा सुमति नामकी दो पौत्रियाँ हैं। उनके स्वयंवरमें बहुतसे राजे आये हुए हैं। अतएव आपसे भी प्रार्थना है कि अपने भ्राताओं, पुत्रों, भ्राताओंके पुत्रों, मंत्रियों, मित्रों, घरकी नारियों, पुरवासियों तथा सेनाके साथ मेरे यहाँ पधारें। हे प्रभो ! मेरी इस प्रार्थनाको विफल मत कीजिएगा ॥ १०–१२ ॥ इस प्रकार उस पत्रकी बातोंको स्वस्थचित्त होकर रामचन्द्रजी-ने सुना और स्वयंवरमें जानेके लिए गुरु वसिष्ठसे निश्चय किया। इसके बाद रामने लक्ष्मणसे कहा कि आज सेना भेज दो। कल हम, तुम, लव, कुश, मंत्रियों, भरत तथा तुम लोगोंके पुत्रों, स्त्रियों तथा पुरवासियोंको साथ लेकर स्वयंवरमें चलेंगे। विजयको अयोध्या नगरी तथा देशकी रक्षाके लिए नियुक्त कर दिया जाय। हे लक्ष्मण ! तुम आज अभी तम्बू-कनात आदि भेज दो ॥ १३–१६ ॥ झटपट कुछ दूतोंको रास्ता साफ करनेके लिए आगे भेज दो। घरकी सारी स्त्रियोंको पुष्पक विमान द्वारा पहले ही भेज दो ॥ १७ ॥ लक्ष्मणने रामकी सब बातें मान लीं और जैसा उन्होंने कहा था, सो सब ठीक कर दिया ॥ १८ ॥ दूसरे दिन रामने सबेरे उठकर स्नान और नित्यकर्म करनेके अनन्तर सब भ्राताओंके साथ बैठकर भोजन किया। अग्निहोत्रकी अग्नि मँगवाकर पुष्पक विमानपर रखी ॥ १९ ॥ इसके बाद सीताको बुलाया और जल्दी तैयार होनेके लिये कहा ॥ २० ॥ सीता आदि नारियोंने सुनहले वस्त्र तथा आभूषण पहने और पुष्पक विमान-पर जा बैठीं ॥ २१ ॥ इसके बाद राम एक सुन्दर हाथीपर बैठकर चले। उस समय उनके ऊपर श्वेत छत्र लगा हुआ था और सेवक उनपर चँवर डुला रहे थे ॥ २२ ॥ सबसे आगे गुरु वसिष्ठका हाथी था, उनके पीछे राम और रामके पीछे लक्ष्मणका हाथी था ॥ २३ ॥ उनके पीछे कुश आदि आठों बच्चों और भरत-शत्रुघ्नका हाथी चल रहा था ॥ २४ ॥ इन सबके पीछे मन्त्री तथा पुरवासी अनेक प्रकारकी सवारियोंपर सवार होकर शीघ्रतासे चले जा रहे थे ॥ २५ ॥ रामचन्द्रजी ऐरावतके कुलमें उत्पन्न चार दाँतवाले तथा मोतियोंके झुब्बोंसे सुशोभित हाथीपर बैठे हुए बड़े सुन्दर लग रहे थे ॥ २६ ॥ इस तरह बन्दीजन-मागध आदिकोंके द्वारा

लवार्पितेक्षणां बालां सुनन्दा वाक्यमब्रवीत् । पश्यैनं बालिके बालं लवं श्रीराघवात्मजम् ॥३२॥
स्त्रीकामं स्वल्पवयसं सीतालालितमुत्तमम् । वाल्मीकिकृपया लब्धविद्यं रम्यं कुशानुजम् ॥३३॥
वृणोष्वैनं सुखेनैव कण्ठेऽस्य मालिकां कुरु । कुशांके चंपिकेयं ते स्वसा यद्वत्स्थिताऽद्य हि ॥३४॥
तथा त्वमपि भो मुग्धे लवांके संस्थिता भव । इति तस्या वचः श्रुत्वा सुनन्दायाः स्मिताननाः ॥३५॥
लवस्य कण्ठे हर्षेण लज्जयाऽवनताननाः । सुमतिर्निजबाहुभ्यामर्पयामास मालिकाम् ॥३६॥
तदा निनेदुर्वाद्यानि जगुस्ते गायकास्तदा । ननृतुर्वारनार्यश्च तुष्टुवुर्बन्दिमागधाः ॥३७॥
भूरिकीर्तिर्नृपस्तुष्टो लवांके सुमतिं तदा । शीघ्रं निवेशयामास परिपूर्णमनोरथः ॥३८॥
तोषमाप रघुश्रेष्ठः सीता प्रासादसंस्थिता । जालरंध्रैः सपत्नीकं लवं दृष्ट्वा तुतोष सा ॥३९॥
ततः सर्वान्नृपान् पूज्य भूरिकीर्तिर्नृपोत्तमः । प्रार्थयामास विनयवचनैस्तत्पुरतः स्थितः ॥४०॥
विवाहकौतुकं दृष्ट्वा भवद्भिर्गम्यतामिति । तथेति ते नृपाः प्रोचुर्ययुर्वासस्थलानि हि ॥४१॥
रामाग्रे संगरं कर्तुमसमर्था गतश्रियः । म्लानानना गतोत्साहाः कामबाणप्रपीडिताः ॥४२॥
रामोऽपि बन्धुभिर्बालैर्ययौ वासस्थलं मुदा । अथापरे दिने राजा भूरिकीर्तिः समाययौ ॥४३॥
पुरोधसोपविष्टः सन्नत्वा रामं वचोऽब्रवीत् । द्रष्टव्यो लग्नदिवसः सुमुहूर्तः सुखावहः ॥४४॥
मामंगीकुरु रामाद्य त्वत्पादाश्रयकामुकम् । उभयोस्त्वं मण्डपयोः कार्याण्याज्ञापय प्रभो ॥४५॥
तथेति राघवश्चोक्त्वा वसिष्ठं चोदयत्तदा । सोऽपि रामाज्ञया ज्योतिःशास्त्रज्ञः परिवेष्टितः ॥४६॥
मुहूर्तं कथयामास पञ्चमेऽहनि राघवम् । ततस्तुष्टो भूरिकीर्तिर्गणेशं लग्नपत्रिकाम् ॥४७॥

सुनन्दाको आगे चलनेका संकेत किया ॥ ३० ॥ इसी प्रकार सुबाहु, पुष्कर, तक्ष, चित्रकेतु तथा अंगदको छोड़ती हुई वह लवके पास पहुँची ॥ ३१ ॥ जब सुमति लवकी ओर देखने लगी तब सुनन्दा बोली—हे बाले! इस बालकको देख, यह रामका पुत्र है। यह अपना विवाह करना चाहता है। इसकी थोड़ी उमर है। सीताके द्वारा इसका पालन-पोषण हुआ है। वाल्मीकिकी कृपासे इसे उत्तम विद्या प्राप्त हुई है और यह कुशका छोटा भाई है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ तू सानन्द इसे अपना पति बनाकर इसके गलेमें वरमाला डाल दे, जिस तरह तुम्हारी बहिन चम्पिका कुशकी गोदमें बैठी है, उसी तरह ओ मुग्धे! तू भी लवकी गोदमें बैठ जा। इस प्रकार सुनन्दाकी बात सुनकर वह मुस्करायी और लज्जावश मस्तक झुकाकर उसने अपने हाथोंसे लवके गलेमें वरमाला डाल दी ॥ ३४–३६ ॥ उस समय अनेक प्रकारके बाजे बजे, गायकोंने गाने गाये, वेश्यायें नाचने लगीं और बन्दीजन स्तुति करने लगे ॥ ३७ ॥ महाराज भूरिकीर्तिने प्रसन्न होकर सुमतिको लवकी गोदमें बिठा दिया ॥ ३८ ॥ यह देखकर रामचन्द्रजी तथा अँटारीपर बैठी सीता दोनों प्रसन्न हुए। जब झरोखोंसे सीताने लवकी गोदमें सुमतिको बैठा देखा तो उनकी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं रहा ॥ ३९ ॥ इसके अनन्तर राजा भूरिकीर्तिने वहाँ आये हुए सब राजाओंकी पूजा करके विनयपूर्वक प्रार्थना की—॥ ४० ॥ अब आप लोग विवाहका भी उत्सव देखकर जाइएगा। राजाओंने भी उनकी बात स्वीकार कर ली और अपने-अपने डेरेपर चले गये ॥ ४१ ॥ वे सब राजे रामसे युद्ध करनेमें असमर्थ थे। अतएव उनकी श्री नष्ट हो गयी थी, मुख कुम्हला गया था, उत्साह भंग हो गया था और बेचारे कामके बाणोंसे पीडित हो रहे थे ॥ ४२ ॥ राम भी अपने भाइयों और बच्चोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक डेरेपर गये। इसके बाद दूसरे दिन राजा भूरिकीर्ति रामके पास पहुँचे ॥ ४३ ॥ पुरोहित उनके साथ था। वे रामके समक्ष बैठे और कहा कि कोई अच्छा लग्न-दिवस तथा सुखदायक मुहूर्त विचारिए। फिर कहा—हे राम! अपने चरणोंके भक्त मुझ दासकी प्रार्थनाको अङ्गीकार करके दोनों मण्डपोंके लिए जो कार्य करने हों, उनके लिए आज्ञा दीजिए ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ "अच्छा" कहकर रामने वसिष्ठकी ओर संकेत किया। वसिष्ठने रामकी आज्ञासे ज्योतिषशास्त्रको जाननेवाले कितने ही पंडितोंके साथ विचार करके उसके पाँचवें दिन विवाहका शुभ मुहूर्त बतलाया। इसके अनन्तर प्रसन्न मनसे भूरिकीर्तिने गणेशजी, लग्नपत्रिका, गणकों, पण्डितों, वैदिक आदिकों तथा रामके साथवाले बंधुजनों और

काचित्त्यक्त्वा भोजनं तु काचित्पाकस्य सत्क्रियाम् ।
काचित्सकबरीहस्ता मुक्तकेशा ययौ जवात् ॥४६॥
पतिनालिंगिता काचिन्निष्कास्य स्वपतेः करम् । ययौ वेगेन ललना वरप्रासादमस्तकम् ॥४७॥
क्षालयन्ती पतेः पादावेकं प्रक्षाल्य कामिनी । यावज्जग्राह साऽन्यं तु तावच्छ्रुत्वा समागतम् ॥४८॥
सीतया रामचंद्रं हि शीघ्रं दुद्राव सा तदा । काचिद्भर्त्रा चुम्बमाना दूरं कृत्वा पतेर्मुखम् ॥४९॥
दुद्राव राघवं द्रष्टुं प्रासादे स्रस्तपल्लवा ।काचिद्विनिद्रिता भर्त्रा त्यक्त्वा निद्रां त्वरान्विता॥५०॥
विस्तीर्णकज्जला मन्दनेत्रा निद्रामरान्विता । नेत्राभ्यां कुंचितान् केशान् वारयंती जवाद्ययौ ॥५१॥
त्यक्त्वाऽभ्यंगं हि काचित्सा कुर्वन्तं करसन्निधिम् । ययौ वेगेन प्रासादं श्रुत्वा राघवमागतम् ॥५२॥
काचिद्भुजे कञ्चुकीं सा कृत्वैके चापरे भुजे । कर्तुकामा ययौ शीघ्रं तथैव प्रमदोत्तमा ॥५३॥
काचिदेके पदे कृत्वा नूपुरादीनि भामिनी । अपरे कर्तुकामा सा तथैवाट्टालमाययौ ॥५४॥
कथयती शुभां वार्तां स्वपत्युः पुरतः स्थिता । श्रुत्वा रामं समायान्तं दुद्राव गजगामिनी ॥५५॥
काचिन्निजपतिं पात्रे कुर्वन्ती परिवेषणम् ।भूमौ त्यक्त्वाऽन्नपात्रं सा ययौ रामं निरीक्षितुम्॥५६॥
काचित्स्नात्वा दिव्यवस्त्रा कुर्वती सा प्रदक्षिणाः । तुलसीं च महादेवं श्रुत्वा रामं ययौ जवात् ॥५७॥
काचिद्रज्जुघटं कूपे कृत्वा तोयार्थमुद्यता । त्यक्त्वा रज्जुघटं कूपे दुद्रावेंदुनिभानना ॥५८॥
काचित्स्वबालकं स्तन्यं रहः पाययती वधूः । कुचयोर्बालकं धृत्वा तथैव सा ययौ जवात् ॥५९॥
काचित्सा परिधायाथ वस्त्रं कच्छं करेण सा । कर्तुकामा ययौ वेगात्तथैवाट्टालमस्तकम् ॥६०॥
एवं कर्माण्यनेकानि कुर्वत्यस्ताः पुरस्त्रियः । विहाय तानि सर्वाणि ययौ रामं निरीक्षितुम् ॥६१॥
दृष्ट्वा रामं गजस्थं ता ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः । ऊचुः परस्परं नार्यः शतशोऽट्टालसंस्थिताः ॥६२॥
धन्या सा रामजननी कौसल्या या रघूत्तमम् । सुषुवे राजराजानं परिपूर्णमनोरथा ॥६३॥

भोजन करती थी और कोई भोजन बना रही थी। सो उसको ज्योंका त्यों छोड़कर भागी। कोई बालोंको सँवार रही थी, वह केशोंको हाथमें थामे ही दौड़ पड़ी। किसीका पति आलिंगन कर रहा था। इतनेमें रामका आगमन सुना तो स्वामीका हाथ झिड़ककर दौड़ आयी। कोई अपने पतिके पैर धो रही थी, उसने एक पैर धोकर दूसरा पकड़ा ही था कि उसे खबर लगी कि सीताके सहित राम आ रहे हैं, वह तुरन्त दौड़कर प्रासादपर चढ़ गयी। कोई पतिके साथ शय्यापर सोयी थी ॥४४-५०॥ इससे उसकी आँखोंका काजल मुँहभरमें पुत गया, वह भी यह समाचार पाते ही आँखोंके सामनेवाले बालोंको हटाती हुई दौड़ी ॥ ५१ ॥ कोई उबटन लगा रही थी, वह एक हाथसे साड़ी सम्हालती हुई दौड़ पड़ी । किसीका पति कामोन्मत्त होकर आलिंगन करना चाहता था। वह भी एक हाथसे साड़ी सम्हालती हुई चली आयी ॥ ५१ ॥ ५३ ॥ कोई कामिनी नूपुर पहन रही थी। वह केवल एक ही पैरमें उसे पहनकर अपनी अँटारीपर दौड़ पड़ी ॥५४॥ कोई पतिसे बातें कर रही थी। वह जहाँतक बात कर चुकी थी, वहाँ ही छोड़कर दौड़ आयी ॥ ५५ ॥ कोई पतिके लिए भोजन बना रही थी, वह भी पात्रको ज्योंका त्यों छोड़कर रामको देखने लिए दौड़ पड़ी ॥ ५६ ॥ कोई स्नान करके तुलसी तथा महादेवकी प्रदक्षिणा कर रही थी, वह भी रामका आगमन सुनकर उसे अधूरा ही छोड़कर भाग चली ॥ ५७ ॥ कोई चन्द्रमुखी रमणी कुएँपर पानी भरने गयी थी, वह रस्सी और घड़ा कुएँमें ही फेंककर चल पड़ी ॥५८॥ कोई एकान्तमें बच्चेको दूध पिला रही थी, वह बालकको लिये हुए ही दौड़ आयी ॥ ५९ ॥ कोई भोजन आदिके कामोंसे निबटकर अँटारीपर जाना चाहती थी, वह आधे कपड़े पहने हुए ही चली आयी ॥६०॥ इस प्रकार अनेक तरहके कामोंको करती हुई स्त्रियाँ अपना-अपना काम छोड़कर रामके दर्शनके लिए छज्जों और छतोंपर आ खड़ी हुईं ॥ ६१ ॥ हाथीपर बैठे हुए रामको देखकर स्त्रियाँ उनपर फूलोंकी वर्षा करती हुई आपसमें इस प्रकार बातें करती थीं—॥६२॥ रामकी माता कौसल्या धन्य

काश्चिदूचुश्च सा धन्या सीता जनकनंदिनी । यस्या विंबाधररसमुररीकुरुतेऽत्र सः ॥६४॥
काश्चिदूचुस्तया तप्तं जानक्या दुष्करं तपः । पूर्वजन्मनि यत्पुण्याद्राजराजप्रियाऽभवत् ॥६५॥
काश्चिदूचुर्वयं मन्दभाग्यास्तु जगतीतले । सीतादास्यो न जाताः स्म रामसेवातत्पराः ॥६६॥
इति नानाविधा वाचस्तासां शृण्वन् रघूत्तमः । ययौ स राजमार्गेण नृपकल्पितमन्दिरम् ॥६७॥
तत्रावरुह्य नागेन्द्राद्विवेश वरमंदिरम् । तस्थौ सुखेन जानक्या बंधुभिर्बालकैः प्रभुः ॥६८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विवाहकाण्डे
स्वयंवरार्थं भूरिकीर्तेः पुरं प्रति श्रीरामगमनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

(राजा भूरिकीर्तिकी पुत्री चम्पिकाका स्वयंवर)

श्रीरामदास उवाच

अथापरदिने रामं भूरिकीर्तिः समाययौ । नत्वा प्राह रघुश्रेष्ठ सभामागन्तुमर्हसि ॥ १ ॥
तथेति राघवश्चोक्त्वा बालकैः रुक्मभूषितैः । रुक्मतन्तूद्भवश्रेष्ठकंचुकोष्णीषमण्डितः ॥ २ ॥
ऊरू पिधाय त्रिमुखैः कटिबंधोत्तरायकैः । भूषितैरष्टभिः शीघ्रं शिबिकास्थैः समाययौ ॥ ३ ॥
सभायां ये नृपाः पूर्वमासनेषु च संस्थिताः । श्रुत्वा रामं समायांतं सभ्रमात्तत्पुरो ययौ ॥ ४ ॥
चक्रुः सर्वे राघवाय प्रणामान्पार्थिवोत्तमाः । तेषां नामानि रामाय दीर्घशब्दैः पृथक् पृथक् ॥ ५ ॥
चित्रोष्णीषा रामदूताः प्रोचुर्वै वेत्रपाणयः । वस्त्रालंकारभूषाभिर्भूषिता मुदिताननाः ॥ ६ ॥
राजराज नृपश्चायं कर्णाटविषये स्थितः । विजयस्ते प्रणामांश्च करोति त्वं विलोकय ॥ ७ ॥
राघवेंद्र नृपश्चायं श्रीमान् द्रविडदेशजः । कंबुकण्ठो प्रणामांस्ते करोति त्वं विलोकय ॥ ८ ॥
दीनानाथ नृपश्चायं विदर्भविषये स्थितः । अंगनाथः प्रणामांस्ते करोति त्वं विलोकय ॥ ९ ॥

है, जिन्होंने राजाधिराज राम जैसे पुत्रको जन्म दिया ॥ ६३ ॥ कोई कहने लगीं कि जनकनन्दिनी सीता धन्य हैं कि रामचन्द्रजी जिनके अधररसका पान करते हैं ॥ ६४ ॥ कोई बोलीं—ज्ञात होता है कि सीताने पूर्वजन्ममें दुष्कर तपस्या की थी, जिसके प्रभावसे वे आज राजराज रामचन्द्रकी प्रिया वधू बनी हैं ॥ ६५ ॥ कुछ स्त्रियाँ कहने लगीं कि हम लोग बड़ी अभागिनी हैं, जो सीताकी दासी होकर भी रामकी सेवा नहीं कर सकीं ॥ ६६ ॥ इस तरह नाना प्रकारकी बातें सुनते हुए रामचन्द्रजी राजमार्गसे चलकर हाथीसे उतरे और राजा भूरिकीर्ति द्वारा सजाये हुए भवनमें गये और सीता, भ्राताओं तथा बालकोंके साथ टिके ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गत श्रीमदानन्दरामायणे विवाहकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीरामदास बोले-इसके बाद दूसरे दिन राजा भूरिकीर्ति स्वयं रामके पास पहुँचे और प्रणाम करके कहने लगे—हे रघुश्रेष्ठ ! अब सभामें चलिए । "अच्छा" कहकर रामने भी सुवर्णके अनेक आभूषण पहने, सुवर्णके सूतसे बने अच्छे-अच्छे वस्त्र धारण किये, परतलेसे सज्जित कमरबन्द कसा और शिबिकापर बैठकर आठों बालकोंके साथ सभाभवनकी ओर चले ॥ १–३ ॥ जो राजे पहले ही से सभामें आकर बैठे हुए थे, वे रामका आगमन सुनकर अकचका उठे और रामके सामने जा पहुँचे ॥ ४ ॥ उन्होंने भगवानको प्रणाम किया । रङ्ग-बिरङ्गी पगड़ियाँ बाँधे और हाथमें बेंत लिये हुए रामके दूत जोर-जोरसे बोलकर इस प्रकार उनका नाम बतलाने लगे—हे राजाओंके भी राजा राम ! देखिए, कर्णाटक देशका रहनेवाला यह विजय नामका राजा आपको प्रणाम कर रहा है ॥५–७॥ इधर देखिए, हे राघवेन्द्र ! यह द्रविड़ देशका निवासी कम्बुकण्ठ नामका राजा आपको प्रणाम कर रहा है । हे दीनाथ ! यह विदर्भ देशका अधिपति अंगनाथ नामका राजा आपको

महाराज नृपश्चायं मागधे विषये स्थितः । परंतपः प्रणामांस्ते करोति त्वं विलोकय ॥१०॥
सीताकांत नृपश्चायमवंतिस्थः प्रतापवान् । उग्रबाहुः प्रणामांस्ते करोति त्वं विलोकय ॥११॥
रघुवीर नृपश्चायं स्थितो हैहयपत्तने । प्रतीपस्ते प्रणामांश्च करोति त्वं विलोकय ॥१२॥
हे राम नृपतिश्चायं शूरसेने स्थितो महान् । सुषेणस्ते प्रणामांश्च करोति त्वं विलोकय ॥१३॥
कोसलेंद्र नृपश्चायं हरिद्वारस्थितो महान् । नीपान्वये यज्ञकीर्तिः करोति नमनं तव ॥१४॥
अयोध्येश नृपश्चायं कलिंगविषये स्थितः । हेमांगदस्तटेऽब्धेश्च करोति नमनं तव ॥१५॥
रावणारे नृपश्चायं नागपत्तनसंस्थितः । पांड्योऽयं मतिमान् शूरः करोति नमनं तव ॥१६॥
एवं तेषां प्रणामांश्च मानयन् स्वेक्षणादिभिः । विवेश बंधुभिर्बालैः सभायां मन्त्रिभिः प्रभुः ॥१७॥
तत्र सिंहासने दिव्ये पश्चिमायां ततो हरिः । उपाविशत्स पूर्वास्यश्छत्रचामरमण्डितः ॥१८॥
रामस्य सव्ये सौमित्रिकैकेयतनयाः स्थिताः । तस्थुस्तथा रामवामे कुशाद्या मंत्रिबालकाः ॥१९॥
शत्रुघ्नसव्ये संतस्थुः सुमंत्राद्याः सुमन्त्रिणः । सभायामुत्तरे याम्ये पंक्तौ सर्वे नृपादिकाः ॥२०॥
नेमिरेखोपमास्तस्थुः स्वसुहृत्पुत्रमन्त्रिभिः । पश्चिमाभिमुखाः सर्वा ननृतुर्वारयोषितः ॥२१॥
अट्टालसस्था विप्राद्या ददृशुः कौतुकं महत् । ततो नदत्सु वाद्येषु धूपेषु प्रज्वलत्सु च ॥२२॥
नर्तत्सु वारनारीषु गायत्सु मागधादिषु । स्तुवत्सु बंदिवृंदेषु सभायां नृपपौत्रिके ॥२३॥
शिबिकास्थे दिव्यवस्त्रदिव्यालंकारमण्डिते । नवरत्नमहामालाधृतरम्यकरोत्पले ॥२४॥
ते समाजग्मतू रम्ये सभाग्रस्थे विरेजतुः । तयोर्नेत्रकटाक्षैश्च भिन्नमर्मस्थला नृपाः ॥२५॥
बभूवुर्विकलाः सर्वे कामबाणैर्विशेषतः । न तदा लेभिरे शर्म शुष्ककण्ठौष्ठतालुकाः ॥२६॥
सभां तां चपिकानाम्नी वह्निकोणाद्विवेश ह । ईशकोणाच्च सुमतिः सभां तां संविवेश ह ॥२७॥

प्रणाम करता है, इसे देखिए ॥ ८ ॥ ९ ॥ हे महाराज ! देखिये, मगध देशका रहनेवाला यह परन्तप नामक राजा आपको प्रणाम करता है ॥ १० ॥ हे सीताकान्त ! अवन्तिदेशका निवासी और महाप्रतापशाली यह उग्रबाहु नामक राजा आपको प्रणाम कर रहा है ॥ ११ ॥ हे रघुवीर ! यह हैहयनगरका रहनेवाला प्रतीप नामक राजा आपको प्रणाम करता है ॥ १२ ॥ हे राम ! शूरसेन नगरका रहनेवाला यह सुषेण नामक राजा आपको प्रणाम करता है । हे कोसलेन्द्र ! यह हरिद्वारका रहनेवाला नीपवंशज यज्ञकीर्ति नामक राजा आपको प्रणाम कर रहा है ॥१३॥१४॥ हे अयोध्येश ! समुद्रतटस्थ कलिंग देशमें रहनेवाला यह हेमांगद नामका राजा आपको प्रणाम करता है । हे रावणारे ! नागपत्तनका रहनेवाला बुद्धिमान् तथा अति पराक्रमी पाण्ड्य नामक राजा आपको प्रणाम कर रहा है ॥ १५ ॥ १६ ॥ रामचन्द्रजी सबकी ओर निहार तथा संकेत आदिसे लोगोंके प्रणाम स्वीकार करके अपने भ्राताओं और बालकोंके साथ सभाभवनमें पधारे । वहाँ पश्चिमकी तरफ रखे हुए एक दिव्य सिंहासनपर पूर्वकी ओर मुख करके बैठे । उस समय भी उनके ऊपर छत्र लगा था और चमर चल रहे थे ॥ १७ ॥ १८ ॥ रामकी दाहिनी बगलमें लक्ष्मण भरत आदि भ्राता बैठे । बायीं ओर कुश आदि सब लड़के तथा मंत्रिपुत्र बैठे । शत्रुघ्नकी दाहिनी बगलमें सुमंत्रादि मन्त्री बैठे । सभाकी उत्तर ओर दक्षिणी पंक्तिमें गोलाकार बनाकर सब राजे सुहृत्-पुत्र तथा मन्त्रियोंके साथ बैठे थे और पश्चिमकी ओर मुख करके वेश्यायें नाच रही थीं ॥ १९-२१ ॥ अटारियोंपर बैठे हुए ब्राह्मण आदि नगरनिवासी वहाँका कौतुक देख रहे थे । इसके अनन्तर जब बाजे बजने लगे, चारों ओरसे धूपकी सुगन्धि उड़ने लगी, वेश्याएँ नाचने लगीं, मागध-नट आदि विविध प्रकारके गायन गाने लगे और बन्दीजन तरह-तरहकी स्तुति करने लगे । उसी समय शिबिकापर चढ़कर दिव्य वस्त्र तथा अलंकार पहिने, नवरत्नोंकी बनी एक बड़ी-सी माला हाथोंमें लिये वे दोनों सुन्दरी कन्यायें सभामें आ पहुँचीं । उनके नेत्रकटाक्षसे घायल तथा कामके बाणोंसे विदीर्णहृदय होकर कितने ही राजे विकल हो गये । उनके होंठ और तालु सूख गये । उस समय कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था । उस सभामें अग्निकोणसे चम्पिका तथा ईशानकोणसे सुमति नामवाली कन्या प्रविष्ट हुई

अथोपमाता वृद्धा सा धृतहस्ताग्रयष्टिका । सभायां चंपिकानाम्न्यै दक्षिणस्थान्पृथक् पृथक् ॥२८॥
क्रमेण वर्णयामास तदा नृपतिसत्तमान् । तथाऽन्या च सभाग्राच्च धृतहस्ताग्रयष्टिका ॥२९॥
सुनन्दाख्याऽतिजरठा सुमत्यै नृपतीन्क्रमात् । वर्णयामासोत्तरस्थानुपमाता पृथक् पृथक् ॥३०॥
अथ सा चम्पिकां प्राह नीत्वा तां नृपतेः पुरः । शिबिकास्थां चोपमाता नन्दा चामरवीजिता ॥३१॥
राजकन्ये चंपिकेऽत्र शृणुष्व वचनं मम । एनं नृप वर्णयामि पश्य त्वं मदनोपमम् ॥३२॥
पांड्योऽयं मतिमान्नाम्ना नागपत्तनसंस्थितः । शूरो रथी नृपश्रेष्ठः प्रजापालनतत्परः ॥३३॥
यदि ते रोचते चित्ते वरयैनमनुत्तमम् । अस्य त्वं महिषी भूत्वा नागपत्तनसंस्थिता ॥३४॥
क्रीडस्व मुदिताऽनेन वरप्रासादराजिषु । नन्दोक्तं चंपिका श्रुत्वा द्व्यर्थं वाक्यमनुत्तमम् ॥३५॥
न बबन्ध मनस्तस्मिन्नृपतौ मतिमत्तरा । चोदयामास नन्दां तामग्रे गन्तुं नृपान्तरम् ॥३६॥
तदाऽन्यं नृपतिं नन्दा नीत्वा तां शिबिकास्थिता । चंपिकां प्राह वेनेन पश्यैनं बालिके नृपम् ॥३७॥
कलिङ्गविषयस्थोऽयं नाम्ना हेमाङ्गदो महान् । कोटिशो वारणेन्द्राणां अस्य गण्डस्थलादिषु ॥३८॥
मुक्ताजालातिगुच्छाश्च राजन्ते कमलानने । [illegible] त्वं महिषी भूत्वा गवाक्षैः सागरस्य च ॥३९॥
पश्यन्ती कौतुकं बाले करोषि क्रीडनादिकम् । अस्य स्त्रीवृन्दमध्ये त्वं भव मुख्याऽद्य कन्यके ॥४०॥
इत्युक्ताऽपि तथा तन्वी नन्दया चंपिका नृपे । तस्मिन् मनो न बबन्धान्यं गन्तुं तामचोदयत् ॥४१॥
सपत्नीभयमालक्ष्य सपत्नीकस्त्यजिष्यति । अमहानिति वाक्ये नन्दया सूचिताऽपि सा ॥४२॥
ततोऽन्यं नृपतिं गत्वा नन्दा प्रोवाच चंपिकाम् । पश्यैनं नृपतिं मुग्धे हरिद्वारनिवासिनम् ॥४३॥
नीपान्वयसमुद्भूतं ह्यब्धाविव निशाकरम् । यज्ञानां नृपतेरस्य कीर्त्या जगति मण्डले ॥४४॥
यज्ञकीर्तिरिति ख्यातः पृथ्वीशः प्रमदाप्रियः । वरयैनं नृपं पुत्रि रुक्मभूषणभूषितम् ॥४५॥

॥ २२–२७ ॥ चम्पिकाके साथ एक उपमाता (धाई) सुनन्दा थी, जो हाथमें एक छोटी-सी छड़ी लिये थी। वह दक्षिणकी तरफ बैठे राजाओंका वर्णन करने लगी ॥ २८–३० ॥ सुनन्दा चम्पिकाको एक राजाके सामने लायी। उस समय भी चम्पिका पालकीपर बैठी थी और उसपर चमर चल रहे थे ॥ ३१ ॥ सुनन्दा चम्पिकाका सम्बोधन करके कहने लगी—हे राजकन्ये चम्पिके! मेरी बात सुनो—देखो, यह कामदेवके समान सुंदर अति बुद्धिमान् पाण्ड्य नामक राजा नागपत्तनका रहनेवाला, बड़ा पराक्रमी, रथी, सब राजाओंमें श्रेष्ठ और प्रजापालनमें तत्पर है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ यदि तुम्हें अच्छा लगे तो इसीको पसन्द कर लो। तुम इसकी राजरानी बनकर नागपत्तनमें आनन्दके साथ अच्छे-अच्छे महलोंमें क्रीड़ाएं करोगी। सुनन्दाकी ये बातें उसे द्व्यर्थक तथा व्यर्थ-सी जान पड़ीं। उस राजापर उसका तबीयत नहीं डटी और दूसरे राजाके पास चलनेका संकेत किया ॥ ३४–३६ ॥ फिर सुनन्दा शिबिकामें बैठी चम्पिकाको दूसरे राजाके सामने ले जाकर कहने लगी ॥ ३७ ॥ हे बालिके! इसे देखो, यह महान् कलिंग देशका रहनेवाला हेमाङ्गद नामका राजा है। इसके गण्डस्थलपर हाथियोंकी गजमुक्ताओंसे बने गुच्छे लटकते रहते हैं। इसकी रानी बनकर तुम महलोंकी खिड़कियोंसे समुद्रकी लहरोंके कौतुक देखती हुई विहार करोगी। बस, अब इसे पसन्द करके तुम इसकी समस्त स्त्रियोंकी प्रधान बन जाओ ॥ ३८–४० ॥ इतना कहने-सुननेपर भी उसका मन उस राजापर नहीं जमा और आगे बढ़नेका संकेत किया ॥ ४१ ॥ क्योंकि चम्पिकाको यह ख्याल हुआ कि इसके यहाँ सपत्नी (सौत) का डर है। दूसरे "अमहान्" शब्दका प्रयोग करके नन्दाने भी थोड़ा-सा संकेत कर दिया था ॥ ४२ ॥ इसके अनन्तर दूसरे राजाके पास पहुँचकर नन्दा कहने लगी—हे मुग्धे! इस राजाको देखो, यह हरिद्वारका निवासी है ॥ ४३ ॥ जैसे समुद्रसे चन्द्रमाकी उत्पत्ति हुई है, उसी प्रकार यह पवित्र नीप राजाके वंशमें उत्पन्न हुआ है। अनेक यज्ञोंको करनेसे जगत् भरमें इसकी कीर्ति फैल चुकी है ॥ ४४ ॥ इसीलिए लोग इसे यज्ञकीर्ति कहते हैं। सुवर्णके आभूषणोंसे मण्डित इस राजाको तुम वर लो। यह विस्तृत भूभागका मालिक है और

अस्याद्य महिषी भूत्वा गङ्गावीचिपरम्पराः । नौकास्था पश्यसि त्वं हि वरयैनं नृपोत्तमम् ॥४६॥
अस्य पत्नी वरिष्ठा त्वं भव माऽग्रे व्रजावले । इत्युक्ताऽपि तया तस्मिन्न बबन्ध निजं मनः ॥४७॥
त्वं वरिष्ठा मा भवेति नन्दयाऽग्रे व्रजेरिता । चोदयामास सा नन्दामग्रे गन्तुं नृपांतरम् ॥४८॥
नन्दाऽप्यन्यं नृपं नीत्वा चपिकां प्राह वेगतः । पश्यैनं नृपतिं मुग्धे शूरसेनाह्वये वरे ॥४९॥
देशे करोति वै राज्यं सुषेणोऽयमनुत्तमः । तुरगा वायुवेगाश्च यस्य पत्न्यो मृगीदृशः ॥५०॥
यस्यांगणे वारनारीनृत्यघोषस्त्वहर्निशम् । वरयैन चंपिकेऽद्य तवाननवदाननम् ॥५१॥
अस्य त्वं महिषी भूत्वा जन्मसाफल्यतां कुरु । वारस्त्रीलंपट श्रुत्वा तथा वाक्यमनुत्तमम् ॥५२॥
न बबन्ध मनस्तस्मिन्नृपतौ तां प्रचोदयत् । अथ सा चोदिता नन्दा तयाऽन्यं नृपतिं क्षणात् ॥५३॥
निनाय शिबिकास्थां तां चपिकामाह सादरम् । पश्यैन नृपतिं बाले स्थितं हैहयपत्तने ॥५४॥
सहस्रार्जुनवंशस्य भूषणं कमलोपमम् । प्रतीप इति नाम्नाऽयं ख्यातः शूरो महारथी ॥५५॥
वरयैनं नृपं माऽन्यं गच्छ हेमस्वरूपिणि । अस्य त्वं महिषी भूत्वा रेवायां पतिना सह ॥५६॥
करिष्यसि जलक्रीडां चम्पिके शृणु मद्वचः । इत्युक्ताऽपि तया तन्वी न बबन्ध मनो नृपे ॥५७॥
वरयैनं नृपं मेति नन्दास्यादमहारथी । नृपोऽयं चेति वाक्ये द्वे श्रुत्वा द्व्यर्थविदुत्तमा ॥५८॥
एवं नानानृपाणां सा वर्णनानि पृथक् पृथक् । स्तुतिरूपनिषेधानि शुश्रूषती नृपात्मजा ॥५९॥
जगाम शिबिकासंस्था सनन्दा भरतानुजम् । सुमन्त्रादीनतिक्रम्य श्रुत्वा श्रीराममन्त्रिणा ॥६०॥
ततः प्रोवाच सा नन्दा पश्यैनं भरतानुजम् । कोसलेन्द्रस्य रामस्य बन्धुमेकोदरोपमम् ॥६१॥
अयोध्यावासिनं रामराजवाक्यानुवर्तिनम् । वरयैनं चम्पिकेऽद्य श्रुतकीर्त्याः स्वसा भव ॥६२॥
इत्युक्तापि तया तन्वी शत्रुघ्ने निजमानसम् । न बबन्ध भुवा संज्ञामग्रे गतुं चकार ताम् ॥६३॥

स्त्रियोंसे बड़ा प्रेम करता है। आज यदि तुम इसके साथ ब्याह कर लोगी तो नावपर बैठकर गङ्गाजीकी अपूर्व लहरियोंको देखोगी। मेरी बात मान लो और इसे अपना पति स्वीकार करो। अब आगे मत बढ़ो। ऐसा कहनेपर भी उसका मन उस राजापर नहीं रमा और आगे चलनेका संकेत किया ॥ ४५-४८ ॥ सुनन्दा भी दूसरे राजाके सम्मुख पहुँचकर कहने लगी—हे मुग्धे! इस राजाकी ओर देखो। यह शूरसेन नामक देशमें रहता हुआ राज करता है। इसका सुषेण नाम है। वायुके समान वेगवाले बहुतसे घोड़े इसके पास हैं। कितनी ही मृगीकी तरह नेत्रोंवाली स्त्रियाँ भी इसके यहाँ हैं। इसके आँगनमें सदा वेश्यायें नाचती रहती हैं। हे चम्पिके! तू इसे पसन्द कर ले। देख, तेरे ही मुखके समान इसका भी मुँह है। राजमहिषी बनकर तू अपना जीवन सुफल कर ले। उस राजाको वेश्यालम्पट जानकर चम्पिकाका मन उस राजापर भी नहीं रमा और नन्दाको आगे चलनेके लिए संकेत किया। उसके संकेतसे नन्दा चम्पिकाको साथ लिये क्षण भरमें एक दूसरे राजाके पास पहुँचकर बोली—हे बाले! इस राजाको देखो, यह हैहयपत्तनका रहनेवाला, कमलके सदृश कोमल तथा सहस्रार्जुनका वंशज है। यह बड़ा योद्धा एवं महारथी है और 'प्रतीप' इस नामसे विख्यात है। ॥ ४९-५५ ॥ इसको वरकर तू अपने योग्य सम्मान्य पदपर पहुँचेगी। इसकी महिषी बनकर तू पतिके साथ नर्मदानदीमें सानन्द विहार करेगी ॥ ५६ ॥ इतना कहनेपर भी वह चम्पिकाको अच्छा नहीं लगा। क्योंकि नन्दाने भी कहा था— एनं नृपं मा वर' यानी 'इसे मत पसन्द कर' दूसरे 'अमहारथी' शब्दसे भी तिरस्कार ही किया था। इसलिए वह भी अच्छा नहीं लगा। नन्दाके द्व्यर्थक वाक्योंको वह खूब समझती थी ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ इस प्रकार अनेक राजाओंके पृथक् पृथक् वर्णन तथा स्तुतिके अन्तर्गत निषेधवाक्योंको सुनती हुई पालकीपर बैठी ही चम्पिका रामके मन्त्री सुमन्त्रादिकोंको लाँघकर शत्रुघ्नके पास पहुँची ॥ ५९ ॥ ६० ॥ नन्दाने कहा—ये भरतके छोटे भाई हैं, किन्तु रामके सगे भाई जैसे मालूम पड़ते हैं ॥ ६१ ॥ ये अयोध्यामें रहते हैं और राजा रामकी आज्ञाओंका पालन करते हैं। चम्पिके! तू इन्हींके साथ विवाह करके श्रुतकीर्तिकी बहिन बन जा ॥ ६२ ॥ इतना कहनेपर भी शत्रुघ्नमें उसका मन नहीं

ततः सा भरतं नीत्वा नन्दा तामाह मंजुलम् । शत्रुघ्नस्याग्रगं चैनं कैकेय्या जठरोद्भवम् ॥६४॥
रामसेवारतं शांतं युवानं दयिताप्रियम् । वरयैनं वालिकेऽद्य मांडव्या सरयूजले ॥६५॥
करिष्यसि जलक्रीडां नौकास्था भरतेन हि । ततस्तत्संज्ञया नन्दा लक्ष्मणं चंपिकां जवात् ॥६६॥
नीत्वा सौमित्रिकीर्तिं तां वर्णयामास सादरम् । पश्यैनं लक्ष्मणं वाले सुमित्राजठरोद्भवम् ॥६७॥
अयोध्यावासिनं रामसेवासक्तं मनोहरम् । वरयैनं चंपिकेऽद्य मेघनादप्रमर्दनम् ॥
शेषांशसंभवं चोर्मिलाया वीरस्वसा भव ॥६८॥
सर्वान् श्रुत्वा रामसेवासक्तान् पत्नीयुतानपि । छत्रचामरहीनांश्च रोचयामास तान्न सा ॥६९॥
ततस्तत्संज्ञया नन्दा श्रीरामाग्रे स्वयंवरम् । नीत्वा तामाह मधुरं स्तोतुं तं रघुनन्दनम् ॥७०॥
महत्ते चंपिके दैवं येन पश्यसि राघवम् । धन्योऽहमपि या रामं दृष्ट्वा स्तोतुं पुरः स्थिता ॥७१॥
क्वाहं मंदमतिर्नारी क्व रामो गुणसागरः । नाहं तत्स्तवने शक्ता वाल्मीकिर्यत्र कुण्ठितः ॥७२॥
शतकोटिमितैः श्लोकैश्चरित्रं राघवस्य च । मुनिना वर्णितं तच्च शतकोट्यंशवर्णितम् ॥७३॥
तस्याहं वर्णनं किञ्चित्करोमि यच्छृणुष्व तत् । सूर्यवंशभूषणं श्रीदशरथनृपात्मजम् ॥७४॥
कौसल्यातनयं रामं साक्षान्नारायणं विभुम् । ताटिकान्तकरं वीरं गाधिजाध्वरपालकम् ॥७५॥
अहल्योद्धारिणं श्रेष्ठं शिवचापैकखण्डनम् । जानकीवल्लभं रम्यं जामदग्न्यदवानलम् ॥
नृपवृंदैकजेतारं भरतप्राणदायिनम् ॥७६॥
ताताज्ञापालकं भ्रात्रा सीतयाऽरण्यवासिनम् । विराधमर्दनं श्यामं खरदूषणमर्दनम् ॥७७॥
त्रिशिरामृगमारीचकबन्धवालिमर्दनम् । समुद्रबंधनं लंकाराक्षसान्तकरं प्रभुम् ॥७८॥
रावणांतप्रकर्तारं सीतया राज्यकारिणम् । तीर्थयज्ञप्रकर्तारं सीताक्रीडनतत्परम् ॥७९॥

लगा और आगे चलनेका संकेत किया ॥ ६३ ॥ इसके बाद नन्दा चम्पिकाको लिये हुए भरतके सामने पहुँचकर कहने लगी—ये शत्रुघ्नके बड़े भाई भरत कैकेयीके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं ॥ ६४ ॥ ये भी रामकी सेवा करते हैं। इन शान्त, युवा एवं दयिताप्रिय भरतको वर ले तो तू मांडवी तथा भरतके साथ सरयूके जलमें विहार करेगी। वे भी ठीक नहीं जँचे तो चम्पिकाका संकेत पाकर नन्दा लक्ष्मणके सामने पहुँची ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ वह चम्पिकासे कहने लगी–ये सुमित्राके गर्भसे उत्पन्न लक्ष्मण हैं। ये अयोध्यामें रहते हुए रामकी सेवा करते हैं। तू इन सुन्दर, मेघनादका नाश करनेवाले और शेष भगवान्‌के अंशसे उत्पन्न लक्ष्मणके साथ ब्याह करके उर्मिलाकी बहिन बन जा ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ सब भाइयोंको रामके सेवक, छत्रचमरविहीन तथा ब्याहे सुनकर उसने तीनों भाइयोंमेंसे किसीको भी नहीं पसन्द किया ॥ ६९ ॥ इसके बाद धात्रीके संकेत करनेपर वह आगे बढ़ती हुई रामचन्द्रजीके सामने जा पहुँची। तब धात्री रामकी स्तुति करती हुई इस तरह बोली–॥ ७० ॥ हे चम्पिके ! तुम्हारा अहोभाग्य है, जो तुम रामचन्द्रजीको देख रही हो और मैं भी धन्य हूँ, जो रामकी स्तुति करनेके लिए इनके सामने उपस्थित हुई हूँ ॥ ७१ ॥ कहाँ मैं एक मन्दमति नारी और कहाँ गुणोंके सागर रामचन्द्र। मैं इनकी स्तुति करनेमें कैसे समर्थ हो सकती हूँ, जब कि वाल्मीकि जैसे महान् कवि भी पूरी तौरसे वर्णन नहीं कर सके ॥ ७२ ॥ उन्होंने सौ करोड़ श्लोकोंमें जो वर्णन किया है, सो केवल उनके सौ करोड़ अंशोंकी स्तुति हुई है ॥ ७३ ॥ मैं अपनी बुद्धिके अनुसार थोड़ी-सी स्तुति कर रही हूँ, सो सुन। ये सूर्यवंशके भूषण, महाराज दशरथके पुत्र, कौसल्याके तनय और सर्वव्यापक साक्षात् नारायण हैं। इन्होंने दुष्ट ताड़काका वध करके विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा की है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ इन्होंने अहल्याको शापसे मुक्त किया और शिवधनुष तोड़ा है। ये सीताके वल्लभ, परशुरामके कोपरूपी वनके दवानल, राजाओंके समूहको जीतनेवाले तथा भरतके जीवनदाता हैं ॥ ७६ ॥ ये पिताकी आज्ञाका पालन करनेवाले, भाई तथा सीताके साथ वनोंमें रहनेवाले, विराधके नाशक, श्यामरूपधारी और खर-दूषणके नाशक हैं ॥ ७७ ॥ त्रिशिरा तथा मृगरूप धारण करनेवाले मारीचके वधकर्ता, कबन्ध तथा बालिको मारनेवाले, समुद्रमें सेतु बाँधनेवाले और लंकानिवासी राक्षसोंके विना-

जानकीत्यागकर्तारं सीताग्रहणतत्परम् । कुशलवात्मजाभ्यां च राज्यर्थं युद्धकारिणम् ॥८०॥
एकपत्नीव्रतं शांतं सत्यभाषणतत्परम् । एकबाणमसंख्यातनामानं मारुतिध्वजम् ॥८१॥
कोविदारध्वजं बाणध्वजं वज्रध्वजं शुभम् । तार्क्ष्यध्वजं पुष्पकस्थं तार्क्ष्यवायुजवाहनम् ॥८२॥
नानाराजावतंसस्थमुक्तादीप्त्यंघ्रिशोभितम् । वरसिंहासनासीनं छत्रचामरमण्डितम् ॥८३॥
वरयैनं चंपिकेऽद्य सीतया भज राघवम् । नवखंडेश्वरश्चायं सप्तद्वीपाधिपोऽपि च ॥८४॥
बाणः पत्नीवचो यस्य नान्यं मा खेदयाचर । नवरत्नमालिकामस्य ग्रीवायां कुरु मा व्रज ॥८५॥
इत्युक्ता नंदया बाला स्वल्पपुण्या विधेर्वशात् । न बबन्ध मनो रामे सीतां संस्मृत्य चंपिका ॥८६॥
एकपत्नीव्रतं रामं सीतया ह्यभजेति च ।
खेदं मा चर तत्कण्ठे मालां मा कुरु चोदिता ॥८७॥
ततस्तत्संज्ञया नंदा तां निनाय कुशं प्रति । प्रोवाच मधुरं वाक्यं कुशवर्णनहर्षिता ॥८८॥
एनं पश्याल्पवयसं श्रीरामतनयं कुशम् । जानकीजठरोद्भूतं ज्येष्ठं भार्यार्थिनं शुभम् ॥८९॥
लवाग्रजं धनुर्वेदनिपुणं विनयान्वितम् । पित्रा संग्रामकर्तारं वाल्मीकिमुनिशिक्षितम् । ९०॥
एनं वृणीष्व बाले त्वं सुरमानवसंस्तुतम् । नवरत्नमयीं मालामस्य कण्ठे सुखं कुरु ॥९१॥
इति नन्दावचः श्रुत्वा चंपिका सा स्मिताननाः ।
मुमोच मालिकां कण्ठे स्वकराभ्यां कुशस्य हि ॥९२॥
तदा निनेदुर्वाद्यानि तुष्टुवुर्बन्दिमागधाः । लज्जयाऽधोमुखो रेजे सभायां कुशबालकः ॥९३॥
तदा तुष्टो भूरिकीर्तिः कुशांके चम्पिकां शुभाम् । स्थापयामास वेगेन पश्यत्सु नृपतीषु च ॥९४॥

शक महाप्रभु हैं ॥ ७८ ॥ रावणको मारनेवाले, सीताके साथ राज्य करनेवाले, तीर्थ-यज्ञकर्ता एवं सीताके साथ विहारकारी हैं ॥ ७९ ॥ इन्होंने सीताका त्याग किया और फिर वापस बुला लिया। इन्होंने अपना यज्ञ पूर्ण करनेके लिए अपने बेटों लव-कुशके साथ भी युद्ध किया था ॥ ८० ॥ ये एकपत्नीव्रती, शान्त, सत्यभाषी, एक बाण तथा असंख्यनामधारी हैं। ये कोविदारध्वज, बाणध्वज, वज्रध्वज तथा गरुड़ध्वज हैं। पुष्पक, गरुड़ तथा हनुमान्‌जी इनके वाहन हैं ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ये बहुतसे राजाओंके मुकुटमणि हैं और मोतियोंके प्रकाशसे इनका चरण सुशोभित रहता है। ये एक अच्छे सिंहासनपर बैठते हैं और उसपर सुन्दर छत्र-चमर शोभित रहता है ॥८३॥ हे चम्पिके ! तू इन्हें वर ले और सीताके साथ रहती हुई इनकी सेवा कर। ये नवों खण्डों एवं सातों द्वीपोंके अधिपति हैं ॥ ८४ ॥ ये किसी अन्य स्त्रीविषयक बातोंको बाणकी नाईं समझते हैं। अब तू किसी प्रकारका सोच-विचार न करके यह नवरत्नोंकी माला इनके गलेमें डाल दे ॥८५॥ इस प्रकार नन्दाके समझाने-पर भी भाग्यवश तथा सीताका स्मरण करके राम भी उसे पसन्द नहीं आये ॥ ८६ ॥ दूसरे नन्दाने भी अपने वर्णनमें कहा था कि एकपत्नीव्रती हैं, इसलिए "सीतया अभज" (सीताके साथ रहना पसन्द न कर) ॥८७॥ तत्पश्चात् चम्पिकाके संकेतसे नन्दा उसे कुशके सामने ले गयी और इस तरह कुशका भी वर्णन करती हुई कहने लगी-॥ ८८ ॥ इनको देखो, इनकी अभी थोड़ी उमर है। ये रामके तनय तथा सीताके पुत्र हैं। इनका नाम कुश है। ये लवके बड़े भाई हैं। अभी इनका विवाह नहीं हुआ है। इसलिए ये भार्यार्थी हैं। ये धनुर्वेदमें निपुण, विनीत स्वभाव, पिताके साथ संग्राम करनेवाले और महामुनि वाल्मीकिके शिष्य हैं ॥ ८९ ॥ ९० ॥ अतएव मनुष्यों और देवताओंसे संस्तुत इन कुशको पसन्द करके तू इनके कंठमें यह नवरत्नमयी माला डाल दे ॥ ९१ ॥ इस प्रकार नन्दाकी बात सुनी तो हँसकर उसने अपने हाथोंसे कुशके गलेमें वरमाला डाल दी ॥ ९२ ॥ उस समय विविध प्रकारके बाजे बज उठे और बन्दीजन तथा भाटोंने स्तुति की। उस सभामें लज्जासे नीचा मुख किये बैठा हुआ बालक कुश ही सुन्दर लग रहा था ॥ ९३ ॥ उस समय प्रसन्न होकर राजा भूरिकीर्तिने सब राजाओंके सामने ही चम्पिकाको कुशकी गोदमें बिठा

ददर्श जालरंध्रैस्त प्रासादस्था विदेहजा । मुमोद नितरां स्त्रीभिर्मुमोद राघवोऽपि सः ॥९५॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विवाहकाण्डे चम्पिकास्वयंवरो नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः

(द्वितीय राजकन्या सुमतिके स्वयंवरका वर्णन)

श्रीरामदास उवाच

अथान्यां सा सभाग्राच्च सुमतिश्चोत्तरस्थितान् । नृपानीशानदिग्भागात्सुनंदा धृतयष्टिका ॥ १ ॥
क्रमेण वर्णयामास शिविकास्थां सुलोचनाम् । बाले शृणुष्व मे वाक्यं पश्यैनं त्वं नृपोत्तमम् ॥ २ ॥
अवन्तिस्थं चोग्रबाहुनामानं च ह्यनुत्तमम् । नानेन सदृशः कश्चित्पृथिव्यां वर्तते नृपः ॥ ३ ॥
वरयैनं नृपं माऽग्रे गच्छ त्वं गजगामिनि । अस्य त्वं महिषी भूत्वा क्षिप्रानद्याश्च सैकते ॥ ४ ॥
वस्त्रगेहस्थिताऽनेन सुखं क्रीडस्व भामिनि । अनुत्तमं चेति वाक्यं द्व्यर्थं सा सुमतिः पुरा ॥ ५ ॥
श्रुत्वा मैनं वरयेति सुनंदाया वचः पुनः । श्रुत्वा तां चोदयामास सा तां नीत्वा नृपांतरम् ॥ ६ ॥
सुनन्दा सुमतिं प्राह पश्यैनं त्वं नृपं परम् । अंगनाथाह्वयं श्रेष्ठं विदर्भविषयस्थितम् ॥ ७ ॥
पूर्ववत्त्यज मा बाले वृणीष्वैनं नृपोत्तमम् । स्त्रीकामं स्वल्पवयसं भुजकेयूरराजितम् ॥ ८ ॥
अस्य त्वं महिषी भूत्वा पयोष्णीजलवीचिषु । सुखं कुरु जलक्रीडां नृपेणानेन भामिनि ॥ ९ ॥
एनं वृणीष्व मा चेति ह्युपमात्रा सुचोदिता । अग्रे गन्तुं सुनन्दां सा चोदयामास सज्ञया ॥१०॥
ततोऽन्यं नृपतिं नीत्वा सुनंदा तां वचोऽब्रवीत् । पश्यैनं नृपतिं बाले देशे मागधसंज्ञके ॥११॥
राज्यं करोत्ययं श्रीमान्नाम्ना ख्यातः परंतपः । वरयैनं नृपं माऽग्रे गच्छान्यं पार्थिवोत्तमम् ॥१२॥
अस्य त्वं महिषी भूत्वा तप्तनीरपूरिते । ब्रह्मतीर्थे सदा क्रीडां हेमन्ते भज भामिनि ॥१३॥

दिया ॥ ९४ ॥ अटारीके झरोखोंसे सीताने यह मङ्गलमय कार्य देखा तो बहुत प्रसन्न हुईं और रामचन्द्रजी भी अत्यधिक प्रसन्न हुए ॥ ९५ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गत श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते विवाहकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

श्रीरामदास बोले—तदनन्तर सुनन्दा दूसरी कन्या सुमतिको उत्तरकी ओर बैठे राजाओंके सामने ले जाकर ईशान कोणसे क्रमशः एक-एक राजाको दिखाकर इस प्रकार वर्णन करती हुई बोली—हे बाले! मेरी बात सुनो, राजाओंमें श्रेष्ठ इस राजाको देखो ॥ १ ॥ २ ॥ यह अवन्ति देशका रहनेवाला है। उग्रबाहु इसका नाम है। पृथ्वीतलपर इसके समान कोई राजा नहीं है ॥ ३ ॥ हे गजगामिनि! तू आगे मत बढ़, इसीको वर ले। इसकी रानी बनकर तू क्षिप्रा नदीके तटपर बने हुए डेरोंमें आनन्दपूर्वक विहार करेगी। सुनन्दाने "अनुत्तमम्" तथा "एनं मा वरय" इन दो वाक्योंका दो अर्थमें प्रयोग किया था। उसमें एकसे प्रशंसा और दूसरेसे निन्दा होती थी। इसी कारण सुमतिको वह राजा पसन्द नहीं आया और उसने आगे बढ़नेका संकेत किया ॥ ४-६ ॥ सुनन्दा उसे दूसरे राजाके सम्मुख लाकर कहने लगी—यह विदर्भ देशका निवासी अङ्गनाथ नामका राजा है ॥ ७ ॥ तू इसे मत छोड़। इसीको अपना पति बना ले। यह स्त्रीको इच्छा रखता है। इसकी थोड़ी उमर है और बाहुओंमें केयूर पड़ा हुआ है ॥ ८ ॥ इसको पति बनाकर तू पयोष्णी नदीके तरङ्गोंमें इसके साथ सानन्द जलविहार कर ॥९॥ यहाँ भी धात्रीके "एनं मा वृणीष्व (इसे मत वर)" यह वाक्य सुनकर उसने आगे चलनेका संकेत किया ॥ १० ॥ तदनन्तर सुनन्दा उसे दूसरे राजाके सामने ले जाकर बोली—हे बाले! इस राजाको देख, यह नरपति मगध देशमें राज करता है। यह बड़ा श्रीमान् है। इसे लोग परन्तप कहते हैं। बस, तू इसी श्रेष्ठ राजाको अपना पति बना ले—और किसीके पास मत जा ॥ ११ ॥ १२ ॥ इसको अपना पति बनाकर जाड़ेके दिनोंमें तू सदा ब्रह्मतीर्थके गरम जलमें क्रीड़ा किया करेगी।

मैनं नृपं वरयेति शिक्षिता सा सुनन्दया । चोदयामास तां वृद्धां सा तां निन्ये नृपांतरम् ॥१४॥
सुनंदा बालिकामाह शृणुष्व मृगलोचने । पश्यैनं नृपतिं रम्यं द्राविड़े विषये स्थितम् ॥१५॥
कम्बुकंठाह्वयं श्रेष्ठं कांतिपुर्यां निवासिनम् । एनं नृपं वृणीष्वाद्य मा व्रजान्यं नृपोत्तमम् ॥१६॥
कांचिपुर्यामनेन त्वं सर्वतीर्थमनोरमे । क्रीडां भजस्व विस्तीर्णे हेमकञ्जविराजिते ॥१७॥
विष्णुं वरदराजाख्यं शिवमेकाम्बराह्वयम् । पूजयस्व सदाऽनेन कम्बुग्रीवनृपेण च ॥१८॥
वृणीष्वैनं नृपं माऽद्य सामान्यनृपवत्त्यज । इति वृद्धावचः श्रुत्वाऽग्रे तां गन्तुं प्रचोदयत् ॥१९॥
सुनंदाऽन्यं नृपं नीत्वा सुमतिं वाक्यमब्रवीत् । पश्यैनं नृपतिं मुग्धे मत्तमातङ्गगामिनि ॥२०॥
कर्णाटविषयस्थं त्वं विजयं पार्थिवोत्तमम् । कमलास्यं कञ्जहस्तं कमलांघ्रिणमुज्ज्वलम् ॥२१॥
स्मितास्यं कंजनयनं विजयाख्यपुरस्थितम् । शृणुष्व वचनं मेऽद्य वृणीष्वैनं नृपोत्तमम् ॥२२॥
अस्य त्वं महिषी भूत्वा वने कृष्णानदीजले । सुखं नृपेण क्रीडस्व मद्वाक्यं शृणु मा व्रज ॥२३॥
मद्वाक्यं शृणु मेत्युक्ता श्रुत्वा वाक्यमनुत्तमम् । व्रजेति सूचिता बाला चोदयामास तां पुनः ॥२४॥
एवं नानानृपाणां च वर्णनानि पृथक् पृथक् । स्तुतिरूपनिषेधीनि श्रुत्वा द्व्यर्थानि बालिका ॥२५॥
न बबंध मनः कस्मिन्नृपतौ तेषु सा तदा । ततस्तां शिबिकासंस्थां सुनंदा च शनैः क्रमात् ॥२६॥
अतिक्रम्य राममंत्रिबालकानपि पूर्ववत् । यूपकेतुं शिशुं नीत्वा बालिकां वाक्यमब्रवीत् ॥२७॥
शत्रुघ्नतनयं बालं यूपकेतुं मनोहरम् । पितृव्यं रामतनयद्वयवाक्यानुवर्तिनम् ॥२८॥
एनं पश्य बालिके त्वं सावधानमना भव । वरयैनं यूपकेतुं माऽग्रे गच्छ नृपात्मजे ॥२९॥
मैनं वरय गच्छाग्रे वृद्धया सेति चोदिता । सुनन्दा चोदयामासाग्रे गन्तुं सुमतिः पुनः ॥३०॥
सुबाहुं पुष्करं तक्षमेवं सा सुमतिः शनैः । चित्रकेतुमङ्गदं च त्यक्त्वा सा तं लवं ययौ ॥३१॥

॥ १३ ॥ यहाँ भी सुनन्दाने "एनं नृपं मा वरय (इस राजाको मत वर)" यह द्व्यर्थक वाक्य कहा था। जिससे सुमतिने आगे चलनेका संकेत किया। तब वह उसे दूसरे राजाके सामने ले गयी ॥ १४ ॥ और कहने लगी—हे मृगलोचने! इस सुन्दर राजाको देख, यह द्रविड़देशका निवासी है ॥ १५ ॥ इसका कम्बुकंठ नाम है। यह कान्तिपुरीमें रहता है। तू इसे वर ले। अब किसी अन्य राजाको देखनेकी इच्छा मत कर ॥ १६ ॥ कान्तिपुरीमें तू अतिशय विशाल सुवर्णकमलसे युक्त मनोरम सर्वतीर्थमें इसके साथ सानन्द विहार करेगी और इसके साथ वरदराज नामक विष्णु भगवान् तथा एकांबर नामक शिवका पूजन करेगी। साधारण राजाओंकी तरह इसे भी न छोड़, इसको वर ले। इस प्रकार वृद्धा सुनन्दाकी बात सुनकर सुमतिने उसे आगे चलनेका संकेत किया ॥ १७–१९ ॥ तब सुनन्दा उसे दूसरे राजाके पास ले जाकर कहने लगी—हे मुग्धे! हे मत्तमातङ्गगामिनि! तू इस राजाको देख ॥ २० ॥ यह कर्णाटक देशका रहनेवाला विजय नामक राजा है। कमलके समान इसका मुख है और कमलके ही समान इसके हाथ-पैर भी हैं ॥ २१ ॥ इसका मुख सदा मुस्कुराता रहता है। कमलकी कलियोंकी नाईं इसकी आँखें हैं। यह विजयपुरका निवासी है। तू मेरी बात मानकर इसे अपना पति बना ले ॥ २२ ॥ इसकी राजमहिषी बनकर तू वनों तथा कृष्णा नदीके जलमें सानन्द विहार करेगी। मेरी बात मानकर तू और आगे मत बढ़ ॥ २३ ॥ "मद्वाक्यं मा शृणु (मेरी बात सुन)" यह बात सुनकर उसने सुनन्दाको आगे चलनेका संकेत किया ॥ २४ ॥ इस प्रकार अनेक राजाओंके वर्णन जो वास्तवमें निषेधमय थे, किन्तु ऊपरसे स्तुतिवाक्य मालूम पड़ते थे। ऐसे द्व्यर्थक वाक्योंको सुन-सुनकर बालिकाने उन राजाओंमेंसे किसीको भी नहीं पसन्द किया। तब सुनन्दा शिबिकामें बैठी हुई सुमतिको लेकर धीरे-धीरे रामके मन्त्रिपुत्रोंको लाँघकर यूपकेतुके सामने गयी और कहने लगी—॥ २५–२७ ॥ ये शत्रुघ्नके सुन्दर पुत्र यूपकेतु हैं। ये पितृव्य (ताऊ) रामके दोनों बेटे कुश-लवके अनुगामी हैं ॥ २८ ॥ हे बालिके! तू अब अपना मन सावधान करके इन्हें देख। हे नृपात्मजे! अब आगे न जाकर तू इन्हींको अपना पति बना ले ॥ २९ ॥ "मा एनं वरय अग्रे गच्छ (इसे न वर, आगे चल)" यह सङ्केत पाकर सुमतिने

लवार्पितेक्षणां बालां सुनन्दा वाक्यमब्रवीत् । पश्यैनं बालिके बालं लवं श्रीराघवात्मजम् ॥३२॥
स्त्रीकामं स्वल्पवयसं सीतालालितमुत्तमम् । वाल्मीकिकृपया लब्धविद्यं रम्यं कुशानुजम् ॥३३॥
वृणोष्वैनं सुखेनैव कण्ठेऽस्य मालिकां कुरु । कुशांके चंपिकेयं ते स्वसा यद्वत्स्थिताऽद्य हि ॥३४॥
तथा त्वमपि भो मुग्धे लवांके संस्थिता भव । इति तस्या वचः श्रुत्वा सुनन्दायाः स्मिताननाः ॥३५॥
लवस्य कण्ठे हर्षेण लज्जयाऽवनताननाः । सुमतिर्निजबाहुभ्यामर्पयामास मालिकाम् ॥३६॥
तदा निनेदुर्वाद्यानि जगुस्ते गायकास्तदा । ननृतुर्वारनार्यश्च तुष्टुवुर्बन्दिमागधाः ॥३७॥
भूरिकीर्तिर्नृपस्तुष्टो लवांके सुमतिं तदा । शीघ्रं निवेशयामास परिपूर्णमनोरथः ॥३८॥
तोषमाप रघुश्रेष्ठः सीता प्रासादसंस्थिता । जालरंध्रैः सपत्नीकं लवं दृष्ट्वा तुतोष सा ॥३९॥
ततः सर्वान्नृपान् पूज्य भूरिकीर्तिर्नृपोत्तमः । प्रार्थयामास विनयवचनैस्तत्पुरतः स्थितः ॥४०॥
विवाहकौतुकं दृष्ट्वा भवद्भिर्गम्यतामिति । तथेति ते नृपाः प्रोचुर्ययुर्वासस्थलानि हि ॥४१॥
रामाग्रे संगरं कर्तुमसमर्था गतश्रियः । म्लानानना गतोत्साहाः कामबाणप्रपीडिताः ॥४२॥
रामोऽपि बन्धुभिर्बालैर्ययौ वासस्थलं मुदा । अथापरे दिने राजा भूरिकीर्तिः समाययौ ॥४३॥
पुरोधसोपविष्टः सन्नत्वा रामं वचोऽब्रवीत् । द्रष्टव्यो लग्नदिवसः सुमुहूर्तः सुखावहः ॥४४॥
मामंगीकुरु रामाद्य त्वत्पादाश्रयकामुकम् । उभयोस्त्व मण्डपयोः कार्याण्याज्ञापय प्रभो ॥४५॥
तथेति राघवश्चोक्त्वा वसिष्ठं चोदयत्तदा । सोऽपि रामाज्ञया ज्योतिःशास्त्रज्ञः परिवेष्टितः ॥४६॥
मुहूर्तं कथयामास पञ्चमेऽहनि राघवम् । ततस्तुष्टो भूरिकीर्तिर्गणेशं लग्नपत्रिकाम् ॥४७॥

सुनन्दाको आगे चलनेका संकेत किया ॥ ३० ॥ इसी प्रकार सुबाहु, पुष्कर, तक्ष, चित्रकेतु तथा अंगदको छोड़ती हुई वह लवके पास पहुँची ॥ ३१ ॥ जब सुमति लवकी ओर देखने लगी तब सुनन्दा बोली—हे बाले ! इस बालकको देख, यह रामका पुत्र है। यह अपना विवाह करना चाहता है। इसकी थोड़ी उमर है। सीताके द्वारा इसका पालन-पोषण हुआ है। वाल्मीकिकी कृपासे इसे उत्तम विद्या प्राप्त हुई है और यह कुशका छोटा भाई है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ तू सानन्द इसे अपना पति बनाकर इसके गलेमें वरमाला डाल दे, जिस तरह तुम्हारी बहिन चम्पिका कुशकी गोदमें बैठी है, उसी तरह ओ मुग्धे ! तू भी लवकी गोदमें बैठ जा। इस प्रकार सुनन्दाकी बात सुनकर वह मुस्करायी और लज्जावश मस्तक झुकाकर उसने अपने हाथोंसे लवके गलेमें वरमाला डाल दी ॥ ३४–३६ ॥ उस समय अनेक प्रकारके बाजे बजे, गायकोंने गाने गाये, वेश्यायें नाचने लगीं और बन्दीजन स्तुति करने लगे ॥ ३७ ॥ महाराज भूरिकीर्तिने प्रसन्न होकर सुमतिको लवकी गोदमें बिठा दिया ॥ ३८ ॥ यह देखकर रामचन्द्रजी तथा अँटारीपर बैठी सीता दोनों प्रसन्न हुए। जब झरोखोंसे सीताने लवकी गोदमें सुमतिको बैठा देखा तो उनकी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं रहा ॥ ३९ ॥ इसके अनन्तर राजा भूरिकीर्तिने वहाँ आये हुए सब राजाओंकी पूजा करके विनयपूर्वक प्रार्थना की—॥ ४० ॥ अब आप लोग विवाहका भी उत्सव देखकर जाइएगा। राजाओंने भी उनकी बात स्वीकार कर ली और अपने-अपने डेरेपर चले गये ॥ ४१ ॥ वे सब राजे रामसे युद्ध करनेमें असमर्थ थे। अतएव उनकी श्री नष्ट हो गयी थी, मुख कुम्हला गया था, उत्साह भंग हो गया था और बेचारे कामके बाणोंसे पीडित हो रहे थे ॥ ४२ ॥ राम भी अपने भाइयों और बच्चोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक डेरेपर गये । इसके बाद दूसरे दिन राजा भूरिकीर्ति रामके पास पहुँचे ॥ ४३ ॥ पुरोहित उनके साथ था। वे रामके समक्ष बैठे और कहा कि कोई अच्छा लग्न-दिवस तथा सुखदायक मुहूर्त विचारिए। फिर कहा—हे राम ! अपने चरणोंके भक्त मुझ दासकी प्रार्थनाको अङ्गीकार करके दोनों मण्डपोंके लिए जो कार्य करने हों, उनके लिए आज्ञा दीजिए ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ "अच्छा" कहकर रामने वसिष्ठकी ओर संकेत किया। वसिष्ठने रामकी आज्ञासे ज्योतिषशास्त्रको जाननेवाले कितने ही पंडितोंके साथ विचार करके उसके पाँचवें दिन विवाहका शुभ मुहूर्त बतलाया। इसके अनन्तर प्रसन्न मनसे भूरिकीर्तिने गणेशजी, लग्नपत्रिका, गणकों, पण्डितों, वैदिक आदिकों तथा रामके साथवाले बंधुजनों और

सम्पूज्य गणकान्सर्वान्पण्डितान्वैदिकादिकान् । बंधुपुत्रादिभिः सर्वैः श्रीरामं पूजयत्तदा ॥४८॥
नत्वा रामं गृहं गत्वा चकार मण्डपादिकम् । रामाज्ञया लक्ष्मणोऽपि चकार मण्डपादिकम् ॥४९॥
तदा वटपुरी रम्या पताकाध्वजतोरणैः । पुरुषोत्तमराजधानी रेजे सागररोधसि ॥५०॥
ततो मुहूर्तसमये वधूच्छिष्टां निशां कुशम् । लवं च लिप्य तैलाक्तं सीताद्या मातरस्तदा ॥५१॥
करकुम्भाँश्चतुर्दिक्षु जलपूर्णान्सदीपकान् । संस्थाप्य स्नापयामासुर्महावाद्यपुरःसरम् ॥५२॥
तैलाभ्यंगं निशायुक्तं सीताद्याः स्वीयबालकैः । सहैव चक्रुरानन्दपूरिता रुक्मभूषिताः ॥५३॥
अभ्यंगपूर्वकं सस्नुस्ते रामाद्यास्तदा मुदा । समाहूय ततः सीतां मुक्तानां स्वस्तिकोपरि ॥५४॥
वसिष्ठो मुनिभिर्युक्तः शिशुभ्यां राघवेण हि । गणपार्चां कारयित्वा पुण्याहादित्रयं क्रमात् ॥५५॥
देशाचारान्कुलाचारानिष्टदेवीं प्रपूज्य च । कारयामास विधिवत्प्रतिष्ठां देवकस्य च ॥५६॥
तदा जनकनंदिन्या रजनीकुंकुमान्विते । विरेजतुः स्रीकदम्बस्थितायाः पदपंकजे ॥५७॥
सीताद्यास्ताः स्त्रियः सर्वा हरित्पीतारुणैर्वरैः । हेमतंत्र्यकितैर्वस्त्रैर्विरेजुर्मंडपाङ्गणे ॥५८॥
ततः समाययुः सर्वे मुदा तत्र मुनीश्वराः । स्वयंवरोत्सवे पूर्वं नागता ये सहस्रशः ॥५९॥
श्रुत्वोसाहं विवाहस्य कुशस्य च लवस्य ते । तान्सर्वान् रामचन्द्रोऽपि वस्त्राभरणधेनुभिः ॥६०॥
पूजयामास विधिवत् सीतया लक्ष्मणादिभिः । भूरिकीर्तिर्नृपैर्युक्तो महावाद्यपुरःसरम् ॥६१॥
स्वयं कुशलवौ गेहं नेतुकामः समाययौ । मण्डपे पूजयामास वीरो राज्ञः सुतस्तदा ॥६२॥
कुशं तथा लवं चापि कनीयान् भूरिकीर्तिजः । हेमतंतुद्भवैर्दिव्यैर्वस्त्रैराभरणादिभिः ॥६३॥
तदा विरेजतुर्बालौ तथा तेऽप्यंगदादयः । ततस्तौ वारणेन्द्रस्थौ दिव्यचामरवीजितौ ॥६४॥
पश्यंतौ नर्तनान्यग्रे वारस्त्रीणां स्मिताननौ । शृण्वंतौ वाद्यघोषांश्च वर्णितौ मागधादिभिः ॥६५॥

पुत्रोंके साथ रामकी पूजा की ॥ ४६-४८ ॥ फिर रामको प्रणाम करके घर गये और वहां मंडपादिकी तैयारी करने लगे। रामकी आज्ञासे लक्ष्मण भी अपना मण्डप आदि बनवाने लगे ॥ ४९ ॥ उस समय समुद्रके तटपर स्थित पुरुषोत्तमकी राजधानी वह वटपुरी पताका, ध्वजा तथा तोरणोंसे सुशोभित होकर बड़ी ही सुन्दर दीखने लगी ॥ ५० ॥ इसके बाद मुहूर्तवाले दिन तथा कुशलोमातृपूजनवाली रातको कुश और लवको सीतादिक माताओंने उबटन लगाये, तेल लगाया और मण्डपके चारों ओर करकुम्भ (करवा) रक्खा और उसपर दीपक जलाये। फिर बाजोंके साथ उन दोनों वरोंको स्नान कराया ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ उन बालकोंके साथ ही सीतादिक माताओंने भी आनन्दित मनसे तेल लगाया ॥ ५३ ॥ फिर उबटन लगाकर उन सबके साथ रामने भी स्नान किया। इसके अनन्तर राम सीताको बुलाकर मोतियोंसे बने हुए स्वस्तिक चौकके ऊपर बैठे और बहुतसे ऋषियोंके साथ आकर वसिष्ठने दोनों बालकोंके साथ रामके द्वारा गणेशजीकी पूजा करवायी और क्रमशः तीन प्रकारके पुण्याहवाचन करवाये ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ तत्पश्चात् देशाचार तथा कुलाचारके अनुसार इष्टदेवकी पूजा करके विधिवत् देवताकी स्थापना की ॥ ५६ ॥ उस रात्रिके समय कुमकुम रंजित वस्त्र पहने हुए वे दोनों बालक बहुत ही सुन्दर लग रहे थे ॥ ५७ ॥ इनके सिवाय हरे, पीले, लाल और सुनहले कपड़े पहने स्त्रियाँ भी बहुत भली लग रही थीं ॥ ५८ ॥ इसी समय वे हजारों ऋषि प्रसन्नतापूर्वक वहां आ पहुँचे, जो स्वयंवरके उत्सवमें नहीं आये थे ॥ ५९ ॥ वे भी कुश-लवका विवाहोत्सव सुनकर आ गये। रामचन्द्रजीने भी सीता तथा बन्धुओंके साथ अनेक तरहके वस्त्र-आभूषण तथा गौवें देकर उनकी पूजा की ॥ ६० ॥ ६१ ॥ इसके बाद बहुतसे राजाओंके साथ कुश-लवको लेनेके लिए महाराज भूरिकीर्ति आये। वहां पहुँचकर भूरिकीर्तिके छोटे वीर पुत्रने सुवर्णके तारोंके कामदार बहुतसे वस्त्र और आभरण देकर कुश-लवकी पूजा की ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ उस समय वे दोनों बालक तथा अङ्गद आदि वीर बच्चे बहुत सुन्दर दीख रहे थे। इसके अनन्तर कुश और लव हाथीपर बैठकर चले। उनपर दिव्य चमर डुलने लगे ॥ ६४ ॥ वे दोनों बालक वेश्याओंका नृत्य देखते और विविध प्रकारके बाजोंकी मीठी ध्वनि

सीतादिभिर्वारणीषु संस्थिताभिस्तथा पथि । प्रासादोपरि संस्थाभिर्नारीभिः पुष्पवृष्टिभिः ॥६६॥
हरिद्रापीतधान्यैश्च मांगल्यैर्मौक्तिकैरपि । लाजाभिर्हेमपुष्पैश्च वर्षिताविक्षितौ मुहुः ॥६७॥
जग्मतुर्बालकावेवं पश्यन्तौ कौतुकानि हि । ददर्शतुर्वाटिकाश्च पुष्पैर्वृष्टिविनिर्मिताः ॥६८॥
तथा कृत्रिमवृक्षांश्च पताकाश्च ध्वजांस्तथा । तथौषधिभवान्वृक्षान् वह्निस्पर्शविदीपितान् ॥६९॥
शकटस्थानोषधीभिः पूरितान्कृत्रिमान् जनान् ।
तथा व्याघ्रादिकान्हिंस्रानोषधीभिः प्रपूरितान् ॥७०॥
तडित्समानान् गगने प्राकारानौषधीभवान् ।
केकिचक्रोपमादींश्च चन्द्रज्योत्स्नास्तु कृत्रिमाः ॥७१॥
एवं ददर्शतुर्नानाकौतुकानि नृपात्मजौ । ततस्तौ भूरिकीर्तेश्च गत्वा मण्डपमुत्तमम् ॥७२॥
नानामहोत्सवैर्बालौ चामरच्छत्रमण्डितौ । अवरुह्य गजेन्द्राभ्यां तस्थतुर्मण्डपांगणे ॥७३॥
मधुपर्कविधानानि विष्टरादीनि वै क्रमात् । तयोर्गुरू चक्रतुस्तौ ब्राह्मणैः परिवेष्टितौ ॥७४॥
ततो वध्वोः पूजनं च सीतया रघुनन्दनः । चकार गुरुणा युक्तस्तदा स मण्डपांगणे ॥७५॥
ततो लग्नमुहूर्ते तं कुशं चम्पिकया गुरुः । तथा लवं सुमत्यापि पृथग्वेदिकयोस्तदा ॥७६॥
कृत्वा सुसंस्थितौ चोभौ दंपत्योरन्तरे पटौ । धृत्वोभयोः पृथक् चित्रौ नूतनौ हेमतंतुजौ ॥७७॥
नानामंगलघोषांश्च मुनिभिश्चक्रतुर्मुदा । आसन्सर्वे जनास्तूष्णीं शृण्वंतो मंगलस्वनान् ॥७८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये
विवाहकाण्डे चम्पिकासुमतिस्वयंवरवर्णनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

एवं बन्दीजनोंकी स्तुतियाँ सुनते हुए राजा भूरिकीर्तिके महलोंकी ओर चले जा रहे थे ॥ ६५ ॥ सीतादिक माताएँ हथिनियोंपर बैठी थीं। अँटारियोंपर बैठी हुई नगरवासिनी नारियाँ उनपर फूल बरसा रही थीं। बीच-बीचमें हल्दीसे रंगे पीले रंगके अन्न, मांगल्य मौक्तिक, धानके लावे और सुवर्णके बने फूल भी बरसते जा रहे थे। वे नारियाँ कुश-लवको प्रेमभरी दृष्टिसे निहार रही थीं। इस तरहके कौतुक देखते हुए वे दोनों बालक चले जा रहे थे। रास्तेमें फूलोंकी वर्षा ही से बनी वाटिकाएँ, कृत्रिम वृक्ष, पताका, ध्वजा, मसालेके बने ऐसे वृक्ष जो आगकी चिनगारी पाकर जलने लगते थे ॥ ६६-६९ ॥ उन्हें और गाड़ीपर बैठे हुए औषधिपूर्ण बनावटी मनुष्यों, मसालेसे भरे हुए व्याघ्र आदि हिंस्र जन्तुओं, औषधिके संयोगसे बिजलीकी नाईं चमकते हुए गगनस्पर्शी भवनों तथा मयूर आदिके छूटते हुए चक्रोंको वे राजे कौतूहल भरी आँखोंसे देखते जा रहे थे ॥ ७० ॥ ७१ ॥ इस प्रकार मार्गमें अनेक कौतुकोंको देखते हुए वे राजा भूरिकीर्तिके उत्तम मंडपमें पहुँचे। उस समय लोगोंमें महान् उत्साह दिखायी पड़ता था। उन बच्चोंपर छत्र लगे थे और दिव्य चमर चल रहे थे। वहाँ पहुँचकर वे हाथीसे उतरे और मण्डपाङ्गणमें पहुँचे ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ उनके गुरुजनोंने ब्राह्मणोंके साथ मधुपर्क विष्टर आदि विधि सम्पन्न किये ॥ ७४ ॥ इसके अनन्तर रामने सीता तथा गुरुजनोंके साथ उस मण्डपमें उन दोनों बहुओंकी पूजा की ॥ ७५ ॥ तदनन्तर लग्नका मुहूर्त आनेपर गुरु वसिष्ठने कुशको चम्पिकाके साथ एवं लवको सुमतिके साथ अलग-अलग वेदीपर बिठाला ॥ ७६ ॥ इस तरह दोनों वर-वधुओंको अच्छी तरह बिठलाकर उनके बीचमें एक-एक पर्दा डाल दिया और सब लोग चुपचाप गुरु वसिष्ठके मुखसे उच्चरित नाना प्रकारके मांगलिक मंत्रोंको सुनने लगे ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते विवाहकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः

(लव-कुशके विवाहका वर्णन)

श्रीरामदास उवाच

श्रीसीता रघुनायकश्च गिरिजा शंभुर्गणेशस्तथा
नन्दीषण्मुखलक्ष्मणौ च भरतः कंजोद्भवः शत्रुहा ।
सर्वे ते मुनयः सुराश्च दितिजास्तीर्थादिनद्यो नदाः
दिक्पालाः शशिभास्करौ च हनुमान् कुर्वन्तु वो मंगलम् ॥ १ ॥

तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चंद्रबलं तदेव । विद्याबलं दैवबलं तदेव सीतापतेर्यत्स्मरणं विधेयम् ॥
एवं मंगलघोषैश्च नानावाद्यपुरःसरम् । ततस्त्वंतःपटौ मुक्त्वाॐपुण्याहमिति स्मरन् ॥ ३ ॥
तयोस्ते पाणिग्रहणविधानं विधिपूर्वकम् । लाजाहोमादिकं सर्वं चक्रुर्मंगलपूर्वकम् ॥ ४ ॥
तदा महावाद्यघोषा निनेदुर्मंडपांगणे । ननृतुर्वारनार्यश्च तदा मागधवन्दिनः ॥ ५ ॥
जगुर्मंगलगीतानि तुष्टुवुस्ते महास्वनैः । तदा दानान्यनेकानि चक्रतुस्तौ नृपोत्तमौ ॥ ६ ॥
भूरिकीर्तिरामचंद्रौ महातोषप्रपूरितौ । अथ तौ बालकौ वध्वौ निजकटशोर्निवेश्य वै ॥ ७ ॥
सीतोर्मिलादिभिः स्त्रीभिर्जग्मतुर्भोजनगृहम् । तत्र गौरीहरौ पूज्य चक्रतुश्चाग्रसिंचनम् ॥ ८ ॥
ततः कुशश्चंपकिया सुमत्या स लवोऽपि च । चक्रतुर्भोजनं चोभौ स्त्रीभिः सर्वत्र वेष्टितौ ॥ ९ ॥
मात्रा सहोपनयने विवाहे भार्यया सह । अन्येन नैव भोक्तव्यं भुक्तं चेत्पतितः स्मृतः ॥१०॥
रामोऽपि बन्धुभिः पौरैः सुहृद्भिः पार्थिवोत्तमैः । चकार भोजनं भूरिकीर्तेः सद्मनि वै मुदा ॥११॥
एवं सीताऽपि नारीभिश्चकार भोजनं तदा । भूरिकीर्तेः स्नुषाभिः सा प्रार्थिता वंदिता मुहुः ॥१२॥
ततो नानासमुत्साहान् भूरिकीर्तिश्चकार सः । अथ तौ बालकौ रम्यौ स्त्रीवाक्यैर्मातृसन्निधौ ॥१३॥
स्वश्वश्रूसन्निधौ चापि स्त्रीभिः सर्वत्र वेष्टितौ । स्वस्वपत्न्याः पदयोः शिरोभ्यां नमनं मुहुः ॥१४॥

श्रीरामदास कहते हैं—'सीता, राम, गिरिजा, शिव, गणेश, नन्दी, स्वामिकार्तिकेय, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, ब्रह्मा, समस्त ऋषि, देवता, दैत्य, सारे तीर्थ, नदी, दिक्पाल, चन्द्रमा, सूर्य एवं हनुमान्‌जी ये सब आप लोगोंका कल्याण करें ॥ १ ॥ वही लग्न है, वही सुदिन है और ताराबल तथा चन्द्रबल भी वही है, जिसमें कि सीतापति रामचन्द्रजीका स्मरण किया जाय ॥ २ ॥ अनेक प्रकारके बाजोंके साथ इस तरह मंगल-घोष करनेके अनन्तर 'ॐपुण्याहम्' ऐसा उच्चारण करते हुए वसिष्ठजीने अन्तःपटको दूर कर दिया ॥ ३ ॥ विधिपूर्वक हवनादि कृत्यके साथ-साथ उन दोनों वर-वधुओंके पाणिग्रहण-संस्कार किये ॥ ४ ॥ उस समय मण्डपमें महावाद्यघोष हुए, वेश्याएँ नाचीं, मागध और बन्दीजनोंके स्तुतिपाठ हुए और गाने गाये गये। उस समय उन दोनों राजाओं (राम और भूरिकीर्ति) ने अनेक प्रकारके दान दिये ॥ ५ ॥ ६ ॥ दोनों सम्बन्धी उस समय बड़े आनन्दित थे। तदनन्तर दोनों बालक अपनी-अपनी स्त्रीको कमरपर बिठलाकर सीता-उर्मिलादिकोंके साथ भोजनशाला गये। वहाँ उन्होंने शिव-पार्वतीकी पूजा की और अग्रसिंचन-विधि सम्पन्न की ॥ ७ ॥ ८ ॥ तब सब स्त्रियोंसे वेष्टित चम्पिकाके साथ बैठकर कुशने और सुमतिके साथ लवने भोजन किया ॥ ९ ॥ क्योंकि शास्त्रका कहना है कि उपनयनसंस्कारमें माताके साथ एवं विवाहमें अपनी स्त्रीके साथ बैठकर वर भोजन करे और किसीके सङ्ग नहीं। यदि किसी औरके साथ भोजन करे तो वह पतित कहा जाता है ॥ १० ॥ उधर राम भी अपने भाइयों, पुरवासियों, सम्बन्धियों और राजाओंके साथ महाराज भूरिकीर्तिके भवनमें गये और वहाँ भोजन किया ॥११॥ उसी तरह सीताने भी स्त्रियोंके साथ जाकर भूरिकीर्तिकी बहुओंके प्रार्थना करनेपर उन्हींके यहाँ भोजन किया ॥१२॥ इसके पश्चात् राजा भूरिकीर्तिने विविध प्रकारके उत्सव

चक्रतुस्तोषसंपूर्णौ ते तवापि स्मितानन । वधूवराश्च ते सर्वे निशापीता विरेजिरे ॥१५॥
कुंकुमांकितपादौ ते ददतुर्वल्लभाङ्कयोः । एवं नानासमुत्साहैरतिक्रांतं दिनत्रयम् ॥१६॥
चतुर्थे दिवसे रात्रौ वंशपात्रविराजितैः । दीपैर्नीराजितौ चोभौ बालकौ तौ विरेजतुः ॥१७॥
ततस्तौ बालकौ पत्न्यौ स्वस्वपृष्ठे निवेश्य च । चक्रतुस्तांडवं नृत्यं कुशलौ मण्डपांगणे ॥१८॥
मातृश्वश्रूरादिकासु पश्यत्सु च ससादरम् । पारिबर्हं भूरिकीर्तिः कुशाय च लवाय च ॥१९॥
ददौ तुष्टमनाः शीघ्रं रामसम्बन्धहर्षितः । नियुतान्वारणेन्द्रांश्च शिबिकाश्चापि तन्मिताः ॥२०॥
तुरंगान्पञ्चनियुतं नियुतान्स्यन्दनान्ददौ । द्वाभ्यां पृथक् पृथक् पौत्रीधवाभ्यां द्रव्यपूरितान् २१॥
नानालङ्कारवासांसि गा दासीः सेवकांस्तथा । ददौ ताभ्यां भूरिकीर्तिर्येषां संख्या न विद्यते ॥२२॥
एवं सम्मानितस्तेन श्रीरामो भूरिकीर्तिना । सपत्नीकाभ्यां पुत्राभ्यां गजस्थाभ्यां समन्वितः २३॥
सीतया बंधुभिः पौरैः सुहृद्भिर्भ्रातृभिर्नृपैः । पूर्ववदुत्सवाद्यैश्च स ययौ स्वीयमण्डपम् ॥२४॥
वटपुर्यां ततो रामो मासमेकं निनाय सः । चकार सीतया क्रीडां नौकासंस्थो महोदधौ ॥२५॥
ततः स्नुषाभ्यां श्रीरामो ययौ निजपुरीं सुखम् । अयोध्यायां विजयोऽपि श्रुत्वा रामं समागतम् ॥२६॥
यः पुर्या रक्षणार्थं हि रामेणाज्ञापितः पुरा । स पुरीं शोभयामास पताकाध्वजतोरणैः ॥२७॥
वारणेंद्रं पुरस्कृत्य तूर्यनृत्यपुरःसरम् । विजयो रामसचिवो रामं प्रत्युद्ययौ जवात् ॥२८॥
अथो नदत्सु वाद्येषु रामो बालैः सुहृज्जनैः । स्नुषाभ्यां सीतया बंधुपत्नीभिर्भ्रातृभिः पुरीम् ॥२९॥
विवेश सेनया पौरैः पश्यन्नृत्यादिकं पथि । तदा वेश्या ननृतुस्तुष्टुवुर्वन्दिमागधाः ॥३०॥
स्वस्वपत्नीयुतौ बालौ वरवारणयोः स्थितौ । तदा विरेजतुर्मार्गे स्त्रीभिः पुष्पैः सुवर्षितौ ॥३१॥

किये। उन दोनों बालकोंने स्त्रियोंके कहनेसे माताके पास बैठ तथा अपनी सास आदिसे वेष्टित होकर अपनी-अपनी स्त्रियोंकी वन्दना की ॥ १३ ॥ १४ ॥ उस समय वे वर-वधू अतिशय प्रसन्न होकर मन्द-मन्द मुसका रहे थे। रातके पीले प्रकाशमें वे बड़े सुन्दर दीखते थे ॥ १५ ॥ इसके बाद उन दोनों बहुओंने कुमकुम-से रँगे हुए अपने चरण पतिके गोदमें रख दिये। इस तरह नाना प्रकारके उत्सवोंके साथ तीन दिन बीते ॥ १६ ॥ चौथे दिन रात्रिके समय बाँसके बने पात्रोंमें दीपक रखकर लव-कुशकी आरती की गयी। उस समय भी उनकी सुन्दरता देखने ही योग्य थी ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर वे दोनों बालक अपनी-अपनी स्त्रीको पीठ-पर बिठाकर ताण्डव नृत्य करने लगे ॥ १८ ॥ माता-सास आदि स्त्रियें मण्डपमें बैठी यह कौतुक देख रही थीं। महाराज भूरिकीर्तिने अपने दोनों जामाताओंको खूब दहेज आदि भी दिये ॥ १९ ॥ रामके सम्बन्धसे हर्षित होकर उन्होंने उन्हें एक लाख हाथी, इतनी ही पालकियाँ, पाँच लाख घोड़े, एक लाख रथ, अलग-अलग इतनी ही संख्याकी चीजें द्रव्यसे भरकर दोनों वर-वधुओंको दीं ॥ २० ॥ २१ ॥ इनके सिवाय विविध प्रकारके अलंकार, वस्त्र, गायें, दासी, दास आदि तो इतने दिये कि जिनकी गिनती सम्भव नहीं थी ॥ २२ ॥ भूरिकीर्तिसे इस प्रकार सम्मानित होकर श्रीरामचन्द्र स्त्री समेत दोनों पुत्रोंके साथ हाथीपर सवार होकर सीता, भ्राताओं, पुरवासियों, नातेदारों तथा राजाओंको साथ लिये हुए पूर्ववत् उत्साहके साथ अपने मण्डप-में आये ॥ २३ ॥ २४ ॥ इसके अनन्तर रामने उस वटपुरीमें एक मास बिताया। वहाँ वे कभी-कभी नौकापर बैठकर सीताके साथ समुद्रकी सैर करते थे ॥ २५ ॥ इसके बाद उन्होंने दोनों पतोहुओंके साथ आनन्दपूर्वक अपनी पुरीको प्रस्थान किया। उधर अयोध्यामें जब विजयने, जिसको राम नगरीकी रक्षाके लिए छोड़ आये थे, रामके आगमनकी बात सुनी तो उसने ध्वजा-पताका-तोरण आदिसे नगरीको खूब सजाया ॥ २६ ॥ २७ ॥ एक श्रेष्ठ हाथीको आगे करके रामका मन्त्री विजय रामकी अगवानी करने जा पहुँचा ॥ २८ ॥ इसके अनन्तर जब कि विविध प्रकारके बाजे बज रहे थे तब राम अपने पुत्रों, सुहृज्जनों, पतोहुओं, सेना, पुरवासियों तथा सीताके साथ पुरीमें प्रविष्ट हुए ॥ २९ ॥ उस समय वेश्यायें नाच रही थीं और मागध तथा बन्दीजन स्तुति कर रहे थे ॥ ३० ॥ अपनी-अपनी पत्नीके साथ दोनों बालक (कुश और लव) हाथीपर बैठे हुए

एवं रामो गृहं गत्वा बालाभ्यां स्वीयसद्मनि । कारयित्वा रमार्चां स ददौ दानान्यनेकशः ॥३२॥
तदाऽलंकारवस्त्राद्यैः संपूज्य रघुनन्दनः । सुहृदः सकलान्पौरानिष्टान् जानपदान्नृपान् ॥३३॥
आचांडालादिकान्सर्वान् संतुष्टानकरोन्मुदा । ततः स भूरिकीर्तेस्तान् मंत्रिणः सैन्यसंयुतान् ॥३४॥
सम्पूज्य प्रेषयामास स्वदेशं रघुनन्दनः । ततः सर्वान् जानपदान् सुहृदश्च प्लवंगमान् ॥३५॥
विभीषणादिकांश्चाज्ञां गंतुं स्वस्वस्थलं ददौ । ततः सर्वे राघवं ते वस्त्राभरणवाहनैः ॥३६॥
स्वस्वकोशैश्च संपूज्य नत्वा रामं ययुर्मुदा । स्वं स्वं देश निजैः सैन्यैः श्रीरामेणातिमानिताः ॥३७॥
अथ रामःस्नुषाभ्यांच पुत्राभ्यां बन्धुभिःस्त्रिया । सुखं चकार राज्यं स धर्मेणाप्रतिमं चिरम् ॥३८॥
ततः श्रावणमासस्य दर्शमारभ्य षोडश । प्राप्तान्यब्दे यानि यानि समुत्साहदिनानि हि ॥३९॥
तेषु सर्वेषु तं रामं सावरोधं सबालकम् । स्वपुरीं भूरिकीर्तिः स निनाय परमादरात् ॥४०॥
पूजयामास विधिवद्वस्त्रालंकारवाहनैः । कियद्दिनानि संस्थाप्य ददावाज्ञां पुनः पुनः॥४१॥
संवत्सरसमुत्साहदिनानि षोडशाधुना । विष्णुदास मया तेऽग्रे कथ्यंते तानि वै शृणु ॥४२॥
श्रावणस्याथ मासस्य कुहूः श्रेष्ठा प्रकीर्तिता । भाद्रशुक्लचतुर्थी तु विजया दशमी तथा पुनः ॥४३॥
दीपावल्याश्च चत्वारि दिनान्यतिमहांति च । मार्गशीर्षे पंचमी च सिता षष्ठी तथा पुनः ॥४४॥
संक्रान्तिर्मकराख्या तु तथा च रथसप्तमी । हुताशनी चैत्रशुक्लप्रतिपच्चापि पुण्यदा ॥४५॥
अक्षय्याख्या तृतीया च तथा वै ज्येष्ठपौर्णिमा। पंचमी श्रावणे शुक्ला षोडशैव स्मृतानि हि ॥४६॥
संवत्सरसमुत्साहदिनान्यतिमहांति च । एतेषु भूरिकीर्तिः स रामं नीत्वा प्रपूजयत् ॥४७॥
एवं कुशस्य च तथा लवस्यापि सविस्तरान् । विवाहौ वर्णितौ शिष्य यथा पूर्वं श्रुतौ मया ॥४८॥
यदा श्रीरामचन्द्रस्य वैकुंठारोहणं शुभम् । भविष्यति तदाऽयोध्यापुर्यां वै सरयूजले ॥४९॥

सुशोभित हो रहे थे और मार्गमें नगरकी महिलायें उनपर फूल बरसा रही थीं ॥ ३१ ॥ इस तरह बड़े उत्साहके साथ वे अपने राजभवनमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने दोनों बच्चोंके हाथों लक्ष्मीका पूजन कराया और अनेक तरहके दान दिये ॥ ३२ ॥ उस समय रामने अपने सम्बन्धियों, समस्त पुरवासियों, मित्रों, जनपदवासियों और राजाओंसे लेकर साधारण श्रेणीवाले चाण्डालों तकका नाना प्रकारके वस्त्रों और आभूषणोंसे सत्कार करके सबको प्रसन्न किया। इसके पश्चात् महाराज भूरिकीर्तिके मंत्रियों तथा सेनाकी पूजा करके उन्हें विदा किया। इसके बाद जनपदवासियों, सम्बन्धियों, वानरों तथा विभीषण आदि मित्रोंका वस्त्र, भूषण, वाहनादिके दानसे सम्मानित करके अपने-अपने नगरको जानेकी आज्ञा दी ॥ ३३–३६ ॥ इस प्रकार रामके आदर-सत्कारको स्वीकार करके उन लोगोंने भी धनसे रामकी पूजा की और अपने-अपने देशको लौटे ॥ ३७ ॥ इसके बाद राम सीता पुत्रों एवं पुत्रवधूओंके साथ रहते हुए बहुत दिनों तक धर्मानुकूल राज्य करते रहे ॥ ३८ ॥ तदनन्तर श्रावणकी अमावास्यासे लेकर वर्षमें सोलह बड़े-बड़े त्योहारों और उत्साहके दिनोंमें महाराज भूरिकीर्ति अंतःपुर समेत रामको अपने यहाँ सादर बुलाते थे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ वहाँ पहुँचनेपर वे वस्त्र-अलंकारादि समर्पण करके रामकी पूजा करते थे। कुछ दिन राम वहाँ रहकर फिर अयोध्या चले आते और बुलावा आनेपर फिर पहुँच जाया करते थे ॥४१॥ हे विष्णुदास! अब मैं तुम्हें वर्षके उन सोलह दिनोंको बतलाता हूँ जिनकी चर्चा अभी की है, उन्हें सुन लो ॥ ४२ ॥ श्रावण मासकी अमावस्या, भाद्रपद शुक्लपक्षकी चतुर्थी, कुवारकी विजया दशमी ॥ ४३ ॥ और दीपावलीके आगे-पीछेवाले चार दिन बड़े महत्त्वके होते हैं ॥४४॥ मार्गशीर्षके शुक्लपक्षकी पंचमी तथा षष्ठी, मकरकी संक्रांति, रथसप्तमी और चैत्र शुक्लकी हुताशनी प्रतिपदा भी बड़ी पवित्र तिथि होती है ॥ ४५ ॥ अक्षय तृतीया, ज्येष्ठकी पूर्णिमा और श्रावणके शुक्लपक्षकी नागपंचमी ये वर्षके सोलह दिन उत्तम हैं ॥ ४६ ॥ ये ही संवत्सरके बड़े-बड़े उत्साहदिवस माने गये हैं। इन्हीं दिनों भूरिकीर्ति सपरिवार रामको अपने यहाँ बुलाकर पूजन करते थे ॥ ४७ ॥ हे शिष्य! जैसा कि मैंने आजके बहुत दिनों पहले कुश तथा लवका विवाह-वृत्तान्त सुना था, उसी तरह वर्णन किया ॥ ४८ ॥ इसके

कुशः स्त्रिया चंपिकया जलक्रीडां करिष्यति । तस्य दक्षिणहस्तस्य कंकणं रुक्मनिर्मितम् ॥५०॥
सरयूजलमध्ये तु पतिष्यति महोज्ज्वलम् । तत्र तोये कुमुदस्य पन्नगस्य कुमुद्वती ॥५१॥
स्वसा दृष्ट्वा कंकणं तद्गृहीत्वा सद्म यास्यति । कुशोऽपि कंकणार्थं हि बाणं सन्धारयिष्यति ॥५२॥
सरयूशोषणार्थं हि संनद्धश्च भविष्यति । ततः सा कुमुदं गत्वा सरयूः प्रार्थयिष्यति ॥५३॥
सोऽपि दृष्ट्वा कुशं क्रुद्धं स्वसामादाय सादरम् । कुशमागत्य तं नत्वा स्वसां तस्मै प्रदास्यति ॥५४॥
रत्नानि कंकणं दत्त्वा तेन सख्यं करिष्यति । एवं कुमुद्वतीभार्याऽग्रे तस्यान्या भविष्यति ॥५५॥
तस्यां कुशात्सुतनयोऽतिथिर्नाम्ना भविष्यति । चंपिकायां दुहितरः संभविष्यन्ति नो सुताः ॥५६॥
अतिथेः सूर्यवंशोऽग्रे चिरं विस्तारमेष्यति । एवं कुशस्य द्वे पत्न्यौ वर्णिते शिष्य वै मया ॥५७॥
अथ स्वीयगृहे पत्न्याऽकरोत्क्रीडां कुशः सुखम् । तथा स्वीयगृहे पत्न्याऽकरोत्क्रीडां लवोऽपि च ॥५८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विवाहकाण्डे
कुशलवयोर्विवाहवर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

(रामका गन्धर्वकन्याओं और नागकन्याओंको जलदेवीके पंजेसे छुड़ाना)

श्रीरामदास उवाच

एकदा रघुवीरः स सीतया बालबंधुभिः । पौरैर्मन्त्रिजनैरिष्टैः पुष्पकस्थो ययौ वनम् ॥ १ ॥
पश्यन्नानाकौतुकानि रंजयन् जानकीं मुदा । ययौ स दंडकारण्यमगस्तेराश्रमान्तिकम् ॥ २ ॥
राममागतमाकर्ण्य कुंभजन्मा मुनीश्वरः । प्रत्युद्गम्य रघुश्रेष्ठं निनाय स्वाश्रमं प्रति ॥ ३ ॥
ततः स मुनिवर्यस्तु स्नात्वा रहसि संस्थितः । अन्नपूर्णां महालक्ष्मीं चिंतयामास चेतसि ॥ ४ ॥

आगे जब कि रामचन्द्रजीका वैकुण्ठारोहण हो जायगा। तब एक समय अयोध्यापुरीके सरयूजलमें कुश अपनी स्त्री चम्पिकाके साथ जलक्रीडा करते रहेंगे । उसी समय कुशके दाहिने हाथका सुवर्णकंकण जलमें गिर पड़ेगा। उस जलमें कुमुद नामक सर्पकी बहिन कुमुद्वती उस कङ्कणको लेकर घर चली जायगी और कुश अपने कङ्कणके लिए धनुषपर बाण चढ़ायेंगे ॥ ४९-५२ ॥ इस प्रकार क्रुद्ध कुश सरयूको सुखा देना चाहेंगे। इसपर सरयू कुमुदके पास जाकर प्रार्थना करेंगी ॥ ५३ ॥ कुमुद भी सरयूके कथनानुसार कुशको कुपित देखकर उनके पास आयेगा और उन्हें प्रणाम करके अपनी बहिन कुमुद्वती कुशको दे देगा और बहुतसे रत्न तथा वह खोया हुआ कङ्कण देकर कुशसे मित्रता कर लेगा। इस तरह कुछ समय बाद कुशकी कुमुद्वती नामकी एक दूसरी भार्या भी होगी ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ उससे कुशका सुन्दर पुत्र अतिथि होगा। चम्पिकासे कन्यायें ही होंगी, पुत्र नहीं होंगे ॥ ५६ ॥ आगे चलकर उसी अतिथिसे सूर्यवंशका विस्तार होगा। हे शिष्य! इस प्रकार मैंने कुशकी दोनों पत्नियोंकी कथा कह सुनायी ॥ ५७ ॥ यह सब हो जानेपर कुश अपनी स्त्री चम्पिका तथा लव सुमतिके साथ आनन्दपूर्वक जीवनयापन करेंगे ॥ ५८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पण्डेयरामतेजशास्त्रिविरचितभाषाटीकासहिते विवाहकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीरामदास बोले—एक बार रामचन्द्रजी बालवधुओं, पुरवासियों, मन्त्रियों तथा इष्टजनोंके साथ पुष्पकविमानपर बैठकर अनेक प्रकारके कौतुक देखते और सीताको प्रसन्न करते हुए वनमें गये। वहाँ दण्डकारण्यमें अगस्त्य ऋषिके आश्रमपर जा पहुँचे ॥ १ ॥ २ ॥ जब कि अगस्त्यजीको रामके आनेका समाचार मिला तो अगवानीके लिए स्वयं गये और उन्हें आदरपूर्वक अपने आश्रममें ले आये ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर स्नान करके अगस्त्यजी एकान्तमें बैठे और मन ही मन महालक्ष्मी अन्नपूर्णाका ध्यान किया ॥ ४ ॥

तदा तत्तपसा तुष्टाऽऽविर्बभूव सुरेश्वरी । ददौ तस्मै पायसेन पूरितं पात्रमुत्तमम् ॥ ५ ॥
अन्नपूर्णा मुनिं प्राह स्थाल्यास्तु विविधानि हि । पक्वान्नानि यथेष्टानि निष्कास्य तव भामिनी ॥ ६ ॥
सर्वेषामग्रतः शीघ्रं करोतु परिवेषणम् । इत्युक्त्वा साऽन्नपूर्णा तं मुनिमन्तर्दधे तदा ॥ ७ ॥
लोपामुद्रा मुनेः पत्नी स्थाल्या निष्कास्य वेगतः । दिव्यान्नानि विचित्राणि सर्वेषां पुरतस्तदा ॥ ८ ॥
समर्चितानां विप्राणां चकार परिवेषणम् । अथ तुष्टं रघुश्रेष्ठं कंकणे रत्ननिर्मिते ॥ ९ ॥
ददौ मुदा कुम्भजन्मा सीतायै दिव्यकुंडले । एवं संपूजितस्तेन मुनिना रघुनन्दनः ॥१०॥
सहितोऽगस्तिना स्थित्वा पुष्पके पूर्ववत्पुनः । पश्यन्तौ दण्डकारण्ये कौतुकानि समंततः ॥११॥
विचचार रघुश्रेष्ठो दर्शयामास मैथिलीम् । नानावृक्षान्पर्वतांश्च नदीः पक्षिकुलान्मृगान् ॥१२॥
पञ्चाप्सरसरो नाम ददर्शासौ भ्रमन् सरः । तत्तटे राघवो रात्रौ निवासमकरोन्मुदा ॥१३॥
एतस्मिन्नंतरे रात्रौ नृत्यमप्सरसां शुभम् । शुश्राव मधुरं गीतं सीतया मंचके प्रभुः ॥१४॥
तेऽपि सर्वे शुश्रुवुस्तन्नृत्यं गीतं च सुस्वरम् । अदृष्ट्वाऽप्सरसस्तत्र तदा स रघुनन्दनः ॥१५॥
पप्रच्छ कुंभजन्मानं गीतं नृत्यं कुतस्त्विदम् । श्रूयते मुनिशार्दूल वदस्व त्वं सविस्तरम् ॥१६॥
इति रामवचः श्रुत्वा तमगस्तिर्वचोऽब्रवीत् । राम राजीवपत्राक्ष किं त्वं वेत्सि न वै त्विदम् ॥१७॥
सर्वानेतान्मन्मुखेन वृत्तं श्रावयितुं मुदा । चेन्मां पृच्छसि तर्ह्यद्य तवाग्रे प्रवदाम्यहम् ॥१८॥
पुरा गन्धर्वराजस्य पुत्र्यः पंच मनोरमाः । अरजस्का मुदा क्रीडां चक्रुस्त्र सरोवरे ॥१९॥
एतस्मिन्नंतरे राम नागकन्याः सरोवरात् । क्रीडार्थं निर्ययुः सप्त बहिरप्राप्तयौवनाः ॥२०॥
तासां परस्परं मैत्री बभूव रघुनन्दन । तत्र ता नागकन्याश्च तथा गन्धर्वकन्यकाः ॥२१॥
यातायातं सदा चक्रुः क्रीडार्थं सरसस्तटे । तपता मुनिना तत्र मुहुर्वाक्यैर्निवारिताः ॥२२॥

उसी समय उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर देवताओंकी भी अधिष्ठात्री देवी अन्नपूर्णा प्रकट हो गयीं। उन्होंने अगस्त्यजीको खीरसे भरा एक पात्र दिया ॥५॥ और कहा कि इस बटलोईमेंसे विविध प्रकारके पकवान निकाल-निकालकर तुम्हारी स्त्री सबके आगे परोस दे। इतना कहकर अन्नपूर्णा अन्तर्धान हो गयीं ॥ ६ ॥ ७ ॥ इसके अनन्तर जब कि अगस्त्यजीने साथियों तथा विप्रों समेत रामकी पूजा कर ली, तब अगस्त्यजीकी पत्नी लोपामुद्राने उसी पात्रमेंसे पकवान निकाल-निकालकर सबके आगे परोस दिया। भोजनोपरान्त प्रसन्न मनवाले रामको अगस्त्यने एक जोड़ी कङ्कण और सीताको कुण्डल दिये ॥ ८–१० ॥ इस प्रकार अगस्त्यसे सत्कृत होकर राम अगस्त्यको अपने साथ लिये सबके साथ पुष्पक विमानपर जा बैठे और दण्डकारण्यमें चारों ओर विविध प्रकारके कौतुक देखते हुए इधर-उधर घूमने लगे ॥ ११ ॥ १२ ॥ रास्तेमें नाना प्रकारके वृक्ष, पर्वत, नदी, पक्षी आदि सीताको दिखाते हुए वे पंचाप्सर नामक सरोवरपर पहुँचे और वहाँपर रामने रात्रिभर निवास किया ॥ १३ ॥ रात्रिके समय जब कि राम सीताके साथ अपनी शय्यापर सोये थे, तब उन्हें मीठे-मीठे गीत और नृत्यकी ध्वनि सुन पड़ी ॥ १४ ॥ उनके सिवाय रामके साथवालोंने भी वह सुस्वर ध्वनि सुनी, किन्तु अप्सरायें नहीं दीख पड़ीं। तब रामने अगस्त्यसे पूछा—हे मुनिश्रेष्ठ ! आप मुझे यह बतलाइए कि यह नृत्य-गानकी ध्वनि कहाँसे आती सुनायी दे रही है, सो विस्तारपूर्वक हमें बतलाइए ॥ १५ ॥ १६ ॥ रामकी बात सुनकर महर्षि अगस्त्यने कहा—हे राजीवलोचन राम ! क्या आप यह वृत्तान्त नहीं जानते ? ॥ १७ ॥ अच्छा, यदि हमींसे कहलाना चाहते हैं तो मैं आपको सुना रहा हूँ ॥ १८ ॥ आजसे बहुत दिनों पहले गन्धर्वराजकी पाँच सुन्दरी कन्यायें, जिनका कि रजोधर्म भी नहीं हुआ था, आनन्दपूर्वक इस सरोवरमें जलक्रीड़ा किया करती थीं ॥ १९ ॥ हे राम ! उसी समय एक बार उस सरोवरसे सात नाग-कन्यायें भी जलक्रीड़ा करनेको निकलीं। उनकी भी बाल्यावस्था थी और यौवनका रंग अभी नहीं चढ़ा था ॥ २० ॥ तदनन्तर उन गन्धर्वकन्याओं और नागकन्याओंमें परस्पर मित्रता हो गयी और वे नित्य उस सरोवरमें जलक्रीड़ा करनेको आने-जाने लगीं। उसी सरोवरपर तपस्या करते हुए एक तपस्वीने उनको कई बार

माऽऽगच्छध्वं मन्निकटे चेति ता बालभावतः । अमान्यंत्यस्तद्वाक्यं समाजग्मुर्निरन्तरम् ॥२३॥
इन्द्रेण बोधिताश्चापि तत्तपोध्वंसनं प्रति । मुनिश्चापि तपोनाशं दृष्ट्वा शापादिना तदा ॥२४॥
विना शापेन तासां स दण्डं सम्मन्त्रयद्धृदि । आत्मवाक्यप्रभावेण जलदेवीः प्रचोदयत् ॥२५॥
तद्वाक्याज्जलदेव्यस्ता मध्याह्ने स्वीयमंदिरम् । निन्युर्बलात्कारेण बलादेव यत्र केषां गतिर्न हि ॥२६॥
गंधर्वाः पन्नगा यत्र गंतुं शक्ता न चाभवन् । तपोऽन्ते स मुनिः स्वर्गं गतस्ता ह्यत्र संस्थिताः ॥२७॥
ताः सर्वा जलदेवीनां गेहे संत्यधुना प्रभो । इदं वृत्तमाधुनिकं विद्धि राम स्मयप्रदम् ॥२८॥
ता ह्यत्र जलदेवीनां जलांतर्गतसद्मनि । कुर्वन्ति नृत्यगीतानि तासां संश्रूयते ध्वनिः ॥२९॥
एवं राम यथा पृष्टं त्वया सर्वं मया तथा । वृत्तं तवाग्रे कथितं कुरु येन हितं भवेत् ॥३०॥
सर्वासां नागकन्यानां गांधर्वीणां तथा विभो । मुनिना चोदितश्चेत्थं तदा सीतापतिर्मुदा ॥३१॥
लक्ष्मणं प्राह मे चापमानयाद्य क्षणादिह । मुक्त्वा बाणं मोचयामि दग्ध्वा देवीजलस्थिताः ॥३२॥
कन्यकाः पन्नगानां च तथा गंधर्वकन्यकाः । इति तद्रामवाक्यं स श्रुत्वा सौमित्रिरादरात् ॥३३॥
शीघ्रं चापं सतूणीरं ददौ श्रीराघवं प्रति । ततः कोदण्डमुद्यम्य टणत्कृत्य रघूद्वहः ॥३४॥
शरं जग्राह तूणीरं निजनामांकितं शितम् । तदा चचाल धरणी चुक्षुभुः सप्त सागराः ॥३५॥
बबौ घोरतरो वायू रजोव्याप्ता दिशोऽभवन् । तारा निपेतुर्धरणीं दुद्रुवुर्वनचारिणः ॥३६॥
पर्वताः कंपिता आसन् ववर्षुर्लोहितं घनाः । तज्ज्ञात्वा जलदेव्यस्ताः श्रुत्वा चापध्वनिं महत् ॥३७॥
भयभीताः समाजग्मुस्ताभिः सर्वाभिरादरात् । प्रणेमुस्तास्तदा रामं बालिकास्तास्तु द्वादश ॥३८॥
राघवायार्पयामासुर्दिव्यभूषणभूषिताः । राघवं जलदेव्यस्ताः प्रार्थयामासुरादरात् ॥३९॥
राम राम महाबाहोऽस्माभिर्यदपराधितम् । तत्क्षमस्व रघुश्रेष्ठ मा मुंच स्वपतत्रिणम् ॥४०॥

रोककर कहा–॥ २१ ॥ २२ ॥ यहाँ मेरे पास तुम लोग मत आया करो। किन्तु बालभावसे मुग्ध वे कन्याएँ ऋषिकी बात न मानती हुई नित्य आती-जाती रहीं। इन्द्रने भी ऋषिका तपोभंग करनेके लिए उन कन्याओंको उभाड़ दिया था। अब ऋषिने अपने मनमें विचार किया कि शापादि देकर इन्हें दण्ड देनेसे अपनी तपस्या क्षीण होगी। इसी लिए ऐसा मार्ग निकालना चाहिए कि जिससे इन्हें बिना शापके दण्ड मिल जाय। जलदेवियाँ उन कन्याओंको पकड़कर हठात् अपने घर ले गयीं। जहाँ कि गन्धर्वों तथा पन्नगोंकी भी गति नहीं थी। अपनी तपस्या पूर्ण करके ऋषि तो स्वर्गको चले गये, किन्तु वे कन्यायें इस सरोवरमें जलदेवियोंके पास अब भी विद्यमान हैं ॥ २३–२७ ॥ हे राम! यह एक आश्चर्यमयी घटना घट गयी थी। वे ही गंधर्वों और पन्नगोंकी कन्यायें जलदेवियोंके घरमें नाच रही हैं, उन्हींके गानेकी मधुर ध्वनि सुनायी देती है ॥ २८ ॥ २९ ॥ हे राम! आपने जैसा पूछा, मैंने कह सुनाया। अब आप ऐसा करिए कि जिससे उन कन्याओंका कल्याण हो। इस प्रकार अगस्त्यजीकी प्रेरणासे रामने लक्ष्मणसे कहा–हे लक्ष्मण! मेरा धनुष तो ले आओ। मैं क्षण भरमें उन गंधर्वों और नागोंकी कन्याओंको जलदेवियोंके पंजेसे छुड़ा दूँगा। इस तरह रामकी बात सुनकर लक्ष्मणने तुरंत आदरपूर्वक तूणीर तथा धनुष लाकर रामको दे दिया। इसके अनंतर रामने धनुष उठाकर टंकोर किया ॥ ३०–३४ ॥ तदनंतर उन्होंने तरकससे अतितीक्ष्ण बाण निकाला, जिसपर रामका नाम लिखा हुआ था। इससे पृथ्वी डगमगाने लगी और सातों समुद्रोंमें प्रलयङ्कर लहरें उठने लगीं ॥ ३५ ॥ जोरोंसे वायु चलने लगी, दसों दिशायें धूलसे भर गयीं, तारे टूट-टूटकर गिरने लगे, वनैले जीव वन छोड़कर भागने लगे, संसारका पर्वत-वृन्द काँपने लगा और मेघमण्डल रुधिरमयी वर्षा करने लगा। उस सरोवरकी जलदेवियां धनुषका घनघोर टंकोर सुनकर भयभीत हो गयीं। वे तुरन्त उन बारहों कन्याओंको अपने साथ लिये बाहर आयीं और प्रणाम करके दिव्य अलंकारोंसे विभूषित उन कन्याओंको उन्होंने रामको सौंप दिया ॥ ३६–३९ ॥ वे सब इस प्रकार स्तुति करने लगीं। उन्होंने कहा–हे महाबाहो राम! हमने जो अपराध किया है, सो आप क्षमा

न कश्चित्सूर्यवंशेऽभूत्स्त्रीषु शस्त्रप्रहारकः । त्वयाऽपि रक्षिता पूर्वं स्त्रीत्वाद्भूर्जाह्नवीतटे ॥४१॥
यदाऽनया तु शपथः कृतो मैथिलकन्यया । ताटिकादिराक्षसीषु यत्कृतं बाणमोचनम् ॥४२॥
ब्रह्मघ्नीषु त्वया पूर्वं तत्सर्वेषां हिताय च । इति तासां वचः श्रुत्वा विहस्य रघुनन्दनः ॥४३॥
स्थापयामास तूणीरे पूर्ववत्तं स्वमार्गणम् । ततस्ताभिः पूजितः स तदा हृष्टो रघूत्तमः ॥४४॥
जलदेवीर्ददावाज्ञां स्वस्थलं गम्यतामिति । एतस्मिन्नन्तरे तत्र गंधर्वाश्चाथ पन्नगाः ॥४५॥
विदित्वा सकलं रामकृतं रामांतिकं ययुः । नत्वा रामं ससीतं च तथा तं कुम्भसंभवम् ॥४६॥
उपायनान्यनेकानि समर्प्य रघुनन्दनम् । ऊचुस्ते मंजुलं वाक्यं प्रबद्धकरसंपुटाः ॥४७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विवाहकांडे
जलदेवीजीवदानं बालिकामोचनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

(गन्धर्वों तथा नागोंकी बारह कन्याओंका लक्ष्मणादिके पुत्रोंके साथ विवाह होनेका निश्चय)

गन्धर्वपन्नगा ऊचुः

राम कंजानन स्वामिन्मोचिता बालिकास्त्वया । विवाहानरजस्कानां पुत्रैस्त्वं कर्तुमर्हसि ॥ १ ॥
अद्य धन्या वयं सर्वे नः कुलं पावनं कृतम् । त्वया राम महाबाहो तारिताः स्मो वयं प्रभो ॥ २ ॥
सप्तजन्मसु यत्पुण्यं कृतमस्ति रघूद्वह । अस्माभिस्तेन सम्बन्धस्त्वयाऽद्य भवतु प्रभो ॥ ३ ॥

श्रीरामदास उवाच

इति तेषां वचः श्रुत्वा सीतया स रघूद्वहः । अङ्गीकृत्य वचस्तेषामगस्तिमवलोकयत् ॥ ४ ॥
तदा प्राह कुम्भजन्मा राघवं वचनं मुनिः । रामान्याग्रे कुमुदस्य स्वसा नाम्ना कुमुद्वती ॥ ५ ॥
त्वयि प्राप्ते हि वैकुण्ठं कुशपत्नी भविष्यति । चंपिकायां न तनयो भविष्यति रघूद्वह ॥ ६ ॥

कर दें। हमपर इन बाणोंको आप मत छोड़िये ॥४०॥ अब तक आपके सूर्यवंशमें स्त्रियोंपर शस्त्रका प्रहार करनेवाला कोई भी नहीं हुआ है । आपने भी उस समय गङ्गाजीके किनारे सीताको लिये जाती हुई पृथ्वीकी इसी लिए रक्षा की थी कि वह स्त्री थी । इसके सिवाय आपने जो ताड़कापर शस्त्र छोड़ा, उसका कारण यह था कि वह ब्रह्मघातिनी थी। उसे तो आपने ब्राह्मणोंके कल्याणार्थ मारा था । उनकी ऐसी विनीत बातें सुनीं तो मुस्कुराकर रामने अपने बाणको फिर तरकसमें रख लिया। इसके बाद उन जलदेवियोंसे पूजित रामने प्रसन्न होकर उनसे कहा कि अब तुम लोग अपने स्थानको जाओ। इसके अनन्तर उन गन्धर्वों और पन्नगोंने (जिनकी कन्यायें जलदेवियोंके कब्जेमें थीं) जब यह समाचार सुना तो रामके पास आये और सीता, राम तथा अगस्त्यको प्रणाम करके उन्होंने रामको विविध प्रकारकी भेंटें दीं। तदनन्तर हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगे—॥ ४१-४७ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृत ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते विवाहकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

गन्धर्व तथा पन्नगगण कहने लगे-हे कमल सरीखे नेत्रोंवाले राम ! आपने हमारी पुत्रियोंको उन जलकन्याओंके हाथसे जैसे छुड़ाया है, उसी तरह अब इनका विवाह भी अपने पुत्रोंके साथ कर लीजिए ॥ १ ॥ आज हम अपनेको धन्य समझते हैं। आज हमारा कुल पवित्र हो गया। हे प्रभो ! आपने हमारा उद्धार कर दिया ॥ २ ॥ हमने अपने सात जन्मोंमें जो पुण्य किया हो, उसके प्रतापसे आज हमारा और आपका सम्बन्ध हो जाय ॥ ३ ॥ श्रीरामदासने कहा-इस प्रकारकी बातें सुनकर महारानी सीता और रामने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और अगस्त्यकी ओर निहारने लगे ॥ ४ ॥ अगस्त्यने कहा-हे राम ! जब आप वैकुण्ठधामको चले जायँगे, तब कुमुद्वती कुशकी पत्नी होगी। हे रघूद्वह ! कुशकी वर्तमान स्त्री चम्पिकाके

कुशात्पुत्रः कुमुद्वत्यामतिथिस्तु भविष्यति । राज्यकर्ता वंशकर्ता स एवाग्रे भविष्यति ॥ ७ ॥
अतस्त्वमधुना राम नागकन्याः कुशं विना । सप्त स्वसप्तपुत्रेभ्यः प्रयच्छ विधिना द्विजैः ॥ ८ ॥
पञ्चगंधर्वकन्याश्च यूपकेतुं कुशं लवम् । विना स्वपञ्चपुत्रेभ्यः प्रयच्छ रघुनन्दन ॥ ९ ॥
राक्षसेन विवाहेन यूपकेतुः शिशुस्ततः । अग्रे पत्नी महानेष करिष्यत्यपरां शुभाम् ॥ १० ॥
एवं रामसुताः सर्वे स्वस्वस्त्रीभ्यां यथासुखम् । क्रीडयिष्यंति पौत्रास्तान् भविष्यंति प्रपौत्रकाः ॥११॥
प्रपौत्रस्य प्रपौत्रं त्वं दृष्ट्वा सीतासमन्वितः । सुखं यास्यसि वैकुण्ठं बन्धुभिर्नगरीस्थितैः ॥१२॥
एवं श्रुत्वा मुनेर्वाक्यमंगीकृत्य रघूद्वहः । तासां नामानि पप्रच्छ गन्धर्वान्पन्नगानपि ॥१३॥
तदाऽब्रवीत्स गंधर्वः स्वपुत्रीणां सविस्तरात् । तासां नामानि रामाग्रे पञ्चानां सरसस्तटे ॥१४॥
चंद्रिका चंद्रवदना चञ्चला चपला चला । एवं नामानि पंचानां क्रमेण रघुनंदनः ॥१५॥
श्रुत्वाऽवलोकयामास पन्नगांस्तेऽपि चाब्रुवन् । कंजानना कंजनेत्रा कंजांघ्री च कलावती ॥१६॥
कलिका कमला चैव मालती सप्त कीर्तिताः । एवं नामानि पंचानां क्रमेण रघुनंदनः ॥१७॥
श्रुत्वा ताः पुष्पके स्थाप्य तैर्निद्रामकरोन्निशि । अथ प्रभाते श्रीरामः हुत्वा स्नात्वा यथाविधि ॥१८॥
गन्धर्वपन्नगांश्चापि तदा वचनमब्रवीत् । एभिर्जनैर्मया साकं विवाहार्थं रसातलम् ॥१९॥
नैव योग्यं समागन्तुं मर्त्यलोकनिवासिना । तस्माच्छृणुध्वं मद्वाक्यं सुहृदः सकलाः शुभम् ॥२०॥
यूयं गत्वा निजस्थानं स्वस्त्रीभिश्च सुहृज्जनैः । आगंतव्यं विवाहार्थमयोध्यां मे यथासुखम् ॥२१॥
अधुनाऽहं तु गच्छामि पुरीमग्रे क्षणेन हि । विहायसा विमानेन पताकाध्वजमालिना ॥२२॥
तथेति रामवचनात्ते गताः स्वस्थलानि हि । रामोऽपि मुनिना ताभिर्बालिकाभिः सुतैः स्त्रिया ॥२३॥
विहायसा पुष्पकस्थो ययौ पश्यन्बलानि सः । अयोध्यां प्रहरेणैव मुदा प्राप रघूद्वहः ॥२४॥

कोई पुत्र नहीं होगा ॥ ५ ॥ ६ ॥ हाँ, कुमुद्वतीसे कुशके अतिथि नामका पुत्र उत्पन्न होगा और वही पुत्र राज्यकर्ता एवं वंशका बढ़ानेवाला होगा। इससे हे राम! कुशको छोड़कर बाकी सब कुमारोंका विवाह इन कन्याओंके साथ कर दीजिए। इनमेंसे पाँच गन्धर्वकन्याओंको यूपकेतु तथा कुश-लवके अतिरिक्त पाँच पुत्रोंको दे दीजिए ॥ ७–९ ॥ आगे चलकर यूपकेतु राक्षसविवाहके क्रमसे एक अच्छी स्त्रीके साथ विवाह करेगा ॥ १० ॥ हे राम! ऐसा करनेसे सब बेटे अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ सुखपूर्वक विहार करेंगे। उनके पौत्र-प्रपौत्र आदि भी होंगे ॥ ११ ॥ प्रकार आप अपने प्रपौत्रके प्रपौत्रोंको देखकर सीता अपने बन्धुओं और पुरवासियोंके साथ वैकुण्ठधामको जायँगे। इस प्रकार अगस्त्यजीकी बात सुनी तो उन्होंने अङ्गीकार कर लिया और उन गन्धर्वों-पन्नगोंसे उनकी कन्याओंके नाम पूछने लगे ॥ १२ ॥ १३ ॥ गन्धर्वराज अपनी पाँच कन्याओंका नाम बतलाते हुए बोले—चन्द्रिका, चंद्रवदना, चंचला, चपला और चला ये इनके नाम हैं ॥ १४ ॥ कन्याओंका नाम सुनकर राम उनकी ओर देखने लगे। फिर पन्नग इस प्रकार अपनी सात कन्याओंके नाम बतलाने लगे—कंजानना, कंजनेत्रा, कंजांघ्री, कलावती, कलिका, कमला और मालती ये सात नाम हैं। इस रीतिसे सबका नाम सुनकर रामने उन कन्याओंको पुष्पक विमानपर चढ़ा लिया और सब साथियोंके साथ सोगये। इसके अनन्तर प्रातःकालके समय राम उठे और विधिपूर्वक स्नान-हवन आदि किया ॥१५–१८॥ फिर वे उन गन्धर्वों तथा पन्नगोंको बुलाकर कहने लगे—हे गन्धर्व तथा पन्नगगण! मैं मर्त्यलोकका निवासी मनुष्य हूँ। इस कारण मैं अपने बन्धुवर्गके साथ न तो पन्नगोंके यहाँ पाताललोकको जा सकूँगा और न गन्धर्वोंके यहाँ स्वर्गलोकको ही अपने बच्चोंका विवाह करने जा सकूँगा। इससे आप सुहृद्गण मेरी बात सुनें ॥ १९ ॥ २० ॥ आपलोग अपने-अपने घर जायँ और इनका विवाह करनेके लिए वहाँसे स्त्रियों तथा बन्धु-बांधवोंके साथ आनन्दपूर्वक अयोध्या पधारें ॥ २१ ॥ कुछ देर बाद मैं अपने विमान द्वारा आकाशमार्गसे अपनी नगरीको चला जाऊँगा ॥ २२ ॥ "बहुत अच्छा" कहकर वे गन्धर्व तथा पन्नग अपने-अपने स्थानको चले गये। इधर रामचन्द्रजी भी

नीराजितः पुरस्त्रीभिर्विवेश निजमंदिरम् । वसिष्ठगेहे ताः सर्वाः प्रेषयामास राघवः ॥२५॥
अथ रामः सभामध्ये सौमित्रिमिदमब्रवीत् । आकारणीया राजानः सुहृदश्च मुनीश्वराः ॥२६॥
सांतःपुराः सपौराश्च स्वस्वजानपदैः सह । शृङ्गारणीयाऽयोध्येयं परिखाः सप्त सादरम् ॥२७॥
शोधनीयास्तथा सौधसमूहेषु सुधा शुभा । देया चित्राणि लेख्यानि प्रासादेषु समंततः ॥२८॥
देवालयेषु सर्वेषु सुधा देया मनोरमा । लेखनीयानि चित्राणि वलयः स्थाप्यतां पृथक् ॥२९॥
बंधनीयाः पताकाश्च रोपणीया ध्वजा अपि । समंततस्तोरणानि बंधनीयानि लक्ष्मण ॥३०॥
वेद्यः कार्या रुक्ममय्यो बंधनीयाश्च मण्डपाः । शृंगारणीया हस्त्यश्वशिबिकाश्च सहस्रशः ॥३१॥
गंधर्वेभ्यः पन्नगेभ्यो वस्तुं गेहानि वै पृथक् । कुरुष्व नूतनान्यन्नवस्त्राद्यैः पूरितानि च ॥३२॥
अन्यच्चापि यथायोग्यं यद्यज्जानासि लक्ष्मण । तत्तत्कुरुष्व यन्नोक्तं मया तव रघूद्वह ॥३३॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा स लक्ष्मणः । तथा चकार तत्सर्वं यथा रामेण शिक्षितः ॥३४॥
अथ गन्धर्वराजस्तु तथा वै सप्त पन्नगाः । सुहृद्भिः सावरोधास्ते ययुः शीघ्रं मुदान्विताः ॥३५॥
सर्पा मानवरूपेण हस्त्यश्वरथसंस्थिताः । गन्धर्वाश्चापि सैन्यैस्ते साकेतोपवनं ययुः ॥३६॥
ततस्तानागतान् श्रुत्वा प्रत्युद्गम्य रघूद्वहः । नानावाद्यानि नादैश्च नृत्यैरप्सरसां पुरीम् ॥३७॥
नीत्वा संस्थापयामास विस्तीर्णेषु गृहेषु सः । अथ तैरेकदा रामः सभायां संस्थितः सुखम् ॥३८॥
ज्योतिर्विदः समाहूय वसिष्ठं तत्पुरोधसः । पृथग्विवाहान्कर्तुं स मुहूर्तानतिमंगलान् ॥३९॥
सम्यग्विचारयामास वर्षमध्ये सविस्तरम् । ज्योतिर्विदस्तदा प्रोचुर्मुहूर्तानतिसौख्यदान् ॥४०॥
पक्षांतरेण वैशाखे द्वौ मुहूर्तौ शुभावहौ । तथा ददुर्मुहूर्तौ द्वौ ज्येष्ठे पक्षांतरेण ते ॥४१॥
द्वावेव मार्गशीर्षेऽपि त्रीन् माघे फाल्गुनेऽपि च । एवं द्वादशनामोर्णां चक्रुर्लग्नविनिश्चयम् ॥४२॥

उन बालिकाओं, अपने पुत्रों तथा स्त्रियोंके साथ पुष्पक विमानपर बैठकर आकाशमार्गसे रास्तेके वनोंको देखते हुए वहाँसे चल दिये और एक प्रहरमें अयोध्या आ गये ॥ २३ ॥ २४ ॥ वहाँ पहुँचनेपर पुरवासिनी स्त्रियोंने उनकी आरती उतारी और उन कन्याओंको वसिष्ठजीके यहाँ भेज दिया ॥ २५ ॥ तदनन्तर रामने सभामें लक्ष्मणसे कहा—सब राजाओं, सम्बन्धियों और मुनियोंके यहाँ निमन्त्रण भेज दो कि सब लोग अपनी स्त्रियों तथा पुरवासियोंके साथ अयोध्या पधारें। सातों परिखाओं समेत अयोध्या नगरीका शृङ्गार करो ॥२६॥ अयोध्याके सब मकान चूनेसे पुतवाये जायँ और उनपर चारों ओर विविध प्रकारके चित्र बनाये जायँ ॥ २७ ॥ समस्त देवालयोंमें अच्छी तरह पुताई की जाय और उनपर भी सुन्दर चित्र बनाकर पूजनका सुप्रबन्ध किया जाय ॥ २८ ॥ २९ ॥ पताकाएँ बाँधी जायँ, ध्वजारोपण किया जाय और मंदिरोंके चारों ओर तोरण बांधे जायँ। जहाँ तहाँ सुवर्णमयी वेदियाँ बनवायी जायँ । हजारों हाथी, घोड़े तथा पालकियोंका शृङ्गार किया जाय। गन्धर्वों-पन्नगोंके रहनेको नये-नये मकान बनवाकर उनमें अच्छी तरह अन्न-वस्त्र आदिका प्रबन्ध कर दो ॥ ३०-३२ ॥ हे लक्ष्मण ! जो मैं कह चुका हूँ, वह और जो नहीं भी बतलाया है और तुम जानते होओ सो भी ठीक कर लो ॥ ३३ ॥ रामकी बात सुनकर लक्ष्मणने जैसा उन्होंने कहा था, तदनुसार सब प्रबंध कर दिया ॥ ३४ ॥ इसके अनन्तर गंधर्वराज और सातों पन्नग अपने सम्बन्धियों तथा स्त्रियोंके साथ हर्षपूर्वक अयोध्याको चल दिये ॥ ३५ ॥ उस समय समस्त सर्प मानव रूप धारण किये हाथी, घोड़े तथा रथपर सवार होकर अयोध्या आये। गंधर्व भी अपनी विशाल सेनाके साथ साकेतपुर आ पहुँचे ॥ ३६ ॥ ॥ ३७ ॥ इसके बाद जब रामचन्द्रजीने सुना कि वे लोग अयोध्या आ गये हैं तो विविध प्रकारके बाजों और नाचके साथ नगरीमें ले आये और खूब लम्बे-चौड़े भवनमें उनको ठहराया। इसके अनन्तर एक समय राम सब लोगोंके साथ सभामें बैठे तो वसिष्ठ तथा अनेक ज्योतिषियोंको बुलाया और विवाहके लिए अलग-अलग मुहूर्तका अच्छी तरह विचार करनेको कहा। ज्योतिषियोंने रामके आज्ञानुसार अतिशय सुखदायी मुहूर्त विचारकर कहा कि एक पक्ष बीतनेपर वैशाख मासमें दो मुहूर्त हैं। एक पक्षके अनन्तर ज्येष्ठ मासमें भी दो ही मुहूर्त हैं ॥ ३८-४१ ॥ दो

लवस्याथांगदस्यापि विवाहौ तैर्विनिश्चितौ । ज्योतिर्विद्भिर्वसिष्ठेन वैशाखे राघवाग्रतः ॥४३॥
चित्रकेतोः पुष्करस्य विवाहौ तैर्विनिश्चितौ । ज्येष्ठे मासि क्रमेणैवं पक्षे पक्षे पृथक् पृथक् ॥४४॥
तक्षस्याथ सुबाहोश्च विवाहौ मार्गशीर्षके । पक्षांतरेण रामाग्रे ज्योतिर्विद्भिर्विनिश्चितौ ॥४५॥
यूपकेतोरंगदस्य चित्रकेतोर्विनिश्चिताः । माघमासे विवाहाश्च ज्योतिःशास्त्रविशारदैः ॥४६॥
पुष्करस्याथ तक्षस्य सुबाहोः फाल्गुने शुभे । विवाहा निश्चिताः शिष्य रामाग्रे गणकैस्तदा ॥४७॥
एवं विनिश्चिताः सर्वे विवाहा द्वादश क्रमात् । ज्योतिर्विद्भिर्निश्चिताश्च श्रुत्वा तानर्चयद्विभुः ॥४८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे वाल्मीकीये विवाहकांडे
द्वादशविवाहविनिश्चयो नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

(नागों तथा गंधर्वराजकी कन्याओंका विवाह)

श्रीरामदास उवाच

अथ ते गणकाः सर्वे वसिष्ठस्तत्पुरोधसः । कुमारीणां विभागांश्च चक्रुः श्रीराघवाग्रतः ॥ १ ॥
कंजाननां लवायाथ कंजाक्षीमंगदाय च । गणका निश्चयं चक्रुः कंजांघ्रीं चित्रकेतवे ॥ २ ॥
कलावतीं पुष्कराय तथा तक्षाय कालिकाम् । सुबाहवे च कमलां मालतीं यूपकेतवे ॥ ३ ॥
गणकैः सप्त ता एवं नागकन्या विनिश्चिताः । चंद्रिकामंगदायाथ चन्द्रास्यां चित्रकेतवे ॥ ४ ॥
चञ्चलाख्यां पुष्कराय तक्षाय चपलां तथा । सुबाहवे तु ह्यचलां प्रोचुस्ते गणकादयः ॥ ५ ॥
एवं गंधर्वकन्यास्ताः पंच विप्रैर्विनिश्चिताः । एवं हि निश्चयं कृत्वा गणकादीन् रघूत्तमः ॥ ६ ॥
विसृज्य मैथिलीं गत्वा सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् । ततो ययुः कोटिशस्ते पार्थिवाश्च मुनीश्वराः ॥ ७ ॥
सप्तद्वीपांतरस्थाश्च सावरोधाः सबालकाः । नानावाहनसंस्थाश्च पौरैर्जानपदैर्निजैः ॥ ८ ॥

मुहूर्त मार्गशीर्षमें, तीन मुहूर्त माघमें और तीन ही मुहूर्त फाल्गुनमें बतलाया। इस तरह उन बारहों कन्याओंके विवाहकी लग्न बन गयी। तदनंतर वसिष्ठके साथ-साथ उन ज्योतिषियोंने वैशाखवाली लग्नमें लव और अङ्गदके विवाहका मुहूर्त निश्चित किया। चित्रकेतु और पुष्करका विवाह ज्येष्ठमासकी लग्नमें निश्चित हुआ। तक्ष और सुबाहुका विवाह एक पक्ष बाद मार्गशीर्षके दूसरे पक्षमें निश्चित किया ॥ ४२-४५ ॥ यूपकेतु, अङ्गद तथा चित्रकेतुका विवाह माघ मासमें निश्चित हुआ ॥ ४६ ॥ पुष्कर, तक्ष तथा सुबाहुका विवाह रामके समक्ष बैठे हुए ज्योतिषियोंने फाल्गुन मासकी शुभ लग्नमें निश्चित किया ॥ ४७ ॥ इस तरह क्रमशः बारहो विवाहोंके निश्चित हो जानेपर रामने ज्योतिषियोंकी विधिवत पूजा की ॥ ४८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचितभाषाटीकासहिते विवाहकांडे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—उपर्युक्त प्रकारसे विवाह निश्चित हो जानेपर रामके सामने ही वसिष्ठ तथा ज्योतिषियोंने उन कन्याओंका विवाह तै करके यह तै किया कि कौन-सी कन्या किसको दी जाय ॥ १ ॥ कञ्जानना नामकी कन्या लवके लिए, कञ्जाक्षी अङ्गदके लिए, कञ्जांघ्री चित्रकेतुके लिए, कलावती पुष्करके लिए, कालिका तक्षके लिए, कमला सुबाहुके लिए और मालती यूपकेतुके लिए देना निश्चित हुआ ॥ २ ॥ ३ ॥ इस प्रकार ज्योतिषियोंने उन सब कन्याओंको देनेका निश्चय कर दिया। चंद्रिका अङ्गदके लिए, चंद्रास्या चित्रकेतुके लिए, चञ्चला पुष्करके लिए, चपला तक्षके लिए और अचला सुबाहुके लिए देनेके लिए उन ज्योतिषियोंने निश्चित किया। इस तरह उन पाँचों गन्धर्वकन्याओंके वरोंका निश्चय हो जानेपर रामने आदरपूर्वक ज्योतिषियोंको विदा किया और स्वयं सीताके पास जा पहुँचे। जो कुछ सभामें निश्चित हुआ था, सो उन्हें कह सुनाया। इसके बाद सातों द्वीपोंमें रहनेवाले करोड़ों मुनीश्वर तथा राजे अपने परिवार और प्रजा समेत नाना प्रकारकी सवारियोंपर सवार होकर अयोध्या आये ॥ ४-८ ॥ उस समय उन लोगोंसे सारी अयोध्या भर

तैः साऽयोध्यापुरी व्याप्ता विरेजे नितरां तदा । ययौ विभीषणश्चाथ सुग्रीवोऽपि प्लवंगमैः ॥ ९ ॥
ययौ स भूरिकीर्तिश्च पुत्राभ्यां शीघ्रमादरात् । ययौ स जनकश्चापि युधाजित्स ययौ तदा ॥१०॥
कौसल्यायाः सुमित्राया बांधवाद्याः समाययुः । अथ रामस्तु वैशाखशुक्ले द्विजवरैः सह ॥११॥
पुरोधसा सुहृद्भिश्च स्नानमभ्यंगपूर्वकम् । कृत्वा लवाय मांगल्यस्नानार्थं स्त्रीः प्रचोदयत् ॥१२॥
ततो मुहूर्तसमये वधूच्छिष्टां निशां लवम् । सम्यग् लिप्य सुतैलार्द्रां सीताद्या मातरस्तदा ॥१३॥
स्वयं सस्नुर्मुदा सर्वास्तूर्यनादैः सबालकाः । अथ रामो देवकस्य प्रतिष्ठां ब्राह्मणैः सह ॥१४॥
आदौ कृत्वा गणपतेः पूजां सम्यग्यथाविधि । पुण्याहादित्रयं चापि कृत्वा पूर्वं सविस्तरम् ॥१५॥
चकार विधिवत्तुष्टः पूजयामास वै मुनीन् । ततो मुहूर्तसमये गत्वा पन्नगमंदिरम् ॥१६॥
लवस्य कंजनयनाविवाहं विनिवर्तयत् । चतुर्थे दिवसे वंशपात्रस्थै रत्नदीपकैः ॥१७॥
नीराजितस्तदा रामो विरेजे मंडपे स्त्रिया । ततो निजगृहं गत्वा पूर्वोक्तैरुत्सवादिभिः ॥१८॥
लवेन कारयामास लक्ष्मीपूजनमुत्तमम् । ततो दानान्यनेकानि ददौ स रघुनन्दनः ॥१९॥
ततस्ते पार्थिवाः सर्वे तथा ते पन्नगा अपि । सुहृदश्चाथ गंधर्वाः पौरा जानपदादयः ॥२०॥
पूजयामासुः श्रीरामं वस्त्रैराभरणादिभिः । तथा तान् लक्ष्मणादींश्च कुशाद्यांश्चापि बालकान् ॥२१॥
ततस्ता नृपपत्न्यश्च सुहृत्पत्न्यः पृथक्पृथक् । नागपत्न्यश्च गंधर्वपत्न्यश्चान्यास्तथा स्त्रियः ॥२२॥
सीताद्याः पूजयामासुर्वस्त्रैराभरणादिभिः । सीताऽपि ताः सुहृत्पत्नीस्तथा पार्थिवकामिनीः॥२३॥
पूजयामास विधिवद्वस्त्रैराभरणादिभिः । रामोऽपि सुहृदः पौरान् गन्धर्वान्पन्नगान्नृपान् ॥२४॥
वस्त्रैराभरणैर्यानैः पूजयामास सादरम् । एवं वैशाखामासे तु सिते पक्षे लवस्य च ॥२५॥
कृत्वा विवाहं रामः स कृष्णपक्षे तु माधवे । चकार पूर्वद्वद्विवाहं ह्यंगदस्य च ॥२६॥
चित्रकेतोः पुष्करस्य विवाहो रघुनन्दनः । ज्येष्ठमासे शुक्लकृष्णपक्षयोरकरोन्मुदा ॥२७॥

गयी और वह बहुत ही सुन्दर दीखने लगी। बहुतसे वानरोंको साथ लिये हुए सुग्रीव, अपने दोनों बेटोंके साथ राजा भूरिकीर्ति, इनके सिवाय विभीषण, जनक, युधाजित, कौसल्या तथा सुमित्राके बन्धु-बान्धव आदि भी अयोध्यामें आ पहुँचे। इसके बाद वैशाखके शुक्लपक्षमें पुरोहितों तथा विप्रोंके साथ रामने अभ्यङ्ग-पूर्वक स्नान किया और लवको मङ्गलस्नान करानेके लिए स्त्रियोंसे कहा ॥ ९-१२ ॥ सीतादिक माताओंने जब मुहूर्त आया, तब वधूके जूठे हल्दी-तेल तथा उबटन लेकर लवके शरीरमें लगाया और तुड़ही तथा नगाड़े आदि बाजोंके साथ बालकोंके सङ्ग स्वयं भी स्नान किया। उधर रामने ब्राह्मणोंके साथ कुलदेवताकी स्थापना की ॥ १३ ॥ १४ ॥ स्थापनाके पूर्व यथाविधि गणपतिकी पूजा की और विस्तारसे तीन प्रकारका पुण्याहवाचन किया। इसके अनन्तर मेहमानीमें आये हुए मुनियोंकी पूजा करके उन्हें सन्तुष्ट किया। शुभ मुहूर्तमें पन्नगोंके यहाँ गये और वहाँ कञ्जनयनाके साथ लवका विधिवत् विवाह सम्पन्न किया। चौथे दिन बाँसकी छिटनीमें रखे हुए रत्न-दीपकोंसे रामकी आरती उतारी गयी। उस समय राम सीताके साथ बहुत ही सुन्दर दीख रहे थे। इसके अनन्तर पूर्वोक्त उत्सवोंके साथ राम अपने घर गये। वहाँ लवके हाथोंसे अच्छी तरह लक्ष्मीपूजन कराया और अनेक प्रकारके दान दिये ॥ १५-१९ ॥ इसके बाद उन देश-देशान्तरसे आये हुए राजाओं, पन्नगों, सम्बन्धियों, पुरवासियों और जनपदवासियोंने विविध प्रकारके वस्त्रों और आभूषणोंसे राम-लक्ष्मण तथा सब बालकोंकी पूजा की। इसके पश्चात् रानियों, सम्बन्धियोंकी स्त्रियों, नागपत्नियों तथा गंधर्व आदिकी स्त्रियोंको सीता आदि स्त्रियोंने वस्त्र और आभूषण दे-देकर विधिवत् सत्कृत किया। रामने भी सम्बन्धियों, पुरवासियों, गन्धर्वों और पन्नगोंकी वस्त्राभूषणसे भली भाँति पूजा की। इस तरह वैशाख मासके शुक्लपक्षमें लवका विवाह सम्पन्न किया और कृष्णपक्षमें पूर्ववत् उत्साह समेत अङ्गदका विवाह किया ॥ २०-२६ ॥ उसी प्रकार ज्येष्ठके शुक्ल और कृष्ण-

ततः सर्वान्नृपादींश्च ददावाज्ञां सुपूजितान् । ततः पुनस्तानाहूय पूर्ववन्मार्गशीर्षके ॥२८॥
तक्षस्याथ सुबाहोश्च विवाहावकरोत्प्रभुः । ततः सर्वान्नृपान् रामो ददावाज्ञां सुहृज्जनान् ॥२९॥
ततः पुनस्तानाहूय माघमासे सुहृन्नृपान् । यूपकेतोरंगदस्य चित्रकेतोर्महोत्सवैः ॥३०॥
विवाहानकरोद्रामः पार्थिवान्न व्यसर्जयत् । पुष्करस्याथ तक्षस्य सुबाहोश्च महोत्सवैः ॥३१॥
चकार फाल्गुने मासि विवाहान् जानकीधवः । एवं कृत्वा विवाहांश्च रामो द्वादश सादरम् ॥३२॥
नृपैः संपूजितः सर्वान्पूज्याज्ञां नृपतीन् ददौ । पूजयित्वा मुनींश्चापि विससर्ज रघूद्वहः ॥३३॥
गंधर्वपन्नगाः सप्त ते साकेतेऽत्र संस्थिताः । रामं मुक्त्वा न ते नैजं स्थलं जग्मुर्मुदान्विताः ॥३४॥
मंत्रिणः प्रेषयामासुः स्वस्वराज्येषु ते पृथक् । यदा रामः स वैकुंठमग्रे गच्छति कालतः ॥३५॥
तदा सांतानिकाँल्लोकांस्ते गच्छन्ति न संशयः । अथ रामः पन्नगानां गन्धर्वाणां च सद्मसु ॥३६॥
वार्षिकेषूत्सवेष्वत्र सावरोधः सुहृज्जनैः । पौरैः स्वीयैर्भोजनादि गत्वा ह्यंगीकरोत्सदा ॥३७॥
सदा महोत्सवाश्चासन्नयोध्यायां गृहे गृहे । आनन्दः सकलानासीन्नासीत्कुत्राप्यमंगलम् ॥३८॥
अथ तेषां राघवेण पुत्राणां च पृथक् पृथक् । अष्ट कृत्वा तु गेहानि पृथक्कृत्वा च शांतयः ॥३९॥
तेषु ते स्थापिताः सर्वे स्वस्वस्त्रीभ्यां पृथक् सुखम् । तथा ते लक्ष्मणाद्याश्च पृथग्गेहेषु बांधवाः ॥४०॥
पूर्वमेव स्थापिताश्च स्वस्वपत्न्या मुदान्विताः । सुमित्रायाः स सौमित्रिः स्वीयगेहेऽवसत्सुखम् ॥४१॥
कैकेयी भरतस्याथ गेहे मासमुवास सा । तस्थौ शत्रुघ्नगेहेऽपि मासमेकं यथासुखम् ॥४२॥
एवं सा पुत्रयोर्गेहेऽकरोद्वास मुदान्विता । कौसल्या सा रामगेहे तस्थौ सीतातिसेविता ॥४३॥
ते सर्वे बांधवाः पुत्रा निजयानैश्च सेवकैः । स्वदासीगोधनाद्यैश्च सुखमापुः पृथक् पृथक् ॥४४॥
अथ ते लक्ष्मणाद्याश्च कुशाद्या बालका अपि । स्वस्वगेहेषु वै प्रातः स्नात्वा होमान् शिवार्चनम् ॥४५॥

पक्षमें चित्रकेतु और पुष्करका विवाह सम्पन्न किया ॥ २७ ॥ इसके बाद सब राजाओं और मुनियोंको अपने-अपने घर जानेकी आज्ञा दी। फिर मार्गशीर्षमें सबको बुलाकर तक्ष और सुबाहुका विवाह किया। बादमें सबको अपने देश जानेकी अनुमति देकर माघ मासमें बुलाया और यूपकेतुका विवाह सम्पन्न किया ॥ २८–३० ॥ माघमें आये मेहमानोंको विदा न करके रामने फाल्गुन मासमें पुष्कर, तक्ष तथा सुबाहुका विवाह किया। इस तरह बारहों विवाहोंको करके रामने सब मेहमानोंकी स्वयं पूजा की और उनका पूजन स्वीकार किया। तब सबको अपनी-अपनी राजधानियोंको जानेकी अनुमति दी। इसी तरह उन मुनियोंका भी विधिवत् पूजन करके अपने-अपने आश्रमोंको जानेकी आज्ञा दी ॥ ३१–३३ ॥ किन्तु गन्धर्व और पन्नगगण अयोध्यामें ही रहे। वे अपने-अपने मन्त्रियोंको राजधानी भेजकर रामके पास रहने लगे। वे तब तक अयोध्यामें रहेंगे, जब तक राम अपने वैकुण्ठलोकको नहीं चले जायँगे। रामके चले जानेपर वे भी सान्तानिक लोकको चले जायँगे। इसके अतिरिक्त वार्षिक उत्सवों और त्योहारोंपर राम अपने घरकी स्त्रियों, मित्रों तथा सम्बन्धियोंके साथ पन्नगों और गंधर्वराजके यहाँ जाकर भोजन आदि करते थे ॥ ३४–३७ ॥ उन दिनों अयोध्यामें घर-घर उत्सव मनाये जाते थे। उस समय सर्वत्र आनंद था। कहीं भी किसी प्रकारका अमंगल नहीं दिखलायी पड़ता था ॥ ३८ ॥ इसके पश्चात् रामने उन बारहों पुत्रोंके लिए अलग-अलग घर बनवाये और विधिवत् शान्तिपाठ कराके उनको अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ उन घरोंमें बसा दिया। उसी तरह लक्ष्मण आदि भ्राता पहले हीसे अलग-अलग महलोंमें अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ सुखपूर्वक रह रहे थे। सुमित्राके पुत्र लक्ष्मण अपने महलमें आनंदपूर्वक रहते थे ॥ ३९–४१ ॥ कैकेयी एक महीना भरतके यहाँ और एक महीना शत्रुघ्नके यहाँ रहा करती थी। इस तरह अपने दोनों पुत्रोंके साथ रहती हुई वह सुखसे समय बिता रही थी। कौसल्या सीताकी सेवा ग्रहण करती हुई रामके महलोंमें रहती थीं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ वे सब भ्राता और उनके पुत्र अलग-अलग अपनी सवारी, सेवक, दासी, गोधन आदि अपार सम्पत्तियाँ रखकर आनंद से रहे थे ॥ ४४ ॥ यह सदाका नियम था कि लक्ष्मण आदि सब भ्राता और कुश आदि

गोद्विजार्चादि संपाद्य ततस्ते राघवं ययुः । नत्वा रामं जानकीं ते तस्थुर्दिव्यासनोपरि ॥४६॥
तेषां सर्वाः स्त्रियश्चापि स्नात्वा दुर्गां प्रपूज्य च । गत्वा सीतां प्रणेमुस्तास्तस्थुः सीताज्ञयाऽऽसने ॥४७॥
ततस्ते लक्ष्मणाद्याः कुशाद्याः स्वगुरोर्मुखात् । कथां पौराणिकीं श्रुत्वा जग्मुः स्वं स्वं गृहं प्रति ॥४८॥
ततः सर्वे रामगेहे समाहूता मुदान्विताः । उपाहारान् पृथक् चक्रुर्मध्याह्ने भोजनान्यपि ॥४९॥
एवं तेषां स्त्रियश्चापि समाहूतास्तु सीतया । उपाहारान् भोजनानि चक्रुः सीतागृहे सदा ॥५०॥
कदा मुदा स्वीयगेहे राघवेणाथ सीतया । उपाहारान् भोजनानि चक्रुस्ते ब्राह्मणादिभिः ॥५१॥
एवं तैर्बन्धुभिर्बालैः प्रापतुर्नितरां सुखम् । सीतारामौ कदा नासीत्कलहः क्वापि कस्य हि ॥५२॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विवाहकाण्डे
द्वादशविवाहवर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

(शत्रुघ्नतनय यूपकेतु द्वारा मदनसुन्दरीका हरण)

श्रीरामदास उवाच

अथैकदा दक्षिणे हि शिवकांत्यां महापुरि । कंबुकंठो नृपः श्रीमान्निजकन्यास्वयंवरम् ॥ १ ॥
कर्तुकामो नृपान्सर्वानाह्वयामास सादरम् । तदा ते पार्थिवाः सर्वे पत्राणि हि पृथक् पृथक् ॥ २ ॥
पूर्ववैरमनुस्मृत्य कुशस्यापि लवस्य च । स्वयंवरे स्वीयमानभंगेनोद्भूतहृत्स्थितम् ॥ ३ ॥
प्रेषयामासुर्नृपतिं न ययुश्च स्वयंवरम् । तेषां पत्राणि सर्वाणि कंबुकंठो ददर्श सः ॥ ४ ॥
सर्वेषु लिखितस्त्वेक एवार्थस्तं वदाम्यहम् । यदि नायांति रामस्य बालकास्ते स्वयंवरे ॥ ५ ॥
वयं सर्वे तर्हि यामो जंबुद्वीपान्तरस्थिताः । तेषामेवमभिप्रायं ज्ञात्वा स नृपतिस्तदा ॥ ६ ॥
न समाहूय श्रीराममाह्वयामास पार्थिवान् । स्वयं चापि स्मरन्वैरं तदेवं रामपुत्रयोः ॥ ७ ॥

बालक सबेरे स्नान करके हवन, शिवार्चन एवं गौ-ब्राह्मणोंकी पूजा करते थे। तब रामके पास जाते और वहाँ सीता तथा रामको प्रणाम करके दिव्य आसनपर बैठते थे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ उसी तरह उनकी स्त्रियाँ भी सबेरे स्नान और दुर्गापूजनसे निवृत्त होकर सीताके पास जातीं, उन्हें प्रणाम करतीं और आज्ञा पाकर दिव्य आसनोंपर बैठती थीं ॥ ४७ ॥ इसके बाद वे सब लोग गुरु वसिष्ठके मुखसे पुराणोंकी कथा सुन-सुनकर अपने भवनोंको जाया करते थे। दोपहरको रामके बुलानेपर साथ-साथ जलपान तथा भोजन करते थे। उसी तरह उनकी स्त्रियाँ भी सीताके बुलानेपर सीताके यहाँ ही आकर जलपान तथा भोजन करती थीं ॥ ४८–५० ॥ कभी-कभी वे लोग राम और बहुतसे ब्राह्मणोंको अपने यहाँ बुलाकर भोजन कराते थे ॥ ५१ ॥ इस तरह उन बन्धुओं और बालकोंके साथ सीता तथा राम बड़े सुखसे जीवन व्यतीत कर रहे थे। किसीके साथ कभी किसी तरहका झगड़ा नहीं होता था ॥ ५२ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयविरचित-भाषाटीकासहिते विवाहकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—एक समय दक्षिणकी शिवकांतिपुरीमें वहाँके राजा कम्बुकण्ठने अपनी कन्याका स्वयम्वर करनेके विचारसे सब राजाओंके यहाँ निमन्त्रणपत्र भेजकर बुलवाया। किन्तु कुश-लवके कारण वे महाराज कम्बुकण्ठके यहाँ नहीं आये और एक-एक पत्र लिखकर भेज दिया। कम्बुकण्ठने एक-एक करके सब राजाओंका पत्र देखा ॥ १–४ ॥ उन सब पत्रोंमें एक ही चर्चा थी। वह यह कि यदि रामचन्द्रके लड़के तुम्हारे स्वयंवर न आयें तो हम सब जम्बूद्वीपके राजे तुम्हारे यहाँ आयेंगे—अन्यथा नहीं। राजा कम्बुकण्ठने उनके अभिप्राय समझकर रामचन्द्रजीके पास निमन्त्रण न भेजकर बाकी सब राजाओंको बुलाया। कम्बुकण्ठको स्वयं भी वह बात याद आ गयी कि रामके पुत्रोंने चम्पिका और सुमतिके स्वयंवरमें

चंपिकासुमतिपाणिग्रहणीयं पुरातनम् । ततस्ते पार्थिवाः सर्वे श्रुत्वा रामं हि नागतम् ॥ ८ ॥
सप्तद्वीपांतरस्थाश्च ययुः कांतिपुरीं प्रति । अथ तां कंबुकंठस्य कन्यां मदनसुन्दरीम् ॥ ९ ॥
प्रासादसंस्थितां दृष्ट्वा नारदः खात्समाययौ । सखीभिः सा मुनिं पूज्य विनयात्पुरतः स्थिता ॥१०॥
पप्रच्छ नारदं भक्त्या विनयावनता शनैः । कुतः समागतः स्वामिन् गम्यते क्वाधुना वद ॥११॥
भवतां दर्शनेनाद्य पावित्र्यं परमं गता । इति तस्या वचः श्रुत्वा किंचित् स्मित्वा मुनिस्तदा ॥१२॥
तामाह बाले स्वर्लोकादागतोऽस्म्यधुना त्वहम् । अयोध्यायां राघवस्य पुत्राणां तु पृथक् पृथक् ॥१३॥
गेहे संभोक्तुकामोऽद्य निर्गतोऽस्मि विहायसा । एतस्मिन्नंतरे कांतिपुर्याः सैन्यानि वै बहिः ॥१४॥
दृष्ट्वा केषां हि सैन्यानि संतीति हृदि चिंतितम् । ततः पांथमुखाच्छ्रुत्वा तव चात्र स्वयंवरम् ॥१५॥
तदा विनिश्चितं चित्ते मया रामः स्वयंवरे । अत्रैवास्ति ह्यागतश्चेत्तं पश्यामि सबालकम् ॥१६॥
नैवास्ति ह्यागतश्चेद्वै तर्हि यास्याम्यतः परम् । स्वयंवरो विना रामं न भविष्यति सात्मजम् ॥१७॥
पश्याम्यत्रैव तं रामं वृथाऽग्रे गमनं मम । निश्चित्येत्थं समायातस्ततोऽदृष्ट्वा रघूत्तमम् ॥१८॥
कथं रामो नागतोऽत्र चेति पृष्टा नृपा मया । नृपाभिप्रायमाकर्ण्य तदा खिन्नं मनो मम ॥१९॥
सप्तद्वीपपतिं रामं बंधुबालकसंयुतम् । स्वयंवरमनाहूय त्वत्पित्रा निश्चितं नृपैः ॥२०॥
अधुनाऽहं प्रगच्छामि साकेतस्थं रघूत्तमम् । मन्दभाग्याऽसि बाले त्वं स्नुषा राघवसत्पतेः ॥२१॥
यतो जाताऽसि नैवात्र विचित्रा कर्मणो गतिः । इत्युक्त्वा बालिकां पृष्ट्वा नारदो गन्तुमुद्यतः ॥२२॥
ततः संप्रार्थयामास नारदं बालिका मुहुः । खिन्नचित्ताऽश्रुपूर्णाक्षी म्लानास्या स्फुरिताधरा॥२३॥
रोमांचिततनुर्मुग्धा गतश्रीर्गद्गदस्वरा । येनाहं मुनिवर्यात्र स्नुषा श्रीराघवस्य च ॥२४॥
भविष्यामि तथा कार्यं त्वया त्वां शरणं गता । इत्युक्त्वा मुनिवर्यस्य पादयोः स्थाप्य सा शिरः॥२५॥
चकार करुणं बाला तदा तां मुनिरब्रवीत् । मा चिन्तां कुरु रंभोरु समुत्तिष्ठस्व बालिके ॥२६॥

सबसे वैर कर लिया ॥ ५-७ ॥ इसके अनन्तर जब सब राजाओंने यह सुन लिया कि राम नहीं आयेंगे, तब वे कम्बुकण्ठके यहाँ पहुँचे । उधर कम्बुकण्ठकी कन्या मदनसुन्दरीको अटारीपर देखकर नारदजी आकाश-मार्गसे उतर आये । मदनसुन्दरीने सखियोंके साथ आकर नारदकी पूजा की और उन मुनिके सामने जा बैठी ॥ ८-१० ॥ फिर भक्तिपूर्वक नारदसे पूछने लगी—स्वामिन् ! आप इस समय कहाँसे आ रहे हैं और अब कहाँ जायेंगे, सो बताइए ॥ ११ ॥ आपके दर्शनसे मैं आज परम पवित्र हो गयी । इस प्रकार उसकी बात सुनी तो थोड़ा मुसकाकर नारद कहने लगे—हे बाले ! इस समय मैं स्वर्गलोकसे आ रहा हूँ और रामके सब पुत्रोंके यहाँ अलग-अलग भोजन करनेके लिए अयोध्या जा रहा हूँ । आते समय मैंने कान्तिपुरी नगरीके बाहर सेना देखी । उसे देखकर मुझे बड़ा कौतूहल हुआ । रास्तेमें एक पथिकसे पूछनेपर ज्ञात हुआ कि यहां तुम्हारा स्वयम्वर है तो यह सोचा कि जहाँ तक है, रामचन्द्रजी अपने बालकों समेत यहां अवश्य आये होंगे । चलो, यहाँ ही दर्शन कर लें । यह निश्चय करके मैं यहाँ आया, किंतु रामचन्द्रजीको नहीं देखा तो राजाओंसे पूछा कि राम क्यों नहीं आये ? उन लोगोंने जो कारण बतलाया, उससे मेरा मन बहुत खिन्न हुआ ॥ १२-१९ ॥ सप्तद्वीपके अधिपति राम तथा उनके लड़कोंको न बुलानेका निश्चय करके ही तुम्हारे पिताने और-और राजाओंको बुलाया है ॥ २० ॥ अच्छा, अब मैं अयोध्यामें रामचन्द्रजीके पास जा रहा हूँ । हे बाले ! तुम अभागी हो, जो रामचन्द्रजी जैसे राजराजकी पतोहू नहीं बन रही हो । कर्मकी भी बड़ी विचित्र गति होती है । ऐसा कह और कन्यासे पूछकर नारदजी जाने लगे । तब वह कन्या मदनसुंदरी खिन्न मन, आँसू भरी आँखों, म्लानमुख, काँपते हुए अधरों तथा रोमांचित शरीर होकर गद्गद वाणीसे इस प्रकार विनय करती हुई कहने लगी—आप कोई ऐसी युक्ति करिए कि जिससे मैं रामकी ही पतोहू बनूं । मैं आपकी शरणमें हूँ । ऐसा कहकर उसने अपना मस्तक मुनिराजके चरणोंमें रख दिया और रोने लगी । तब नारद मुनिने कहा—

भविष्यसि त्वं रामस्य स्नुषा यत्नं करोम्यहम् । इत्युक्त्वा तां समाश्वास्य खमार्गेण मुनिर्ययौ ॥२७॥
एतस्मिन्नंतरेऽयोध्यापुर्याः स्यन्दनसंस्थितः । यूपकेतुर्वनं पश्यंस्तमसातीरमाययौ ॥२८॥
किञ्चित्सैन्ययुतो बालस्तमसायां निगाह्य सः । यावत्संध्यादिकं कर्तुमुपविष्टस्तदा मुनिम् ॥२९॥
ददर्श नारदं नत्वा पूजयामास सादरम् । ततः पप्रच्छ मुनये यूपकेतुः पुरःस्थितः ॥३०॥
कुतः समागतं चेति तच्छ्रुत्वा नारदो मुनिः । सर्वं वृत्तं सविस्तारं कथयामास बालकम् ॥३१॥
तच्छ्रुत्वा सकलं वृत्तं नत्वा तं नारदं मुनिम् । अब्रवीद्बालको वाक्यं सक्रोधः संभ्रमान्वितः ॥३२॥
मुने नृपाणां सर्वेषां द्वेषबुद्धिश्च राघवे । या जाता साऽद्य सर्वेषां ज्ञेयाऽनर्थकरी जवात् ॥३३॥
कम्बुकंठादिभूपानां सारं पश्याम्यहं रणे । रणे त्वत्कृपया सर्वान् जित्वा तामानयाम्यहम् ॥३४॥
इत्युक्त्वा स ययौ कांतिं पञ्चमेऽहनि सेनया । नारदोऽपि ययौ रामं द्रष्टुं प्रीतमनास्तदा ॥३५॥
रामेण पूजितः प्रेम्णा भोजनार्थं निमंत्रितः । अथ भोजनवेलायां यूपकेतुं रघूत्तमः ॥३६॥
अदृष्ट्वा लक्ष्मणं प्राह यूपकेतुर्न दृश्यते । बालेषु तं भोजनार्थं लक्ष्मणात्र समाह्वय ॥३७॥
तदा स मालतीं गत्वा प्रपच्छ लक्ष्मणो जवात् । सा प्राह वनमध्येऽद्य किञ्चित्सैन्ययुतो गतः ॥३८॥
वृत्तमेतद्यथावत्स गत्वा रामं जगाद ह । अथ रामो भोजनादि संपाद्य मुनिना मुदा ॥३९॥
ययौ सभायामासीनस्तं मुनिं वाक्यमब्रवीत् । पञ्चसप्तदिनान्यत्र स्थेयं मद्वचनात्त्वया ॥४०॥
तथेति नारदः प्राह सभायां संस्थितः सुखम् । अथ रात्रौ यूपकेतुमदृष्ट्वा रघुनन्दनः ॥४१॥
उपाहारं कर्तुकामः पुनर्लक्ष्मणमब्रवीत् । आकारय यूपकेतुं नायं दृष्टो मया शिशुः ॥४२॥
तथेति रामवचनात्पुनर्गत्वा तु मालतीम् । पप्रच्छ यूपकेतुं स सा प्राह नागतस्त्विति ॥४३॥
ततः स विह्वलो भूत्वा रामं वृत्तं न्यवेदयत् । रामोऽपि नागतं श्रुत्वा बंधुभ्यां विह्वलोऽभवत् ॥४४॥

हे रम्भोरु ! हे बालिके ! तुम किसी प्रकारकी चिन्ता न करो, उठो ॥ २१-२६ ॥ तुम अवश्य रामकी पतोहू बनोगी। मैं इसके लिए उद्योग करूँगा। ऐसा कह और उसे ढाढ़स बँधाकर नारदजी आकाशमार्गसे चल दिये ॥ २७ ॥ इसी समय यूपकेतु रथपर बैठकर अयोध्यासे निकले और रास्तेके वनोंको देखते हुए तमसा नदीके किनारे पहुँचे ॥ २८ ॥ उस समय थोड़ी-सी सेना उनके साथ थी। उसके साथ यूपकेतुने तमसामें स्नान किया और सन्ध्यावन्दन करनेको बैठे ही थे कि नारदजीको देखा। तब उनको प्रणाम करके सादर पूजन किया। इसके बाद नारद मुनिने विस्तारपूर्वक उस कन्या मदनसुंदरीका सारा वृत्तांत कहा। उसे सुनकर क्रोध और घबराहटसे पूर्ण होकर यूपकेतुने कहा—॥ २९-३२ ॥ हे मुने! इस समय जो सब राजे रामसे द्वेषबुद्धि रखते हैं, वह उनके लिए अनर्थकारिणी सिद्ध होगी ॥ ३३ ॥ कम्बुकण्ठ आदि राजाओंका बल मैं संग्रामभूमिमें पहुँचकर देखता हूँ। हे मुनिराज! मैं आपकी कृपासे उन सबको जीतकर मदनसुंदरीको लिये आता हूँ ॥ ३४ ॥ ऐसा कहकर यूपकेतु अपनी सेनाके साथ पाँचवें दिन कान्तिपुरीमें पहुँचे और नारदजी प्रसन्नतापूर्वक रामका दर्शन करनेके लिए अयोध्या चले गये ॥ ३५ ॥ वहाँ पहुँचनेपर रामने प्रेमसे नारदजीका पूजन करके भोजनका निमंत्रण दिया। जब भोजनका समय हुआ, तब यूपकेतुको न देखकर रामने लक्ष्मणसे कहा कि इस समय यूपकेतु नहीं दिखायी देता। हे लक्ष्मण! और-और बालकोंके साथ उसे भी भोजन करनेके लिए बुलाओ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ रामके आज्ञानुसार लक्ष्मण मालतीके पास पहुँचे और यूपकेतुको पूछा। उसने कहा कि वे अपने साथ थोड़ी-सी सेना लेकर वनको गये हैं ॥ ३८ ॥ यह वृत्तान्त लक्ष्मणने जाकर रामको सुना दिया। तत्पश्चात् मुनिके साथ राम भोजन आदि करके अपने सभाभवनमें गये और वहाँ बैठकर नारद मुनिसे कहने लगे कि आप मेरे कहनेसे पाँच-सात दिन यहाँ ही ठहर जाइये। 'तथास्तु' कहकर नारदजी भी ठहर गये। तदनन्तर भोजनके समय रात्रिमें भी यूपकेतुको न देखकर रामने लक्ष्मणसे कहा—यूपकेतुको बुलाओ। आज मैंने दिनभर उस बच्चेको नहीं देख पाया है ॥ ३९-४२ ॥ 'बहुत अच्छा' कहकर लक्ष्मण फिर मालतीके पास गये और यूपकेतुको पूछा। उसने कहा कि वे अभी तक

ततः सा जानकी श्रुत्वा विह्वला खिन्नमानसा । दुद्राव राघवाग्रे सा सर्वे तूष्णीं कथं स्थिताः ॥४५॥
इति तान् प्राह वैदेही तदा सर्वेऽतिविह्वलाः । त्यक्त्वोपाहारान् वेगेन तच्छोधार्थं समुद्यताः ॥४६॥
तदा तान्विह्वलान्दृष्ट्वा नारदः प्राह राघवम् । कांतिवृत्तं यूपकेतोः प्रयाणादिकमादरात् ॥४७॥
तत्सर्वं राघवः श्रुत्वा किंचित्तुष्टमनास्तदा । लक्ष्मणं प्राह वेगेन शत्रुघ्नोऽद्यैव गच्छतु ॥४८॥
सेनया चतुरंगिण्या जवात्कांतिं कुशादिभिः । तथेति लक्ष्मणश्चोक्त्वा चोपाहारान्विधाय सः॥४९॥
सेनया बालकैर्वगाच्छत्रुघ्नं प्रेषयन्निशि । रामं नत्वाऽथ शत्रुघ्नः शीघ्रं स्यन्दनसंस्थितः ॥५०॥
ययौ कांतिसमीपं स षष्ठेऽहनि मुदान्वितः । एतस्मिन्नंतरे कांतिपुर्यां तत्र स्वयंवरे ॥५१॥
सभायां राजशार्दूलाः संस्थितास्ते मुदान्विताः । अथ सा शिबिकारूढाऽऽययौ मदनसुन्दरी ॥५२॥
किंचिन्म्लानमुखी दुःखात्स्मरंती नारदेरितम् । वृद्धोपमाता तां सर्वान् दर्शयामास पार्थिवान् ॥५३॥
यूपकेतुस्तदा वेगाद्गत्वा तूष्णीं सभांगणम् । मोहनास्त्रं विसृज्याथ मोहयामास तां सभाम् ॥५४॥
मोहितैर्मोहनास्त्रेण न्यस्तां तद्वाहकैर्भुवि । रथेन शिबिकां गत्वा धृत्वा मदनसुन्दरीम् ॥५५॥
निजाभिधानं संश्राव्य तां तुष्टामकरोत्तदा । अथ सा वरयामास वीरं मदनसुन्दरी ॥५६॥
मुमोच मालां तत्कण्ठे नवरत्नमयीं शुभाम् । ततः स यूपकेतुर्हि रथे मदनसुन्दरीम् ५७॥
निवेश्य कांतिपुर्याः स बहिर्गत्वा स्थिरोऽभवत् । तामाह दयितां वीरस्त्विदानीं त्वं भयं त्यज ॥५८॥
जित्वा सर्वान्नृपानद्य त्वया गच्छाम्यहं पुरीम् । तत्तस्य वचनं श्रुत्वा सा प्राह वचनं तदा ॥५९॥
बहवः संति राजानस्त्वमेकः स्वल्पसेनया । असंख्यातानि सैन्यानि तेषां पश्य समन्ततः॥६०॥
कथं युद्धं भवेदत्र मा कुरुष्वाद्य संगरम् । शीघ्रं मां नय साकेतं ततो रामेण सेनया ॥६१॥

नहीं लौटे ॥ ४३ ॥ यह सुना तो विह्वल होकर लक्ष्मणने रामसे कहा । जब रामने यह सुना तो भ्राताओंके साथ-साथ वे भी विह्वल हो उठे ॥ ४४ ॥ जानकीने सुना तो वह भी विह्वल तथा खिन्न होकर दौड़ती हुई रामके पास पहुँची और कहा कि आप लोग यूपकेतुको अनुपस्थित देखकर भी चुपचाप बैठे हैं ? ॥ ४५ ॥ यह सुनकर सब लोग घबड़ा उठे और भोजन त्यागकर उसे ढूँढ़नेकी तैयारी कर दिये ॥ ४६ ॥ इस प्रकार सबको व्याकुल देखकर नारदजीने रामसे कान्तिपुरीका वृत्तान्त बतलाया और यूपकेतुके प्रस्थानकी भी बात कह सुनायी ॥ ४७ ॥ यह हाल सुना तो रामको थोड़ा सन्तोष हुआ और तुरंत लक्ष्मणको आज्ञा दी कि मेरी चतुरंगिणी सेना लेकर शत्रुघ्न अभी कांतिपुरी जायँ। "बहुत अच्छा" कहकर लक्ष्मणने भोजन आदि कराके रातमें ही सेना और कुश आदि वीर बालकोंके साथ शत्रुघ्नको कांतिपुरी भेजा । रामको प्रणाम करके शत्रुघ्न रथपर सवार हुए और प्रसन्नतापूर्वक प्रस्थान कर दिये ॥ ४८–५० ॥ इस तरह अयोध्यासे चलकर ठीक छठें दिन शत्रुघ्न कांतिपुरीके पास पहुँच गये । उधर कांतिपुरीमें स्वयंवर हो रहा था ॥ ५१ ॥ सभामण्डपमें बहुतसे राजे हर्षपूर्वक बैठे हुए थे । इतनेमें मदनसुन्दरी पालकीमें बैठी हुई सभामें आयी ॥ ५२ ॥ उस समय वह दुःखसे नारदकी बातोंका स्मरण कर रही थी । इस कारण उसका मुख कुम्हलाया हुआ था । सभामें पहुँचकर वृद्धा धात्रीने सब राजाओंको दिखलाया ॥ ५३ ॥ उसी समय वेगके साथ यूपकेतु सभाभवनमें पहुँचे और मोहनास्त्रका प्रयोग करके उन्होंने सारी सभाको मूर्छित कर दिया ॥ ५४ ॥ मोहनास्त्रसे मोहित होकर शिबिकावाहकोंने भी शिबिका जमीनपर रख दी । इतनेमें रथपर बैठे हुए यूपकेतु शिबिकाके पास पहुँचे और मदनसुन्दरीका हाथ पकड़कर अपना नाम बताया, जिससे वह बहुत प्रसन्न हुई और वीर यूपकेतुको वरकर उसने उनके गलेमें वह नवरत्नमयी वरमाला डाल दी । तब प्रसन्न होकर यूपकेतुने मदनसुन्दरीको रथमें बिठा लिया ॥ ५५–५७ ॥ तब कान्तिपुरीसे बाहर निकलकर वे एक स्थानपर रुक गये । वहाँपर उन्होंने मदनसुन्दरीसे कहा कि अब तुम किसी प्रकारका भय न करो ॥ ५८ ॥ मैं सब राजाओंको जीतकर तुम्हारे साथ अयोध्यापुरी चलूंगा । यूपकेतुकी बात सुनकर उसने कहा– ॥ ५९ ॥ वे राजे बहुतसे हैं और तुम अकेले हो, तुम्हारे साथ सेना भी थोड़ी-सी है और देखो न, उनकी असंख्य सेना चारों ओर पड़ी हुई है ॥ ६० ॥

युद्धं कुरु नृपैर्घोरं शृणु मद्वचनं प्रभो । मा साहसं कुरुष्वात्रार्थये त्वां मुहुर्मुहुः ॥६२॥
इति तस्या वचः श्रुत्वा तामाश्वास्य पुनः पुनः । उपसंहारयामास मोहनास्त्रं स लीलया ॥६३॥
तदा ते पार्थिवाः सर्वे श्रुत्वा नीतां वधूं बलात् । शत्रुघ्नतनयेनेति स्त्रीवाक्यैः स्यंदने स्थिताः ॥६४॥
निर्ययुः कोटिशो योद्धुं स्वस्वसेनावृता जवात् । चंपिकायाः सुमत्याश्च पूर्ववैरेण दर्पिताः ॥६५॥
दुद्रुवुर्नेमिमार्गेण ददृशुस्तं रथस्थितम् । युक्तं मदनसुन्दर्या बिभ्रंतं मालिकां हृदि ॥६६॥
ततस्तं मुमुचुः सर्वे नानाशस्त्राणि सैनिकाः । यूपकेतुस्तदा वेगाट्टणत्कृत्य महद्धनुः ॥६७॥
वायव्यास्त्रेण तान्सर्वानुद्धूय दशदिक्षु सः । प्राक्षिपत्पार्थिवान् सैन्यैर्नानावाहनसंस्थितान्॥६८॥
तदा स कंबुकण्ठोऽपि पूर्ववैरमनुस्मरन् । चंपिकायाः सुमत्याश्च स्वयंवरसमुद्भवम् ॥६९॥
निमेषान्निजकन्याया वैरतो हरणं बलात् । महाक्रोधान्निर्ययौ स स्वसैन्येन परिवेष्टितः ॥७०॥
कुर्वन् दुंदुभिघोषांश्च युद्धार्थं यूपकेतुना । यूपकेतुरपि श्रुत्वा दुन्दुभीनां महत्स्वनम् ॥७१॥
कांतिपुर्युत्तरद्वारपुरतः संस्थितो रथी । टणत्कृत्य महच्चापं सन्दधे शरमुत्तमम् ॥७२॥
ये ये वीराः पुरद्वारान्निर्गताश्च बहिः शनैः । तान् जघान क्षणादेव प्रेतैर्द्वारं रुरोध सः ॥७३॥
तं दृष्ट्वा यूपकेतोश्च कंबुकण्ठः पराक्रमम् । ययौ स्वयं स्यन्दनेन प्रेतसंघं विदार्य च ॥७४॥
शेषसैन्येन संयुक्तो यूपकेतुं क्रुधा जवात् । तदाऽऽह यूपकेतुं स मया त्वं सङ्गरं कुरु ॥७५॥
किमेतान्मशकान् हत्वा पौरुषं मन्यसे जड । इत्युक्त्वा सप्तभिर्बाणैर्यूपकेतुं जघान सः ॥७६॥
तान्बाणानागतान् दृष्ट्वा यूपकेतुर्निजैः शरैः । तांश्छित्वा नवबाणैस्तच्चापं सारथिनं ध्वजम् ॥७७॥
कवचं मुकुटं छित्वा जघान तुरगानपि । पद्भ्यां तदा कंबुकण्ठो गदामादाय दुद्रुवे ॥७८॥

ऐसी अवस्थामें युद्ध कैसे करोगे ? आज तुम संग्राम न करो। मुझे शीघ्र अयोध्या पहुँचा दो और वहाँसे रामचन्द्रजीकी विशाल सेना लेकर आओ, तब युद्ध करो। हे प्रभो ! ऐसे समय साहस करना ठीक नहीं है। मैं बार-बार यही विनती करती हूँ ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ इस प्रकार मदनसुन्दरीकी बात सुनकर उन्होंने उसे आश्वासन दिया और मोहनास्त्रका संवरण कर लिया ॥ ६३ ॥ जब उन राजाओंने स्त्रियोंके मुखसे सुना कि शत्रुघ्नके पुत्र यूपकेतुने मदनसुन्दरीका हरण किया है तो अपने-अपने रथोंपर सवार हो-होकर बड़ी-बड़ी सेना लिये वेगके साथ वे लड़नेको निकल पड़े। एक तो सुमति और चम्पिकाके वरनेका ही वैर उन लोगोंके मनमें था, दूसरे अब मदनसुन्दरीके हरणसे उनके हृदयको और भी ठेस लगी ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ फिर क्या था, शत्रुके रथके पहियोंका रास्ता देखते हुए वे चले और थोड़ी ही दूर जाकर उन्होंने देखा कि यूपकेतु मदनसुन्दरीके साथ बैठा है और उसके गलेमें वरमाला पड़ी हुई है ॥ ६६ ॥ देखते ही सब राजाओंने एक साथ उस वीर बालकपर कितने ही शस्त्रोंका प्रहार कर दिया। यूपकेतुने भी वेगके साथ अपने धनुषका टङ्कोर किया ॥ ६७ ॥ और वायव्य अस्त्रका प्रयोग करके उन सब राजाओंको रथ, वाहन तथा सेना समेत उड़ाकर दूर फेंक दिया ॥ ६८ ॥ महाराज कम्बुकण्ठ भी पूर्ववैरका स्मरण करके विशेषकर इस समय वैरवश अपनी कन्याका हरण देखकर अपनी सेनाके साथ यूपकेतुसे युद्ध करनेके लिए दुंदुभीका घोष करते हुए निकल पड़े। यूपकेतुने भी जब दुंदुभीकी गर्जना सुनी तो कांतिपुरीके उत्तरी द्वारपर पहुँचे और अपने धनुषका टङ्कोर करके उसपर एक उत्तम शरका संधान किया ॥ ६९-७२ ॥ उस पुरद्वारसे जो-जो योद्धा निकलते, उनको अपने बाणोंसे यूपकेतु बराबर मारते जाते थे। इससे थोड़ी ही देरमें वह द्वार मृतकोंसे भर गया ॥ ७३ ॥ इस तरह यूपकेतुका पराक्रम देखकर राजा कम्बुकण्ठ स्वयं अपने रथपर सवार होकर उन शवोंको रौंदते हुए बची हुई सेनाके साथ यूपकेतुके सामने जा पहुँचे और क्रोधमें भरकर उन्होंने कहा—अब तू मेरे साथ संग्राम कर ॥ ७४ ॥ ॥ ७५ ॥ अरे जड़ ! इन मच्छड़ोंको मारकर क्या तू अपने पौरुषको पौरुष मानता है ? ऐसा कहकर कम्बुकण्ठने तीन बाणोंसे यूपकेतुपर प्रहार किया ॥ ७६ ॥ उन बाणोंको अपनी ओर आते देखकर यूपकेतुने अपने नौ बाणोंसे कम्बुकण्ठके बाणों, धनुष, सारथी, ध्वजा, कवच और मुकुटको काट डाला और घोड़ोंको भी मार दिया। तब

तावत्सहस्रधा बाणैर्यूपकेतुश्चकार ताम् । ततो बद्ध्वा दृढां मुष्टिं कम्बुकंठस्त्वरान्वितः ॥७९॥
हृदये यूपकेतोस्तां जघानाचलसन्निभाम् । तदा स यूपकेतुस्तं श्वशुरं स्यंदनोपरि ॥८०॥
ध्वजे बबंध वेगेन खड्गं जग्राह सम्भ्रमात् । कंबुकण्ठशिरश्छेदं कर्तुं तं समुपस्थितम् ॥८१॥
दृष्ट्वा धृत्वा करे तस्य सखड्गं सम्भ्रमान्विता । तमाह नत्वा साध्वक्षी तदा मदनसुन्दरी ॥८२॥
विह्वला विगतोत्साहा वेपती ह्यश्रुलोचना । मम तातं कंबुकण्ठमेनं हंसि कथं प्रभो ॥८३॥
मक्षिकापतनं पूर्वं ग्रासे यद्वत्त्वया कृतम् । सुखारम्भे पूर्वमेव दुःखकर्माविलम्बितम् ॥८४॥
मद्वाक्यान्नैव हंतव्यस्तस्मात्त्वां प्रार्थयाम्यहम् । एवं मदनसुन्दर्या वचः श्रुत्वा विहस्य सः ॥८५॥
कराद्विसृज्य तं खड्गं स्वसूतं चोदयन्मुदा । सेनया स ययौ यावत्पथाऽयोध्यां पुरीं प्रति ॥८६॥
तावद्दुंदुभिनिर्घोषानग्रे शुश्राव सेनया । पुनश्चापं दृढीकृत्य यूपकेतुस्तदा पथि ॥८७॥
कस्याग्रे वाहिनी चेति चिंतयामास चेतसि । ततः शरं मुमोचैकं निजनामांकितं बलात् ॥८८॥
योजनांतरसेनायां शरः शत्रुघ्नसन्निधौ । पपात तत्पदाग्रे तं दृष्ट्वा स चकितस्तदा ॥८९॥
शरपुच्छे यूपकेतोर्नाम दृष्ट्वाऽथ शत्रुहा । निश्चितवान्यूपकेतुर्मार्गेऽग्रे वर्तते ध्रुवम् ॥९०॥
ततश्चापे स शत्रुघ्नः स्वनामांकितमुत्तमम् । शरं संधाय विमुखं यूपकेतुं मुमोच ह ॥९१॥
स शरो यूपकेतोश्च मस्तकादूर्ध्वतस्तदा । अपतत्पृष्ठभागे स तं ददर्श पितुः शरम् ॥९२॥
तदा हृष्टो यूपकेतुः कुर्वन्दुंदुभिनिस्वनान् । गत्वा वेगेन शत्रुघ्नं दृष्ट्वोत्प्लुत्य रथादधः ॥९३॥
ननाम पितरं पत्न्या कंबुकंठं प्रदर्शयन् । तदा तं सुहृदं ज्ञात्वा मोचयामास शत्रुहा ॥९४॥
कंबुकंठमुखाच्छ्रुत्वा सर्वं वृत्तं सविस्तरम् । शत्रुघ्नः प्रार्थितस्तेन सुहृदा तत्पुरीं ययौ ॥९५॥

कम्बुकण्ठ पैदल ही गदा लेकर दौड़ पड़े ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ यूपकेतुने अपने बाणोंसे उनकी गदाके भी हजार टुकड़े कर दिये। इसके बाद कम्बुकण्ठने यूपकेतुकी छातीपर कठोर घूँसा मारा। तब यूपकेतुने अपने ससुर कम्बुकण्ठको रथकी ध्वजामें बांध लिया और सिर काटनेके लिए वेगके साथ तलवार उठायी ॥ ७९-८१ ॥ इस तरह सिर काटनेको उद्यत एवं हाथमें खड्ग लिये यूपकेतुको देखकर मदनसुन्दरीने प्रणाम किया और आँखोंमें आँसू भरकर कहा—॥ ८२ ॥ हे प्रभो ! मेरे पिता कम्बुकण्ठको आप क्यों मारना चाहते हैं ? पहले ही ग्रासमें मक्खी गिर पड़नेके समान आपने सुखके स्थानमें इस दुःखदायी कर्मको क्यों अपनाया है ? ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ आप मेरी बात मानकर इन्हें मत मारिए। मैं आपसे यही प्रार्थना करती हूँ। यह कहती हुई मदनसुन्दरी विकल हो गयी। उसका उत्साह नष्ट हो गया था, वह काँप रही थी और नेत्रोंसे आँसूकी धाराएँ बहाती जा रही थी। इस प्रकार मदनसुन्दरीकी बात सुनकर यूपकेतु मुस्कराये और खड्ग फेंककर अपने सारथीको रथ चलानेका संकेत किया। वे अपनी सेनाके साथ अयोध्यापुरीकी ओर चले ही थे ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ इतनेमें आगेसे दुन्दुभीका घोष सुनायी पड़ा। अब अपना धनुष सम्हालकर सोचने लगे कि आगेसे यह किसकी सेना आ रही है। यह सोचकर उन्होंने अपने नामसे अंकित एक बाण वेगपूर्वक छोड़ा ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ वह बाण उड़ता हुआ एक योजन तक गया और जहाँ सेना पड़ी हुई थी, वहाँ पहुँचकर शत्रुघ्नके चरणोंके आगे गिरा। उस बाणको देखकर शत्रुघ्न चकित हो गये ॥ ८९ ॥ फिर बाणकी पूँछमें यूपकेतुका नाम देखकर शत्रुघ्नने निश्चय किया कि यूपकेतु आगे रास्तेमें ही है ॥ ९० ॥ तदनन्तर शत्रुघ्नने भी अपने नामसे अंकित एक बाण उठाकर यूपकेतुकी ओर छोड़ा ॥ ९१ ॥ वह बाण यूपकेतुके ऊपरसे होता हुआ पीछे जा गिरा। यूपकेतुने अपने पिताका बाण देखा ॥ ९२ ॥ तब प्रसन्न होकर दुन्दुभी जैसा गर्जन करते हुए वेगके साथ शत्रुघ्नके पास पहुँचे। वहाँ पिताको देखते ही वे रथसे कूद पड़े और अपनी स्त्री मदनसुन्दरीके साथ जाकर शत्रुघ्नको प्रणाम किया और ध्वजामें बँधे हुए कम्बुकण्ठको दिखाया। शत्रुघ्नने उन्हें अपना सम्बन्धी समझकर छुड़ा दिया ॥९३॥९४॥ फिर शत्रुघ्नने कम्बुकण्ठके मुखसे ही विस्तारसे साथ समस्त वृत्तान्त सुना। इसके बाद कंबुकंठके

कांतिपुर्या बहिः स्थित्वा कंबुकंठमतेन सः । आकारणार्थं लग्नाय रामं दूतान्प्रचोदयत् ॥९६॥
तदा ते कंबुकंठस्य शत्रुघ्नस्यापि वेगतः । आकारणार्थं श्रीरामं ययुर्दूता मुदान्विताः ॥९७॥
इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे विवाहकाण्डे मदनसुन्दरीहरणं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः

(रामका वंशविस्तार)

श्रीरामदास उवाच

गत्वाऽयोध्यापुरीं दूता रामं वृत्तं न्यवेदयन् । रामोऽपि श्रुत्वा तद्वृत्तं सीतायै संन्यवेदयत् ॥ १ ॥
ततो मुहूर्ते श्रीरामः सावरोधानुजैः सह । पौरैर्जानपदैः सर्वैः सुहृद्भिः सेनया सह ॥ २ ॥
नारदेन ययौ कांतिमाद्यां मुक्तिपुरीं प्रति । ततः श्रुत्वा कंबुकंठः शीघ्रं राघवमागतम् ॥ ३ ॥
स प्रत्युद्गम्य विनयान्नत्वा संपूजयन्मुदा । यूपकेतुं ततः पूज्य वारणस्थं पुरीं शनैः ॥ ४ ॥
वारस्त्रीनृत्यगीतैश्च तूर्यघोषैर्निनाय सः । ततः कांतिपुरीस्थास्ताः स्त्रियः प्रासादसंस्थिताः ॥ ५ ॥
दृष्ट्वा रामं यूपकेतुं ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः । ततो रामः शनैर्वस्तुं कल्पितं गृहमुत्तमम् ॥ ६ ॥
गत्वा दृष्ट्वा मुहूर्तं तु पूर्वोक्तकौतुकैः सुखम् । यूपकेतोर्विवाहं स चकार परमोत्सवैः ॥ ७ ॥
ततो विवाहं निर्वृत्य कंबुकंठेन पूजिताः । हस्त्यश्वरथपादातदासदासीजनादिभिः ॥ ८ ॥
ययौ मदनसुन्दर्या रामोऽयोध्यापुरीं निजाम् । ततो विवेश नागरीं नेदुर्वाद्यानि वै तदा ॥ ९ ॥
ननृतुर्वारनार्यश्च तुष्टुवुर्मागधादयः । प्रासादस्थाः स्त्रियो रामं ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥१०॥
मार्गे नीराजितः स्त्रीभिर्विवेश निजमन्दिरम् । कारयित्वा रमापूजां ददौ दानान्यनेकशः ॥११॥
सुहृदः पूजयामास राघवो वसनादिभिः । ततो विसर्जयामास सर्वान्स्वस्वस्थलं प्रति ॥१२॥

प्रार्थना करनेपर उनके साथ ही कांतिपुरी गये ॥ ९५ ॥ वहाँ कम्बुकण्ठकी सलाहसे शत्रुघ्न नगरके बाहर ही ठहरे और रामको बुलानेके लिए दूतोंको भेजा ॥ ९६ ॥ उसी समय शत्रुघ्न तथा कम्बुकण्ठके दूत श्रीरामको बुलानेके लिए प्रसन्नतापूर्वक चल पड़े ॥ ९७ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते विवाहकांडे अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—वे दूत अयोध्यापुरीमें पहुँचे और रामको कांतिपुरीका सब हाल कह सुनाया। सो सुनकर रामने सीतासे कहा ॥ १ ॥ इसके पश्चात् अच्छे मुहूर्तमें राम अपने अंतःपुरकी नारियों, पुरवासियों, जनपदवासियों, समस्त सम्बन्धियों, नारद तथा सेनाके साथ आदिमुक्तिपुरी अर्थात् कांतिपुरीको चल पड़े। जब कम्बुकण्ठने सुना कि रामचन्द्र पुरीके निकट आ पहुँचे हैं, तब आदरपूर्वक स्वागत करने गये। वहाँ पहुँचकर सविनय प्रणाम किया। इसके अनंतर राम तथा यूपकेतुका पूजन करके हाथीपर बिठाकर धीरे-धीरे पुरीको चले ॥ २–४ ॥ रास्तेमें वेश्यायें नाचती-गाती थीं और तुड़ही आदि विविध प्रकारके बाजे बज रहे थे। उधर जब नगरकी स्त्रियोंने आते देखा तो राम और यूपकेतुपर पुष्पवृष्टि करने लगीं। तत्पश्चात् राम जनवासेमें पहुँचे ॥ ५ ॥ ६ ॥ वहाँ अच्छा मुहूर्त देखकर पूर्वोक्त कौतुकोंके साथ बड़े उत्साहसे यूपकेतुका विवाह किया ॥ ७ ॥ विवाहकी सब रीतियाँ पूरी हो जानेपर कम्बुकण्ठसे पूजित होकर कितने ही हाथी, घोड़े, रथ, पैदल सेना, दास-दासी आदिके साथ मदनसुन्दरीको लेकर अपनी अयोध्यापुरीको चल दिये। अयोध्याके पास पहुँचकर वे अपनी नगरीमें घुसे तो विविध प्रकारके बाजे बजने लगे ॥ ८ ॥ ९ ॥ वेश्यायें नाचने लगीं और मागध-बन्दीजन स्तुति करने लगे। नगरवासिनी महिलाएँ अँटारियोंपर चढ़-चढ़कर रामपर फूल बरसाने लगीं और कुछ स्त्रियाँ मार्गमें आरती उतारने लगीं। इस उत्साहसे राम अपने महल गये। वहाँ उन्होंने लक्ष्मीकी पूजा की और अनेक प्रकारके दान दिये ॥ १० ॥ ११ ॥ इसके अनंतर निमंत्रणमें आये हुए

अथ सप्त कुमाराश्च लवाद्याः स्वस्ववेश्मनि । चक्रुः क्रीडां पृथक् स्त्रीभ्यां कुशश्चंपिकयाऽकरोत् ॥१३॥
चंपिकायां दुहितरः कुशाज्जाताः शुभा नव । कुशस्याग्रे कुमुद्वत्यां भविष्यंत्यष्ट सूनवः ॥१४॥
भविष्यति तथा कन्या त्वेका चंपकमालिनी । ज्येष्ठः पुत्रोऽतिथिरिति नाम्ना राज्यं करिष्यति ॥१५॥
चतुर्दश सुमत्याद्याः स्त्रियः सर्वाः क्रमेण हि । सुषुवुस्तनयानष्ट कन्यैकाऽपि पृथक् पृथक् ॥१६॥
स द्वादशशतं पौत्रान्पौत्रीश्चैव मनोरमाः । त्रयोविंशद्रामचन्द्रो लालयामास सीतया ॥१७॥
कुमुद्वतीभाविपुत्रसहिताः शिशवः शुभाः । विंशच्छतमासंस्ते तथा पौत्र्यस्तडित्प्रभाः ॥१८॥
चतुर्विंशन्मिताश्चासन् सर्वाश्चोद्वाहिता नृपैः । तथा श्रीरामपौत्रैश्च नृपकन्या ह्यनेकशः ॥१९॥
काश्चित्स्वयंवरेणैव काश्चिद्राक्षसयोगतः । काश्चिद्गांधर्वयोगेन काश्चिद्दैवाहकर्मणा ॥२०॥
परिणीताः पौरुषेण तासां संख्या न विद्यते । तासां हि संततिं वक्तुं कः समर्थो भवेदिह ॥२१॥
एवं स यूपकेतोश्च विवाहश्चरमः शुभः । संपाद्य नारदः श्रीमान्सभायां रघुनन्दनम् ॥२२॥
रामनामसहस्रेण सूतोक्तेनातिभक्तितः । स्तुत्वा श्रीराघवं पृष्ट्वा ययावाकाशवर्त्मना ॥२३॥

श्रीरामदास उवाच

एवं रामेण साकेतपुर्यां भोगाश्चिरं सुखम् । भुक्तास्तेषां वर्णनेऽत्र कः समर्थो भवेन्नरः ॥२४॥
एक एव समर्थोऽभूद्वाल्मीकिस्तपसां निधिः । शतकोटिमितं येन नानाक्रीडादिसंयुतम् ॥२५॥
वर्णितं रामचरितं महामंगलकारकम् । यत्स्मृत्वापि मया किंचित्त्वदग्रे परिवर्णितम् ॥२६॥
एवं रामस्त्वयोध्यायां पुत्रैः पौत्रैः समन्वितः । प्रपौत्रैः पौत्रपौत्रैश्च रंजयामास जानकीम् ॥२७॥
एवं विवाहकाण्डं च शिष्य त्वां परिवर्णितम् । नवसर्गैः पवित्रं च श्रवणान्मंगलप्रदम् ॥२८॥
विवाहकाण्डं परमं ये शृण्वन्त्यपि मानवाः । ते स्त्रीभिः पुत्रपौत्रैश्च वियोगं नाप्नुवन्ति हि ॥२९॥

सम्बन्धियोंको वस्त्र आदि दे-देकर पूजा की और सबको अपने घर जानेकी अनुमति दी ॥ १२ ॥ इसके बाद लव आदि सातों कुमार अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ अपने-अपने महलोंमें विहार करने लगे और कुश अपनी स्त्री चम्पिकाके साथ केलि करने लगे ॥ १३ ॥ इस तरह कुछ दिनों बाद कुशने चम्पिकासे नौ कन्यायें उत्पन्न कीं। कुमुद्वतीसे आठ पुत्र और चम्पकमालिनी नामकी एक पुत्री भी बादमें उत्पन्न होगी। कुशका सबसे बड़ा पुत्र अतिथि अयोध्यापुरीका राज करेगा ॥ १४ ॥ १५ ॥ इनके सिवाय सुमति आदि चौदह स्त्रियोंने क्रमशः आठ-आठ पुत्र और एक-एक कन्यायें उत्पन्न कीं ॥ १६ ॥ इस तरह राम सीताके साथ बारह सौ पौत्रों तथा तेईस सुन्दर पौत्रियोंका लालन-पालन करते थे ॥ १७ ॥ इसी प्रकार कुमुद्वतीके भावी पुत्रों-पौत्रोंको भी मिलाकर बीस सौ पौत्र और चौबीस पौत्रियाँ हुईं ॥ १८ ॥ जिनका रामने अच्छे-अच्छे राजाओंके साथ विवाह कर दिया और रामके पौत्रोंका विवाह अनेक राजकुमारियोंके साथ हुआ ॥ १९ ॥ उनमेंसे कुछ कुमारियाँ स्वयंवरसे आयीं, कुछ राक्षसविवाहसे आयीं, कुछ गंधर्वविवाहके योगसे आयीं और कुछका शुभ विवाहसम्बन्ध हुआ ॥ २० ॥ इनके सिवाय पौत्रोंके पुरुषार्थसे इतनी राजकुमारियाँ रामके महलोंमें आयीं, जिनकी कोई संख्या ही नहीं है। ऐसी स्थितिमें उनकी सन्तानोंको कौन गिन सकता है? ॥ २१ ॥ इस प्रकार यूपकेतुका अन्तिम शुभ विवाह सम्पन्न हो जानेपर नारदने सभामें सूतके कहे हुए रामसहस्रनामसे अति भक्तिपूर्वक रामकी स्तुति करके जानेकी आज्ञा माँग ली और आकाशमार्गसे चले गये ॥ २२ ॥ २३ ॥ श्रीरामदासने कहा—इस तरह रामने बहुत समय तक सुख भोगा। उसका वर्णन करनेमें कोई भी प्राणी समर्थ नहीं हो सकता ॥ २४ ॥ बस, एकमात्र तपस्वी वाल्मीकिजी उनके वर्णनमें समर्थ हुए थे। जिन्होंने सौ करोड़ श्लोकोंमें नाना प्रकारकी क्रीड़ाओं सहित रामचरित्रका वर्णन किया। यह रामचरित परम मङ्गलकारक है। इसका स्मरण करके ही मैं तुम्हारे समक्ष कुछ कहनेमें समर्थ हुआ हूँ ॥ २५ ॥ २६ ॥ इस प्रकार राम अपनी अयोध्यापुरीमें पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र एवं प्रपौत्रोंके पुत्रोंके साथ रहते हुए सीताको आह्लादित करते रहे ॥ २७ ॥ हे शिष्य! इस तरह मैंने नौ सर्गयुक्त पवित्र विवाहकाण्डका वर्णन किया, जो सुननेमें सर्वथा मङ्गलदायक है ॥ २८ ॥

धर्मार्थी प्राप्नुयाद्धर्मं धनार्थी धनमाप्नुयात् । कामानाप्नोति कामार्थी मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात् ३०॥
स्त्रीकामुकैर्नरैरेतत्पठनीयं निरंतरम् । विवाहकाण्डं परमं प्राप्नुवंत्यत्र ते वधूः ॥३१॥
पतिकामा कुमारी चेत्स्नात्वा श्रोष्यति भक्तितः । विवाहकाण्डमेतद्वै मनोज्ञं पतिमाप्नुयात् ॥३२॥
सभार्यश्चेत्पठेदेतच्छृणुयाद्वाऽत्र भक्तितः । इह स्त्रिया सुखं भुक्त्वाऽप्सरोभिर्दिवि मोदते ॥३३॥
सधवा शृणुयादेतद्या नारी कांडमुत्तमम् । विवाहाख्यं कदा भर्त्रा वियोगं नाप्नुयात्तु सा ॥३४॥
सप्तदशदिनैरस्य कार्यं स्त्रीकामुकैर्मुहुः । अनुष्ठानं वर्षमेकं मूर्खोऽपि स्त्रियमाप्नुयात् ॥३५॥
प्रथमे दिवसे सर्गं पठेद्द्वौ च परेऽहनि । नवमे दिवसे सर्गान्क्रमेण संपठेन्नव ॥३६॥
दशमे दिवसेऽष्टैव क्षयस्त्वेकेन वै क्रमात् । एवं सप्तदशदिनैरनुष्ठानं स्मृतं बुधैः ॥३७॥
अथवा सकलं कांडं प्रथमे दिवसे पठेत् । परेऽहनि द्विवारं हि नवमे दिवसे क्रमात् ॥३८॥
नववारं पठेच्चेदं दशमे दिवसे ततः । अष्टवारं पठेत्कांडं क्षयस्त्वेवं क्रमात्स्मृतः ॥३९॥
एवं नरो वर्षमेकमनुष्ठानात्स्त्रियं लभेत् । स्मितवक्त्रां चारुनासां दिव्यरूपां मनोहराम् ॥४०॥

विवाहकाण्डं परमं पवित्रमानन्ददं मङ्गलकारकं च ।
स्त्रीदं मनोज्ञं श्रुतिसौख्यदं वै नरैः सदा संश्रवणीयमेतत् ॥४१॥
आनन्दरामायणमध्यसंस्थं विवाहकांडं परमं हि षष्ठम् ।
शृण्वंति भक्त्या भुवि मानवा ये लभन्ति कामानखिलान्मनोज्ञान् ॥४२॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे विवाहकांडे रामवंशविस्तारकथनं नाम नवमः सर्गः ॥९॥
विवाहकांडे सर्गा आनन्दरामायणे नवैव ज्ञातव्याः । पञ्चशताश्च श्लोकाः पञ्चाशीत्युपरिष्टाः ॥ १ ॥

जो मनुष्य विवाहकाण्डका श्रवण करते हैं, वे अपनी स्त्री तथा पुत्र-पौत्रोंसे कभी भी वियुक्त नहीं होते ॥ २९ ॥ इसको सुननेसे धर्मार्थी धर्मको, धनार्थी धनको, कामी कामको और मोक्षार्थी मोक्षको पा लेता है ॥ ३० ॥ जो लोग स्त्रीकी इच्छा रखते हों, उन्हें चाहिये कि निरन्तर इस विवाहकाण्डका पाठ किया करें। इससे उन्हें स्त्री अवश्य प्राप्त होगी ॥ ३१ ॥ अच्छे पतिको पानेकी इच्छा रखनेवाली कुमारी यदि भक्तिपूर्वक इस कांडको सुने तो सुन्दर पति पायेगी ॥ ३२ ॥ जो सस्त्रीक मनुष्य इस काण्डको पढ़ता या सुनता है तो वह इस जन्ममें स्त्रीके साथ सुख भोगकर स्वर्गमें अप्सराओंके साथ विहार करता है। जो सधवा नारी इस काण्डको सुनती है, वह कभी पतिवियोगका दुःख नहीं पाती। जो लोग स्त्री चाहते हों, वे सत्रह दिनमें एक आवृत्तिके क्रमसे एक वर्ष पर्यन्त अनुष्ठान करें। ऐसा करनेसे मूर्ख मानव भी स्त्री प्राप्त कर सकता है ॥ ३३-३५ ॥ उसका क्रम इस तरह है- पहले दिन एक सर्ग, दूसरे दिन दो सर्ग, तीसरे दिन तीन सर्ग इस क्रमसे नवें दिन नौ सर्गोंका पाठ करे। फिर दसवें दिन आठ सर्ग और ग्यारहवें दिन सात सर्ग ऐसे एक-एक घटाता हुआ सत्रह दिनमें पूरा करे। विद्वानोंने यही अनुष्ठानकी विधि बतलायी है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ अथवा बन पड़े तो पहले रोज विवाहकांडका एक बार पाठ कर जाय, दूसरे रोज दो बार, तीसरे रोज तीन बार, इस रीतिसे बढ़ाता हुआ दसवें दिन नौ बार इस कांडका पाठ करे और ग्यारहवें रोज आठ बार, बारहवें दिन सात बार इस विधानसे घटाता हुआ सत्रहवें दिन केवल एक बार पाठ करे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ इस तरह एक वर्ष तक अनुष्ठान करनेसे वह मुस्कराते मुखड़े, अच्छी नासिका और दिव्य रूपवाली मनोहर स्त्री पाता है ॥ ४० ॥ लोगोंको चाहिए कि इस परम पवित्र, स्त्रीदायक, श्रुतिसुखदायी तथा आनन्द देनेवाले विवाहकांडका नित्य पाठ करें ॥ ४१ ॥ आनन्दरामायणके अन्तर्गत इस छठें विवाहकांडको जो मनुष्य भक्तिपूर्वक सुनते हैं, वे अपनी सब कामनाओंको प्राप्त कर लेते हैं ॥ ४२ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते विवाहकांडे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

इस विवाहकांडमें कुल नौ सर्ग हैं और उनमें पाँच सौ पचासी श्लोक कहे गये हैं ॥ १ ॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे विवाहकाण्डं समाप्तम् ।

श्रीसीतापतये नमः

श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं—

आनन्दरामायणम्

'ज्योत्स्ना'ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

राज्यकाण्डम् (पूर्वार्द्धम्)

प्रथमः सर्गः

(रामसहस्रनाम)

विष्णुदास उवाच

रामदास गुरो प्रोक्तं त्वया पूर्वं ममांतिके । विवाहकाण्डचरमसर्गेऽत्र पातकापहे ॥ १ ॥
रामनामसहस्रेण नारदेन महात्मना । सूतोक्तेन सभायां स रामचन्द्रः स्तुतस्त्विति ॥ २ ॥
तत्कीदृशं रामनामसहस्रं मां प्रकाशय । कथं सूतेन कथितं मुनीनामग्रतः पुरा ॥ ३ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया शिष्य सावधानमनाः शृणु । रामनामसहस्रं च सूतोक्तं प्रवदामि ते ॥ ४ ॥
यथा त्वया कृतः प्रश्नः शौनकेन तथा कृतः । सूतः प्राह तदाकर्ण्य शौनकं नैमिषे वने ॥ ५ ॥

श्रीसूत उवाच

एकदा सुखमासीनौ पार्वतीपरमेश्वरौ । अन्योन्याश्लिष्टहृद्बाहू लोकरक्षणतत्परौ ॥ ६ ॥
इन्द्रादिलोकपालैश्च सेवितौ च परात्परौ । पार्वती परिपप्रच्छ तदा धर्माननुक्रमात् ॥ ७ ॥

पार्वत्युवाच

मन्नाथ जगतां नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर । त्वत्प्रसादान्मया ज्ञातं धर्मशास्त्रमनुत्तमम् ॥ ८ ॥
प्रायश्चित्तं तु पापानां श्रुतं सर्वमशेषतः । ब्रह्महत्यादिपापानां निष्कृतिं वक्तुमर्हसि ॥ ९ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो रामदास ! अभी-अभी आप मुझसे कह चुके है कि पातकोंको नष्ट करनेवाले विवाहकांडमें नारदने सूतोक्त रामसहस्रनामसे सभामें रामचन्द्रजीकी स्तुति की थी ॥ १ ॥ २ ॥ वह रामसहस्रनाम कैसा है और किस प्रकार श्रीसूतजीने मुनियोंके समक्ष उसे प्रकट किया था। सो आप मुझसे कहें ॥ ३ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! तुमने बहुत उत्तम प्रश्न किया है, सावधान चित्त होकर सुनो। मैं तुम्हें सूतका कहा हुआ रामसहस्रनाम सुनाता हूँ । आज जिस तरह तुम मुझसे पूछ रहे हो, उसी तरह शौनकने सूतजीसे पूछा था । उनका प्रश्न सुनकर नैमिषारण्यमें सूतजीने शौनकसे कहा—एक समय लोकरक्षामें तत्पर शिव और पार्वती गलबहियाँ डाले हुए आनन्दपूर्वक बैठे थे ॥ ४–६ ॥ सर्वश्रेष्ठ देवता शिव और पार्वतीकी सेवामें इन्द्रादि लोकपाल उपस्थित थे। उस समय शिव-पार्वतीमें कोई धार्मिक चर्चा चल रही थी। समय पाकर पार्वतीने शिवजीसे कहा-हे हमारे प्रभु जगत्के प्रभु, सर्वज्ञ एवं परमेश्वर ! आपकी कृपासे मैंने समस्त धर्मशास्त्र जान लिया। पापोंका प्रायश्चित्त किस तरह हो सकता है, सो भी सुन चुकी।

श्रीमहादेव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतरं महत् । सनत्कुमारविघ्नेशसंवादं पापनाशनम् ॥१०॥
उपविष्टं गणाध्यक्षमेकान्ते प्रणिपत्य च । सनत्कुमारः पप्रच्छ सर्वधर्मविदां वरम् ॥११॥

सनत्कुमार उवाच

भगवन् सर्वधर्मज्ञ सर्वविघ्नविनाशन । द्विजहत्याहरं धर्मं वक्तुमर्हसि मे प्रभो ॥१२॥
विना भवन्तं धर्मस्य वक्ता नास्ति जगत्त्रये ।

श्रीगणेश उवाच

साधु पृष्टं त्वया ब्रह्मन्सर्वलोकोपकारकम् ॥१३॥
मया चिरं कृतं कर्म स्मारितं भवताऽनघ । पुराऽहं गजरूपेण जातः पर्वतसन्निभः ॥१४॥
ततो वृक्षान्समुत्पाट्य मुनिहिंसां समारभम् । तदा मया मुनिगणा निहता बहवो बलात् ॥१५॥
हाहाकारो महानासीद्ब्राह्मणानां समन्ततः । तदा हत्यासहस्रेण वेष्टितः पतितोऽस्म्यहम् ॥१६॥
निःसंज्ञं मृततुल्यं मां पतितं वीक्ष्य मे पिता । आराध्य जगतामीशं रामं सर्वहृदि स्थितम् ॥१७॥
प्रत्यक्षमकरोदेव मद्धेतो रघुनन्दनम् । तदा प्रोवाच भगवान् श्रीरामः पितरं मम ॥१८॥

श्रीराम उवाच

प्रसन्नोऽस्मि महादेव किं मां प्रार्थयसे प्रभो । दास्यामि यदभीष्टं ते त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥१९॥

श्रीमहादेव उवाच

द्विजहत्यासमाविष्टं मम पुत्रमिमं प्रभो । निष्पापं गुरु देवेश यद्यस्ति मयि ते दया ॥२०॥

श्रीगणेश उवाच

तथेत्युक्त्वा तदा तेन कृपयाऽहं निरीक्षितः । तत्क्षणाल्लब्धचैतन्यो निर्मलज्ञानबृंहितः ॥२१॥
बहुभिर्गद्यपद्यैश्च स्तुत्वा तं प्रणतोऽभवम् ।

अब आप मुझपर कृपा करके ब्रह्महत्यादि महापापोंकी निष्कृतिका कोई उपाय बतलाइए। श्रीशिवजी बोले—हे देवि ! मैं तुम्हें अतिशय गूढ़ तथा पापनाशक सनत्कुमार और गणपतिका सम्वाद सुनाता हूँ ॥ ७-१० ॥ एक समय जब कि गणेशजी एकान्तमें बैठे हुए थे, तब सनत्कुमारने जाकर उन्हें प्रणाम किया और कहा—हे भगवन् ! समस्त धर्मोंको जाननेवाले तथा विघ्नके विनाशक हे प्रभो ! मुझे ब्रह्महत्याका विनाश करनेवाला कोई धर्म बतलाइये ॥ ११ ॥ १२ ॥ आपके सिवाय तीनों लोकमें कोई भी धर्मका वक्ता मुझे नहीं दीखता। गणपतिने कहा—हे ब्रह्मन् ! तुमने मुझसे बहुत ठीक प्रश्न किया है। इससे सारे संसारका उपकार होगा ॥ १३ ॥ तुमने एक ही बातसे पूर्वमें किये हुए मेरे सब कर्मोंका स्मरण दिला दिया है। पूर्वकालमें मैं गजरूपसे संसारमें जन्मा था और पर्वतकी भाँति लम्बा-चौड़ा मेरा डील डौल था ॥ १४ ॥ उस समय मैंने पहले तो बहुतसे वृक्ष उखाड़े। फिर मुनियोंकी हिंसा आरम्भ कर दी। मैंने अपने अपरिमेय बलसे कितने ही मुनियोंका वध कर पापी बन बैठा ॥ १५ ॥ १६ ॥ मेरे होश-हवास ठिकाने न रहे तथा एक मृतककी नाईं मेरी आकृति हो गयी। मेरी दशा देखकर मेरे पिताने संसारके महाप्रभु रामकी आराधना की। इससे प्रसन्न होकर रामचन्द्रजी मेरे पिताके सम्मुख आये और कहने लगे। रामचन्द्रजी बोले—हे महादेव ! मैं तुम्हारे ऊपर अति प्रसन्न हूँ। बतलाओ, तुम किसलिए इस प्रकार मेरी प्रार्थना कर रहे हो ? तुम्हारी कामना यदि तीन लोकमें दुर्लभ होगी तो भी मैं उसे पूर्ण करूँगा ॥ १७-१९ ॥ श्रीशिवजीने कहा—हे प्रभो ! मेरे पुत्र गणेशको ब्रह्महत्या लग गयी है। हे देवेश ! यदि आपकी मुझपर दया हो तो उसे निष्पाप कर दीजिये ॥२०॥श्रीगणेशजी सनत्कुमारसे कहने लगे-इस प्रकार मेरे पिताकी बातें सुनकर रामचन्द्रने अपनी कृपाभरी दृष्टिसे एक बार मेरी ओर देखा। उनके देखते ही मैं चैतन्य हो गया। मेरेमें एक निर्मल ज्ञानका तत्क्षण संचार हो गया ॥ २१ ॥ तब बहुतसे गद्य-पद्यों द्वारा मैंने भगवान्‌की

श्रीरामचन्द्र उवाच

द्विजहत्यासहस्रस्य प्रायश्चित्तं वदामि ते ॥ २२ ॥

जप नामसहस्रं मे हत्याकोटिविनाशकम् । इति गुह्यं ददौ रामस्तत्त्वं नामसहस्रकम् ॥२३॥
तस्य तद्ग्रहणादेव निष्पापोऽहं तदाऽभवम् । तदारभ्यास्मि देवानां पूज्योऽहं मुनिसत्तम ॥२४॥
त्वमप्येतदधीयानो राघवस्य महात्मना । नाम्नां सहस्रं लोकेषु प्रख्यापय महामते ॥२५॥

सनत्कुमार उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि गणाधिप । त्वत्प्रसादान्मयाऽधीतं रामनामसहस्रकम् ॥२६॥

श्रीमहादेव उवाच

इति विज्ञाप्य देवेशं परिक्रम्य प्रणम्य च । तदादि सततं जप्त्वा स्तोत्रमेतद्वरानने ॥२७॥
अवाप परमां सिद्धिं पुण्यपापविवर्जितः ।

श्रीपार्वत्युवाच

श्रोतुमिच्छामि देवेश तदहं सर्वकामदम् ॥ २८ ॥
नाम्नां सहस्रं मां ब्रूहि यद्यस्ति मयि ते दया ।

श्रीमहादेव उवाच

अथ वक्ष्यामि भो देवि रामनामसहस्रकम् । शृणुष्वैकमनाः स्तोत्रं गुह्याद्गुह्यतरं महत् ॥२९॥
ऋषिर्विनायकश्चास्य ह्यनुष्टुप्छन्द उच्यते । परब्रह्मात्मको रामो देवता शुभदर्शने ॥३०॥

ॐअस्य श्रीरामसहस्रनाममालामंत्रस्य विनायक ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीरामो देवता महाविष्णुरिति बीजं गुणभृन्निर्गुणो महानिति शक्तिः सच्चिदानन्दविग्रह इति कीलकं श्रीराम-प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः

ॐश्रीरामचन्द्राय अंगुष्ठाभ्यां नमः । सीतापतये तर्जनीभ्यां नमः । रघुनाथाय मध्यमाभ्यां नमः । भरताग्रजाय अनामिकाभ्यां नमः । दशरथात्मजाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः । हनुमत्प्रभवे करतलकर-पृष्ठाभ्यां नमः । श्रीरामचन्द्राय हृदयाय नमः । सीतापतये शिरसे स्वाहा । रघुनाथाय शिखायै वषट् । भरताग्रजाय कवचाय हुम् । दशरथात्मजाय नेत्रत्रयाय वौषट् । हनुमत्प्रभवे अस्त्राय फट् ।

स्तुति की और उनके चरणोंमें लोट गया । फिर रामचन्द्रजी कहने लगे—हजारों द्विजहत्याके पापसे उद्धार पानेका उपाय मैं तुम्हें बतलाता हूँ ॥ २२ ॥ मेरे 'रामसहस्रनाम' का जप करोड़ ब्रह्महत्याओंका पाप भी नष्ट कर देता है । ऐसा कहकर रामचन्द्रजीने अपना गुप्त सहस्रनाम मुझे बताया और उसके ग्रहणमात्रसे मेरे पाप नष्ट हो गये । तभीसे हे मुनिसत्तम ! मैं देवताओंका भी पूज्य हो गया हूँ ॥ २३ ॥ २४ ॥ तुम भी इसी रामसहस्रनामका पाठ करते हुए संसारमें इसका प्रचार करो । सनत्कुमारने कहा—मैं धन्य हूँ । मुझपर आपकी बड़ी कृपा है । आपहीकी दयासे मैंने रामसहस्रनाम पा लिया । मैं कृतार्थ हो गया । श्रीशिवजीने कहा—इस तरह उस सहस्र-नामको जानकर सनत्कुमारने गणेशजीकी परिक्रमा की, प्रणाम किया और तभीसे नित्य इसका जप करके पुण्य-पापसे विवर्जित होकर वे परम सिद्धिको प्राप्त हुए । पार्वतीजी बोलीं—हे देवेश ! सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाले रामसहस्रनामको मैं भी जानना चाहती हूँ । यदि आपकी मुझपर दया रहती हो तो मुझे बताइए । शिवजी कहने लगे—हे देवि ! मैं तुम्हें वह पुनीत सहस्रनाम बतलाता हूँ । तुम भी सावधान मन होकर उस गूढ़ासिगूढ़ स्तोत्रको सुनो ॥ २५–२९ ॥ इस रामसहस्रनाम मंत्रमय स्तोत्रके ऋषि विनायक हैं और साक्षात् परब्रह्म राम इसके देवता हैं ॥ ३० ॥ 'ॐ अस्य श्रीराम' इस मंत्रसे विनियोग करके 'श्रीरामचन्द्राय' कहकर अंगुष्ठ, 'सीता-पतये' कहकर तर्जनी, 'रघुनाथाय' कहकर मध्यकी अँगुली, 'भरताग्रजाय' कहकर अनामिका, 'दशरथात्मजाय' कहकर कनिष्ठिका, 'हनुमत्प्रभवे' कहकर दोनों करपृष्ठोंका न्यास करे । फिर 'रामचन्द्राय' कहकर हृदय, 'सीतापतये' कहकर सिर, 'रघुनाथाय' कहकर शिखा, 'भरताग्रजाय' से दोनों बाहुमूल, 'दशरथात्मजाय'

अथ ध्यानम्

ध्यायेदाजानुबाहुं धृतशरधनुषं बद्धपद्मासनस्थं
पीतं वासो वसानं नवकमलदलस्पर्धि नेत्रं प्रसन्नम् ।
वामांकारूढसीतामुखकमलमिलल्लोचनं नीरदाभं
नानालंकारदीप्तं दधतमुरुजटामण्डलं रामचन्द्रम् ॥३१॥
वैदेहीसहितं सुरद्रुमतले हैमे महामण्डपे
मध्ये पुष्पमहासने मणिमये वीरासने संस्थितम् ।
अग्रे वाचयति प्रभंजनसुते तत्त्वं मुनिभ्यः परं
व्याख्यातं भरतादिभिः परिवृतं रामं भजेच्छ्यामलम् ॥३२॥
सौवर्णमंडपे दिव्ये पुष्पके सुविराजिते । मूले कल्पतरोः स्वर्णपीठे सिंहाष्टसंयुते ॥३३॥
मृदुश्लक्ष्णांतरे तत्र जानक्या सह संस्थितम् । रामं नीलोत्पलश्यामं द्विभुजं पीतवाससम् ॥३४॥
स्मितवक्त्रं सुखासीनं पद्मपत्रनिभेक्षणम् । किरीटहारकेयूरकुण्डलैः कटकादिभिः ॥३५॥
भ्राजमानं ज्ञानमुद्राधरं वीरासनस्थितम् । स्पृशन्तं स्तनयोरग्रे जानक्याः सव्यपाणिना ॥३६॥
वसिष्ठवामदेवाद्यैः सेवितं लक्ष्मणादिभिः । अयोध्यानगरे रम्ये ह्यभिषिक्तं रघूद्वहम् ॥३७॥
एवं ध्यात्वा जपेन्नित्यं रामनामसहस्रकम् । हत्याकोटियुतो वाऽपि मुच्यते नात्र संशयः ॥३८॥
ॐरामः श्रीमान्महाविष्णुर्जिष्णुर्देवहितावहः । तत्त्वात्मा तारक ब्रह्म शाश्वतः सर्वसिद्धिदः ॥३९॥
राजीवलोचनः श्रीमाँश्छ्रीरामो रघुपुंगवः । रामभद्रः सदाचारो राजेंद्रो जानकीपतिः ॥४०॥
अग्रगण्यो वरेण्यश्च वरदः परमेश्वरः । जनार्दनो जितामित्रः परार्थैकप्रयोजनः ॥४१॥

से दोनों नेत्र छुए तथा 'हनुमत्प्रभवे' कहकर चुटकी बजावे । अथ ध्यानम् । जिनका आजानु बाहु है, जो धनुष-बाण धारण किये हैं, पद्मासन मारकर बैठे हैं, पीले वस्त्र पहने हैं, नूतन कमलदलसे होड करनेवाली जिनकी दोनों आँखें हैं, जिनके वामांगमें सीताजी बैठी हैं, सीता तथा राम दोनों आपसमें एक दूसरेके मुखकी शोभा देखनेमें संलग्न हैं, नवीन मेघके सदृश जिनका मुख है, ऐसे विविध प्रकारके अलंकारोंसे अलंकृत तथा लम्बी-लम्बी जटा धारण करनेवाले रामचन्द्रका ध्यान करे ॥ ३१ ॥ कल्पवृक्षके नीचे सीताजीके साथ एक सुन्दर सुवर्णके मण्डपमें पुष्पनिर्मित महासन, जिसमें अनेक प्रकारकी मणियाँ जड़ी हैं, उसपर श्रीराम वीरासनसे बैठे हुए हैं। उनके सामने बैठे हनुमान्‌जी मुनियोंको परम तत्त्वकी व्याख्या सुना रहे हैं। भरतादि तीनों भ्राता जिनकी अगल-बगल खड़े हैं। ऐसे श्यामस्वरूप रामका भजन करे ॥ ३२ ॥ सुवर्णनिर्मित दिव्य पुष्पक विमान कल्पतरुके नीचे रक्खा है। जिसमें आठ सिंह लगे हैं। जो कोमल और चिकनी है, ऐसी गद्दीपर सीताके साथ बैठे हुए हैं, नीलकमल सरीखे जिनके नेत्र हैं, दो भुजाएँ हैं, पीत वस्त्र हैं, मुस्कुराता हुआ मुख है और वे आनन्दसे बैठे हैं। किरीट, हार, केयूर, कुण्डल और कटकादिसे वे सुशोभित हो रहे हैं। वे एक ओर ज्ञानमुद्रा धारण किये हैं। दूसरी तरफ बायें हाथसे सीताके स्तनोंको सहला रहे हैं ॥ ३३–३६ ॥ वसिष्ठ, वामदेव तथा लक्ष्मणादिक जिनकी सेवामें तत्पर हैं। अयोध्या नगरीमें जिनका राज्याभिषेक हो चुका है। ऐसे रघूद्वह रामचन्द्रजीका ध्यान करके सर्वदा इस रामसहस्रनामका पाठ करना चाहिए। ऐसा करनेसे यदि किसीको करोड़ों हत्यायें भी लगी हों तो दूर हो जाती हैं। इसमें किसी प्रकारका संशय नहीं करना चाहिए ॥३७॥३८॥ ॥ ३८ ॥ अब सहस्रनाम कहते हैं—राम, श्रीमान्, महाविष्णु, जिष्णु (सबको जीतनेवाले), देवहितावह (देवताओंका कल्याण करनेवाले), तत्त्वात्मस्वरूप, तारकब्रह्म, शाश्वत, सर्वसिद्धिद (सब प्रकारकी सिद्धियोंको देनेवाले) ॥ ३९ ॥ कमल सरीखे नेत्रवाले, श्रीराम, रघुवंशमें श्रेष्ठ, रामभद्र, सदाचार (पुनीत आचारवाले) राजेंद्र, जानकीके पति ॥ ४० ॥ सबके अग्रेसर, वरेण्य (सर्वश्रेष्ठ), वरद (वरदायक)

विश्वामित्रप्रियो दाता शत्रुजिच्छत्रुतापनः । सर्वज्ञः सर्ववेदादिः शरण्यो वालिमर्दनः ॥४२॥
ज्ञानभव्योऽपरिच्छेद्यो वाग्मी सत्यव्रतः शुचिः । ज्ञानगम्यो दृढप्रज्ञः खरध्वंसी प्रतापवान् ॥४३॥
द्युतिमानात्मवान् वीरो जितक्रोधोऽरिमर्दनः । विश्वरूपो विशालाक्षः प्रभुः परिवृढो दृढः ॥४४॥
ईशः खड्गधरः श्रीमान् कौसल्येयोऽनसूयकः । विपुलांसो महोरस्कः परमेष्ठी परायणः ॥४५॥
सत्यव्रतः सत्यसंधो गुरुः परमधार्मिकः । लोकेशो लोकवंद्यश्च लोकात्मा लोककृद्विभुः ॥४६॥
अनादिर्भगवान् सेव्यो जितमायो रघूद्वहः । रामो दयाकरो दक्षः सर्वज्ञः सर्वपावनः ॥४७॥
ब्रह्मण्यो नीतिमान् गोप्ता सर्वदेवमयो हरिः । सुन्दरः पीतवासाश्च सूत्रकारः पुरातनः ॥४८॥
सौम्यो महर्षिः कोदण्डः सर्वज्ञः सर्वकोविदः । कविः सुग्रीववरदः सर्वपुण्याधिकप्रदः ॥४९॥
भव्यो जितारिषड्वर्गो महोदारोऽघनाशनः । सुकीर्तिरादिपुरुषः कांतः पुण्यकृतागमः ॥५०॥
अकल्मषश्चतुर्बाहुः सर्वावासो दुरासदः १०० । स्मितभाषी निवृत्तात्मा स्मृतिमान् वीर्यवान् प्रभुः ॥५१॥
धीरो दांतो घनश्यामः सर्वायुधविशारदः । अध्यात्मयोगनिलयः सुमना लक्ष्मणाग्रजः ॥५२॥
सर्वतीर्थमयः शूरः सर्वयज्ञफलप्रदः । यज्ञस्वरूपो यज्ञेशो जरामरणवर्जितः ॥५३॥

परमेश्वर, जनार्दन, जितामित्र (शत्रुओंको परास्त करनेवाले), परार्थैकप्रयोजन (परोपकार करना ही जिनका एकमात्र प्रयोजन है), विश्वामित्रके प्रिय, ज्ञाता, शत्रुओंको जीतनेवाले, शत्रुतापन (शत्रुको तपानेवाले), सर्वज्ञ, सर्ववेदादि (समस्त वेदोंके आदि कारण), शरण्य, वालिमर्दन (वालिको परास्त करनेवाले), ज्ञानभव्य, परिच्छेद्य, वाग्मी (कुशल वक्ता), सत्यव्रत, शुचि (पवित्र), ज्ञानगम्य (ज्ञानद्वारा जानने योग्य), दृढतम (स्थिर बुद्धिवाले), खरध्वंसी, प्रतापवान्, आत्मवान्, वीर, जितक्रोध (जिन्होंने क्रोधको जीत लिया है), अरिमर्दन (शत्रुको नीचा दिखानेवाले), विश्वस्वरूप (संसार ही जिनका स्वरूप है), विशालाक्ष (बड़ी-बड़ी आँखोंवाले), प्रभु (समस्त जगत्के ईश्वर) परिवृढ (सतर्क) ॥ ४१-४४ ॥ ईश (सब संसारके स्वामी), खड्गधर (तलवार धारण करनेवाले), श्रीमान्, कौसल्येय (कौसल्याके पुत्र), अनसूयक (किसीसे ईर्ष्या न करनेवाले), विपुलांस (जिनके खूब चौड़े कन्धे हैं), महोरस्क (जिनकी विशाल छाती है), परमेष्ठी (जो ब्रह्मास्वरूप हैं), सत्यव्रतपरायण (सत्यव्रती), सत्यसंध (सत्यप्रतिज्ञ), गुरु (सर्वश्रेष्ठ), परम धार्मिक, लोकज्ञ (सब लोकोंके ज्ञाता), लोकवंद्य (सब लोकोंसे वन्दनीय), लोकात्मा (सब लोकोंके आत्मा), लोककृत (लोकोंके रचयिता), विभु (सर्वव्यापी) ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ अनादि (जिनका आदि नहीं है), भगवान् (सर्वसम्पत्तिशाली), सेव्य (सेवा योग्य), जितमाय (मायाको जीतनेवाले), रघूद्वह (रघुवंशके उजागरकर्ता), राम, दयाकर (दयाके खानिस्वरूप), दक्ष (सब कार्योंमें निपुण), सर्वज्ञ, सर्वपावन (सबको पुनीत करनेवाले), ब्रह्मण्य (ब्राह्मणभक्त); नीतिमान्, गोप्ता (सर्वरक्षक), सर्वदेवमय, हरि, सुन्दर, पीतवासा (पीले वस्त्र धारण करनेवाले), पुरातन सूत्रकार (सर्वप्राचीन सूत्रकार अर्थात् सूत्ररूपमें ग्रंथोंके रचयिता), पुरातन (सबसे प्राचीन) ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ सौम्य (जिनका सरल स्वभाव है), महर्षि, कोदण्ड (धनुर्धर), सर्वज्ञ, सर्वकोविद (सब विषयोंके पूर्ण पण्डित), कवि, सुग्रीववरद (सुग्रीवको अभयवर देनेवाले), सर्वपुण्याधिकप्रद (सब पुण्योंसे भी अधिक फल देनेवाले) ॥ ४९ ॥ भव्य, जितारिषड्वर्ग (जिन्होंने अपने बलसे शत्रुके मंत्र-उत्साहादि छः वर्गोंको जीत लिया है), महोदार (जो सबसे उदार हैं), अघनाशन (पापका नाश करनेवाले, सुकीर्ति (जिनकी सुन्दर कीर्ति है), आदिपुरुष (जो सबके आदि पुरुष हैं), कान्त (सर्वप्रिय), पुण्यकृतागम (पवित्रविचारसम्पन्न), अकल्मष (पापरहित), चतुर्बाहु (चतुर्भुज), सर्वावास (सबके निवासस्थान), दुरासद (बड़ी कठिनाईसे प्राप्य १००) स्मितभाषी (मुस्कुराते हुए बातें करनेवाले), निवृत्तात्मा (जिनकी आत्मा स्वतन्त्र है), जो स्मृतिमान्, वीर्यवान् और सबके प्रभु हैं। धीर, दान्त (उदारप्रकृति), घनश्याम (मेघकी नाईं श्यामस्वरूप), सर्वायुधविशारद (सब शस्त्रास्त्रोंमें निपुण), अध्यात्मयोगनिलय (अध्यात्मयोगके निवास), सुमना (सुन्दर चित्तवाले), लक्ष्मणाग्रज (लक्ष्मणके बड़े भ्राता), ॥ ५०-५२ ॥ तीर्थमय, शूर (असाधारण योद्धा), सर्वयज्ञफलप्रद (सब यज्ञोंके फलदाता) यज्ञस्वरूप

वर्णाश्रमगुरुर्वर्णी शत्रुजित्पुरुषोत्तमः । शिवलिंगप्रतिष्ठाता परमात्मा परात्परः ॥५४॥
प्रमाणभूतो दुर्ज्ञेयः पूर्णः परपुरंजयः । अनन्तदृष्टिरानन्दो धनुर्वेदो धनुर्धरः ॥५५॥
गुणाकरो गुणश्रेष्ठः सच्चिदानन्दविग्रहः । अभिवाद्यो महाकायो विश्वकर्मा विशारदः ॥५६॥
विनीतात्मा वीतरागस्तपस्वीशो जनेश्वरः । कल्याणः प्रह्वतिः कल्पः सर्वेशः सर्वकामदः ॥५७॥
अक्षयः पुरुषः साक्षी केशवः पुरुषोत्तमः । लोकाध्यक्षो महाकार्यो विभीषणवरप्रदः ॥५८॥
आनन्दविग्रहो ज्योतिर्हनुमत्प्रभुरव्ययः । भ्राजिष्णुः सहनो भोक्ता सत्यवादी बहुश्रुतः ॥५९॥
सुखदः कारणं कर्ता भवबन्धविमोचनः । देवचूडामणिर्नेता ब्रह्मण्यो ब्रह्मवर्धनः ॥६०॥
संसारतारको रामः सर्वदुःखविमोक्षकृत् । विद्वत्तमो विश्वकर्ता विश्वकृद्विश्वकर्म च ॥६१॥
नित्यो नियतकल्याणः सीताशोकविनाशकृत् । काकुत्स्थः पुण्डरीकाक्षो विश्वामित्रभयापहः ॥६२॥
मारीचमथनो रामो विराधवधपण्डितः । दुःस्वप्ननाशनो रम्यः किरीटी त्रिदशाधिपः ॥६३॥
महाधनुर्महाकायो भीमो भीमपराक्रमः । तत्त्वस्वरूपस्तत्त्वज्ञस्तत्त्ववादी सुविक्रमः ॥६४॥
भूतात्मा भूतकृत्स्वामी कालज्ञानी महावपुः । अनिर्विण्णो गुणग्रामो निष्कलंकः कलंकहा ॥६५॥
स्वभावभद्रः शत्रुघ्नः केशवः स्थाणुरीश्वरः । भूतादिः शंभुरादित्यः स्थविष्ठः शाश्वतो ध्रुवः ॥६६॥
कवची कुण्डली चक्री खड्गी भक्तजनप्रियः । अमृत्युर्जन्मरहितः सर्वजित्सर्वगोचरः ॥६७॥
अनुत्तमोऽप्रमेयात्मा सर्वात्मा गुणसागरः२०० । समः समात्मा समगो जटामुकुटमण्डितः ॥६८॥
अजेयः सर्वभूतात्मा विष्वक्सेनो महातपाः । लोकाध्यक्षो महाबाहुरमृतो वेदवित्तमः ॥६९॥

(यज्ञके मूर्त रूप), यज्ञेश (यज्ञोंके स्वामी), जरामरणवर्जित (बुढ़ापा और मृत्यु दोनोंसे रहित), वर्णाश्रमगुरु (वर्ण और आश्रमके गुरु), शत्रुजित् (शत्रुओंको जीतनेवाले) पुरुषोत्तम (सब पुरुषोंमें श्रेष्ठ), शिवलिंगप्रतिष्ठाता (विविध शिवलिंगोंके संस्थापक), परमात्मा, परात्पर, प्रमाणभूत (विश्वके प्रमाणस्वरूप), दुर्ज्ञेय (बड़ी कठिनाईसे जानने योग्य), पूर्ण, परपुरञ्जय (शत्रुनगरोंके विजेता), अनन्तदृष्टि (अपारदृष्टि), आनन्द, धनुर्वेदके ज्ञाता, धनुर्धारी, गुणाकर (गुणोंके भण्डार), गुणश्रेष्ठ (सब गुणोंमें श्रेष्ठ), सच्चिदानन्दविग्रह (सत् चित् आनन्द इन तीनोंसे जिनका शरीर बना है), अभिवाद्य (सबके वन्दनीय), महाकाय, विश्वकर्मा, विशारद ॥ ५३–५६ ॥ विनीत आत्मावाले, वीतराग (रागद्वेषशून्य), तपस्वीश (तपस्वियोंके स्वामी), जनेश्वर, कल्याण (कल्याणस्वरूप), प्रह्वति (सदा प्रसन्न), कल्प (स्थिति तथा प्रलयकालके अधिपति), सर्वेश, सर्वकामद, अक्षय, पुरुष, साक्षी, केशव, पुरुषोत्तम, लोकाध्यक्ष, महाकार्य, विभीषणवरप्रद ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ आनन्दविग्रह (आनन्दके मूर्त रूप), ज्योतिस्वरूप, हनुमान्‌के स्वामी, अविनाशी, भ्राजिष्णु (दीप्तिसम्पन्न), सहनशील, भोक्ता, सत्यवादी बहुश्रुत ॥ ५९ ॥ सुखदायी, कारणस्वरूप, कर्त्ता, भवबन्धनसे छुड़ानेवाले, देवताओंके मूर्धन्य, ब्राह्मणभक्त, ब्राह्मणोंके उन्नायक ॥ ६० ॥ संसारसागरसे तारनेवाले, सब दुःखोंसे छुड़ानेवाले, अतिशय विद्वान्, विश्वरचयिता, विश्वकर्त्ता, विश्वके कर्तव्य कर्मस्वरूप ॥ ६१ ॥ नित्य, कल्याणतत्पर, सीताशोकनाशक, काकुत्स्थ, कमलनयन, विश्वामित्रभयहारी ॥ ६२ ॥ मारीचघाती, राम, विराधवधमें निपुण, दुःखस्वप्ननिवारक, रमणीक, किरीटधारी, देवाधिपति ॥ ६३ ॥ विशाल धनुष धारण करनेवाले, विशालकाय, भयानक, भयानक पराक्रम-सम्पन्न, तत्त्वोंके मूर्तरूप, तत्त्वोंके ज्ञाता, तत्त्वविषयके वक्ता, असाधारण पराक्रमी ॥ ६४ ॥ प्राणिमात्रके स्रष्टा, सबके स्वामी, समयके पारखी, विशालशरीरधारी, सदा प्रसन्न, गुणधाम, निष्कलंक, कलंकनाशक ॥ ६५ ॥ स्वभावतः कल्याणकारी, शत्रुनाशक, केशव, चिरस्थायी, ईश्वर, प्राणियोंके आदि, शम्भु, अदिति-तनय, स्थायी, नित्य, अटल ॥ ६६ ॥ कवचधारी, कुण्डलधारी, चक्रधारी, खड्गधारी, भक्तजनोंके प्रिय, अमर, अजन्मा, सबके विजेता, सर्वदर्शी ॥ ६७ ॥ सर्वोत्तम, अप्रमेयात्मा, सर्वात्मा, गुणसागर २०० । सदा सम, प्रकृति, समात्मा, समगामी, जटामुकुटविमण्डित ॥ ६८ ॥ अजेय, सर्वभूतात्मा, विष्वक्सेन, महातपा,

सहिष्णुः सद्गतिः शास्ता विश्वयोनिर्महाद्युतिः । अतींद्र ऊर्जितः प्रांशुरुपेंद्रो वामनो बलिः ॥७०॥
धनुर्वेदो विधाता च ब्रह्मा विष्णुश्च शंकरः । हंसो मरीचिर्गोविंदो रत्नगर्भो महद्द्युतिः ॥७१॥
व्यासो वाचस्पतिः सर्वदर्पितासुरमर्दनः । जानकीवल्लभः श्रीमान् प्रकटः प्रीतिवर्द्धनः ॥७२॥
सभवोऽतींद्रियो वेद्यो निर्देशो जाम्बवत्प्रभुः । मदनो मन्मथो व्यापी विश्वरूपो निरंजनः ॥७३॥
नारायणोऽग्रणी साधुर्जटायुप्रीतिवर्द्धनः । नैकरूपो जगन्नाथः सुरकार्यहितः प्रभुः ॥७४॥
जितक्रोधो जितारातिः प्लवगाधिपराज्यदः । वसुदः सुभुजो नैकमायो भव्यः प्रमोदनः ॥७५॥
चण्डांशुः सिद्धिदः कल्पः शरणागतवत्सलः । अगदो रोगहर्ता च मन्त्रज्ञो मन्त्रभावनः ॥७६॥
सौमित्रिवत्सलो धुर्यो व्यक्ताव्यक्तस्वरूपधृक् । वसिष्ठो ग्रामणीः श्रीमाननुकूलः प्रियंवदः ॥७७॥
अतुलः सात्त्विको धीरः शरासनविशारदः । ज्येष्ठः सर्वगुणोपेतः शक्तिमांस्ताटकांतकः ॥७८॥
वैकुण्ठः प्राणिनां प्राणः कमठः कमलाधिपः । गोवर्धनधरो मत्स्यरूपः कारुण्यसागरः ॥७९॥
कुम्भकर्णप्रभेत्ता च गोपिगोपालसंवृतः ३०० । मायावी व्यापको व्यापी रेणुकेयबलापहः ॥८०॥
पिनाकमथनो वंद्यः समर्थो गरुडध्वजः । लोकत्रयाश्रयो लोकभरितो भरताग्रजः ॥८१॥
श्रीधरः संगतिर्लोकसाक्षी नारायणो विभुः । मनोरूपो मनोवेगो पूर्णः पुरुषपुंगवः ॥८२॥
यदुश्रेष्ठो यदुपतिर्भूतावासः सुविक्रमः । तेजोधरो धराधरश्चतुर्मूर्तिर्महानिधिः ॥८३॥
चाणूरमथनो वंद्यः शांतो भरतवंदितः । शब्दातिगो गभीरात्मा कोमलांगः प्रजागरः ॥८४॥
लोकोर्ध्वगः शेषशायी क्षीराब्धिनिलयोऽमलः । आत्मज्योतिरदीनात्मा सहस्रार्चिः सहस्रपात् ॥८५॥
अमृतांशुर्महीगर्तो निवृत्तविषयस्पृहः । त्रिकालज्ञो मुनिः साक्षी विहायसगतिः कृती ॥८६॥
पर्जन्यः कुमुदो भूतावासः कमललोचनः । श्रीवत्सवक्षाः श्रीवासो वीरहा लक्ष्मणाग्रजः ॥८७॥
लोकाभिरामो लोकारिमर्दनः सेवकप्रियः । सनातनतमो मेघश्यामलो राक्षसांतकः ॥८८॥

लोकोंके स्वामी, महाबाहु, अमृत, वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ ॥ ६९ ॥ सहिष्णु, सद्गति, शासक, विश्वयोनि, परमकान्ति-सम्पन्न, अतीन्द्र (इन्द्रसे श्रेष्ठ), तेजःसम्पन्न, सर्वोच्च, उपेन्द्र, वामन, बलि, ॥ ७० ॥ धनुर्वेदविधाता, ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, हंस, मरीचि, गोविन्द, रत्नगर्भ, महातेजस्वी ॥ ७१ ॥ व्यास, बृहस्पति, सभी अभिमानी असुरोंके घातक, जानकीवल्लभ, श्रीमान्, प्रकट, प्रीतिवर्धन ॥ ७२ ॥ संभव, अतीन्द्रिय, वेद्य, निर्देश, जाम्बवान्‌के स्वामी, मदन, मन्मथ, सर्वव्यापी, विश्वरूप, निरञ्जन ॥ ७३ ॥ नारायण, अग्रणी, साधु, जटायुके प्रीतिवर्धक, अनेकरूप, जगन्नाथ, देवकार्यसाधक, प्रभु ॥ ७४ ॥ जितक्रोध, शत्रुविजेता, सुग्रीवराज्यदायक, वसुदाता, बहुभुज, विविधमायाधारी, भव्य, प्रमोदन ॥ ७५ ॥ चण्डांशु, सिद्धिदायक, कल्प, शरणागत-वत्सल, अगद, रोगहर्ता, मन्त्रज्ञ, मंत्रभावन ॥ ७६ ॥ लक्ष्मणप्रिय, धुर्य, व्यक्त-अव्यक्तरूपधारी, वसिष्ठ, ग्रामीण, श्रीमान्, अनुकूल, प्रियवादी ॥ ७७ ॥ अतुलनीय, सात्त्विक, धीर, धनुर्विद्यामें निपुण, श्रेष्ठ, सर्वगुणसम्पन्न, शक्तिमान्, ताड़काके घातक ॥ ७८ ॥ वैकुण्ठ, प्राणियोंके प्राण, कर्मठ, कमलापति, गोवर्धनधारी, मत्स्य-रूपधारी, करुणासागर ॥ ७९ ॥ कुम्भकर्णके नाशक, गोपीगोपालसंवृत ३००, मायावी, व्यापक, व्यापी, रेणुकेय (परशुरामके बलनाशक) ॥ ८० ॥ धनुषभंजक, वंद्य, समर्थ, गरुडध्वज, तीनों लोकोंके आश्रय, लोकभरित, भरतके बड़े भ्राता ॥ ८१ ॥ श्रीधर, सङ्गति, लोकसाक्षी, नारायण, विभु, मनोरूपी, मनो-वेगी, पूर्ण, पुरुष-पुंगव ॥ ८२ ॥ यदुश्रेष्ठ, यदुपति, भूतावास, सुविक्रम, तेजोधर, धराधर, चतुर्मूर्ति, महानिधि ॥ ८३ ॥ चाणूरमथन, वंद्य, शान्त, भरतवन्दित, शब्दलिंग, गभीरात्मा, कोमलांग, प्रजागर ॥ ८४ ॥ लोकोर्ध्वगामी, शेषशायी, क्षीराब्धिनिलय, अमल, आत्मज्योति, अदीनात्मा, सहस्रार्चि, सहस्रचरण ॥ ८५ ॥ अमृतांशु, महीगर्त, विषयकी स्पृहासे रहित, त्रिलोकज्ञ, मुनि, साक्षी, विहायसगति, कृती ॥ ८६ ॥ पर्जन्य, कुमुद, भूतावास, कमललोचन, श्रीवत्सवक्षा, श्रीवास, वीरहा, लक्ष्मणाग्रज ॥ ८७ ॥ लोकाभिराम, लोका-

दिव्यायुधधरः श्रीमानप्रमेयो जितेंद्रियः । भूदेववंद्यो जनकप्रियकृत्प्रपितामहः ॥८९॥
उत्तमः सात्त्विकः सत्यः सत्यसन्धस्त्रिविक्रमः । सुवृत्तः सुगमः सूक्ष्मः सुघोषः सुखदः सुहृत् ॥९०॥
दामोदरोऽच्युतः शार्ङ्गी वामनो मथुराधिपः । देवकीनन्दनः शौरि शूरः कैटभमर्दनः ॥९१॥
सप्ततालप्रभेत्ता च मित्रवंशप्रवर्धनः । कालस्वरूपी कालात्मा कालः कल्याणदः ४०० कलिः ॥९२॥
संवत्सरो ऋतुः पक्षो ह्ययनं दिवसो युगः । स्तव्यो विविक्तो निर्लेपः सर्वव्यापी निराकुलः ॥९३॥
अनादिनिधनः सर्वलोकपूज्यो निरामयः । रसो रसज्ञः सारज्ञो लोकसारो रसात्मकः ॥९४॥
सर्वदुःखातिगो विद्याराशिः परमगोचरः । शेषो विशेषो विगतकल्मषो रघुपुङ्गवः ॥९५॥
वर्णश्रेष्ठो वर्णभाव्यो वर्णो वर्णगुणोज्ज्वलः । कर्मसाक्षी गुणश्रेष्ठो देवः सुखप्रदः ॥९६॥
देवाधिदेवो देवर्षिर्देवासुरनमस्कृतः । सर्वदेवमयश्चक्री शार्ङ्गपाणी रघूत्तमः ॥९७॥
मनोबुद्धिरहंकारः प्रकृतिः पुरुषोऽव्ययः । न्यायो न्यायी नयी श्रीमान् नयो नगधरो ध्रुवः॥९८॥
लक्ष्मीविश्वम्भरो भर्ता देवेंद्रो बलिमर्दनः । बाणारिमर्दनो यज्वानुत्तमो मुनिसेवितः ॥९९॥
देवाग्रणीः शिवध्यानतत्परः परमः परः । सामगेयः प्रियः शूरः पूर्णकीर्तिः सुलोचनः ॥१००॥
अव्यक्तलक्षणो व्यक्तो दशास्यद्विपकेसरी । कलानिधिः कलानाथः कमलानन्दवर्द्धनः ॥१०१॥
पुण्यः पुण्याधिकः पूर्णः पूर्वः पूरयिता रविः । जटिलः कल्मषध्वांतप्रभंजनविभावसुः ॥१०२॥
जयी जितारिः सर्वादिः शमनो भवभंजनः । अलंकरिष्णुरचलो रोचिष्णुर्विक्रमोत्तमः ॥१०३॥
आशुः शब्दपतिः शब्दागोचरो रंजनो लघुः । निःशब्दपुरुषो मायी स्थूलः सूक्ष्मो ५०० विलक्षणः ॥
आत्मयोनिरयोनिश्च सप्तजिह्वः सहस्रपात् । सनातनतमः स्रग्वी पेशलो विजितांबरः ॥१०५॥
शक्तिमान् शंखभृन्नाथो गदाधररथांगभृत् । निरीहो निर्विकल्पश्च चिद्रूपो वीतसाध्वसः ॥१०६॥
सनातनः सहस्राक्षः शतमूर्तिर्घनप्रभः । हृत्पुंडरीकशयनः कठिनो द्रव एव च ॥१०७॥
सूर्यो ग्रहपतिः श्रीमान् समर्थोऽनर्थनाशनः । अधर्मशत्रुरक्षोघ्नः पुरुहूतः पुरस्तुतः ॥१०८॥

रिमर्दन, सेवकप्रिय, सनातनतम, मेघश्यामल, राक्षसान्तक ॥ ८८ ॥ दिव्यायुधधर, श्रीमान्, अप्रमेय, जितेन्द्रिय, विप्रवंद्य, पिताके प्रियकर्ता, प्रपितामह ॥ ८९ ॥ उत्तम, सात्त्विक, सत्य, सत्यसन्ध, त्रिविक्रम, सुवृत्त, सुगम, सूक्ष्म, सुघोष, सुखद, सुहृत् ॥ ९० ॥ दामोदर, अच्युत, शार्ङ्गी, वामन, मथुराधिपति, देवकीनन्दन, वासुदेव, शूर, कैटभमर्दन ॥ ९१ ॥ सप्ततालप्रभेत्ता, मित्रवंशवर्धन, कालस्वरूपी, कालात्मा, काल, कल्याणद ४०० कलि, ॥ ९२ ॥ संवत्सर, ऋतु, पक्ष, अयन, युग, स्तव्य, विविक्त, निर्लेप, सर्वव्यापी, निराकुल ॥ ९३ ॥ अनादिनिधन, सर्वलोकपूज्य, निरामय, रस, रसज्ञ, सारज्ञ, लोकसार, रसात्मक ॥ ९४ ॥ सर्वदुःखातिग, विद्याराशि, परमगोचर, शेष, विशेष, विगतकल्मष, रघुपुङ्गव, ॥ ९५ ॥ वर्णश्रेष्ठ, वर्णभाव्य, वर्ण, वर्णगुणोज्ज्वल, कर्मसाक्षी, गुणश्रेष्ठ, देव, सुखप्रद ॥ ९६ ॥ देवाधिदेव, देवर्षि, देवासुरनमस्कृत, सर्वदेवमय, चक्री, शार्ङ्गपाणि, रघूत्तम, ॥ ९७ ॥ मन-बुद्धि-अहंकार, प्रकृति, पुरुष, अव्यय, न्याय, न्यायी, नयी, श्रीमान्, नय, नगधर, ध्रुव, ॥ ९८ ॥ लक्ष्मी-विश्वम्भर, भर्ता, देवेन्द्र, बलिमर्दन, बाणारिमर्दन, यज्वा, उत्तम, मुनिसेवित ॥ ९९ ॥ देवाग्रणी, शिवध्यानतत्पर, परम, पर, सामगेय, प्रिय, शूर, पूर्णकीर्ति, सुलोचन ॥ १०० ॥ अव्यक्तलक्षण, व्यक्त, दशास्यद्विपकेसरी, कलानिधि, कलानाथ, कमलानन्दवर्धन ॥ १०१ ॥ पुण्याधिक, पूर्ण, पूरयिता, रवि, जटिल, कल्मषोंको ध्वस्त करनेवाले, अग्नि ॥ १०२ ॥ जयी, जितारि, सर्वादि, शमन, भवभञ्जन, अलंकरिष्णु, अचल, रोचिष्णु, विक्रमोत्तम ॥ १०३ ॥ आशु, शब्दपति, शब्दागोचर, रंजन, लघु, निःशब्द, पुरुष, मायी, स्थूल, सूक्ष्म ५००, विलक्षण ॥१०४॥ आत्मयोनि, अयोनि, सप्तजिह्व, सहस्रपात्, सनातनतम, स्रग्वी, पेशल, विजिताम्बर ॥ १०५ ॥ शक्तिमान्, शंखभृत्, नाथ, गदाधर, रथांगभृत्, निरीह, निर्विकल्प, चिद्रूप, वीतसाध्वस ॥ १०६ ॥ सनातन,

ब्रह्मगर्भो बृहद्गर्भो धर्मधेनुर्धनागमः । हिरण्यगर्भो ज्योतिष्मान् सुललाटः सुविक्रमः॥१०९॥
शिवपूजारतः श्रीमान् भवानीप्रियकृद्वशी । नरो नारायणः श्यामः कपर्दी नीललोहितः ॥११०॥
रुद्रः पशुपतिः स्थाणुर्विश्वामित्रो द्विजेश्वरः । मातामहो मातरिश्वा विरिंचिर्विष्टरश्रवाः ॥१११॥
अक्षोभ्यः सर्वभूतानां चण्डः सत्यपराक्रमः । बालखिल्यो महाकल्पः कल्पवृक्षः कलाधरः ॥११२॥
निदाघस्तपनो मेघः शुक्रः परबलापहृत् । वसुश्रवाः कव्यवाहः प्रतप्तो विश्वभोजनः ॥११३॥
रामो नीलोत्पलश्यामो ज्ञानस्कंदो महाद्युतिः । कबन्धमथनो दिव्यः कम्बुग्रीवः शिवप्रियः । ११४॥
सुखी नीलः सुनिष्पन्नः सुलभः शिशिरात्मकः । असंसृष्टोऽतिथिः शूरः प्रमाथी पापनाशकृत् ॥११५॥
पवित्रपादः पापारिर्मणिपूरो नभोगतिः । उत्तारणो दुष्कृतिहा दुर्धर्षो दुःसहो बलः६००॥११६।
अमृतेशोऽमृतवपुर्धर्मी धर्मः कृपाकरः । भगो विवस्वानादित्यो योगाचार्यो दिवस्पतिः॥११७।
उदारकीर्तिरुद्योगी वाङ्मयः सदसन्मयः । नक्षत्रमानी नाकेशः स्वाधिष्ठानः षडाश्रयः ॥११८॥
चतुर्वर्गफलं वर्णशक्तित्रयफलं निधिः । निधानगर्भो निर्व्याजो निरीशो व्यालमर्दनः ॥११९॥
श्रीवल्लभः शिवारम्भः शांतो भद्रः समंजसः । भूशायी भूतकृद्भूतिर्भूषणो भूतवाहनः ॥१२०।
अकायो भक्तकायस्थः कालज्ञानी महापटुः । परार्थवृत्तिरचलो विविक्तः श्रुतिसागरः ॥१२१॥
स्वभावभद्रो मध्यस्थः संसारभयनाशनः । वेद्यो वैद्यो वियद्गोप्ता सर्वामरमुनीश्वरः ॥१२२॥
सुरेन्द्रः कारणं कर्मकरः कर्मी ह्यधोक्षजः । धैर्योऽग्रधुर्यो धात्रीशः संकल्पः शर्वरीपतिः ॥१२३॥
परमार्थगुरुर्दृष्टिः सुचिराश्रितवत्सलः । विष्णुर्जिष्णुर्विभुर्यज्ञो यज्ञेशो यज्ञपालकः ॥१२४॥
प्रभुर्विष्णुर्ग्रसिष्णुश्च लोकात्मा लोकपालकः । केशवः केशिहा काव्यः कविः कारणकारणम् ॥१२५॥
कालकर्ता कालशेषो वासुदेवः पुरुष्टुतः । आदिकर्ता वराहश्च वामनो मधुसूदनः ॥१२६॥
नारायणो नरो हंसो विष्वक्सेनो जनार्दनः । विश्वकर्ता महायज्ञो ज्योतिष्मान्पुरुषोत्तमः७००।१२७

सहस्राक्ष, शतमूर्ति, धनप्रद, हृत्पुण्डरीकशयन, कठिन, द्रव ॥ १०७ ॥ सूर्य, ग्रहपति, श्रीमान्, समर्थ, अनर्थनाशन, अधर्मशत्रु, रक्षोघ्न, पुरुहूत, पुरुष्टुत, ॥ १०८ ॥ ब्रह्मगर्भ, बृहद्गर्भ, धर्मधेनु, धनागम, हिरण्यगर्भ, ज्योतिष्मान्, सुललाट, सुविक्रम ॥ १०९ ॥ शिवपूजारत, श्रीमान्, भवानीप्रियकृत्, वशी, नर, नारायण, श्याम, कपर्दी, नीललोहित, ॥ ११० ॥ रुद्र, पशुपति, स्थाणु, विश्वामित्र, द्विजेश्वर, मातामह, मातरिश्वा, विरिञ्चि, विष्टरश्रवा ॥ १११ ॥ अक्षोभ्य, चण्ड, सत्यपराक्रम, बालखिल्य, महाकल्प, कल्पवृक्ष, कलाधर ॥ ११२ ॥ निदाघ, तपन, मेघ, शुक्र, परबलापहारी, वसुश्रवा, कव्यवाह, प्रतप्त, विश्वभोजन ॥ ११३ ॥ राम, नीलोत्पलश्याम, ज्ञानस्कन्द, महाद्युति, कबन्धमथन, दिव्य, कम्बुग्रीव, शिवप्रिय, ॥ ११४ ॥ सुखी, नील, सुनिष्पन्न, सुलभ, शिशिरात्मक, असंसृष्ट, अतिथि, शूर, प्रमाथी, पापनाशकारी ॥ ११५ ॥ पवित्रपाद, पापारि, मणिपूर, नभोगति, उत्तारण, दुर्धर्ष, दुःसह, बल ६०० ॥ ११६ ॥ अमृतेश, अमृतवपु, धर्मी, कृपाकर, भग, विवस्वान्, आदित्य, योगाचार्य, दिवस्पति ॥ ११७ ॥ उदारकीर्ति, उद्योगी, वाङ्मय, सदसन्मय, नक्षत्रमानी, नाकेश, स्वाधिष्ठान, षडाश्रय ॥ ११८ ॥ चतुर्वर्गफल, वर्णशक्तित्रयफल, निधि, निधानगर्भ, निर्व्याज, निरीश, व्यालमर्दन ॥ ११९ ॥ श्रीवल्लभ, शिवारम्भ, शान्त, भद्र, समंजस, भूशायी, भूति, भूतवाहन ॥ १२० ॥ अव्यय, भक्तकायस्थ, कालज्ञानी, महापटु, परार्थवृत्ति, अचल, विविक्त, श्रुतिसागर ॥ १२१ ॥ स्वभावभद्र, मध्यस्थ, संसारभयनाशन, वेद्य, वैद्य, वियद्गोप्ता, सर्वामरमुनीश्वर ॥ १२२ ॥ सुरेन्द्र, कारण, कर्मकर, कर्मी, अधोक्षज, धैर्य, उग्रधुर्य, धात्रीश, संकल्प, शर्वरीपति ॥ १२३ ॥ परमार्थगुरु, दृष्टि, सुचिराश्रितवत्सल, विष्णु, जिष्णु, विभु, यज्ञ, यज्ञेश, यज्ञपालक ॥ १२४ ॥ प्रभु, विष्णु, ग्रसिष्णु, लोकात्मा, लोकपालक, केशव, केशिहा, काव्य, कवि, कारणकारण ॥ १२५ ॥ कालकर्ता, कालशेष, वासुदेव, पुरुष्टुत, आदिकर्ता, वराह, वामन, मधुसूदन ॥ १२६ ॥ नारायण, नर, हंस, विष्वक्सेन, जनार्दन, विश्वकर्ता, महायज्ञ, ज्योतिष्मान्,

वैकुण्ठः पुण्डरीकाक्षः कृष्णः सूर्यः सुरार्चितः । नारसिंहो महाभीमो वज्रदंष्ट्रो नखायुधः ॥१२८॥
आदिदेवो जगत्कर्ता योगीशो गरुडध्वजः । गोविन्दो गोपतिर्गोप्ता भूपतिर्भुवनेश्वरः ॥१२९॥
पद्मनाभो हृषीकेशो धाता दामोदरः प्रभुः । त्रिविक्रमस्त्रिलोकेशो ब्रह्मेशः प्रीतिवर्धनः ॥१३०॥
संन्यासी शास्त्रतत्त्वज्ञो मन्दिरो गिरिशो नतः । वामनो दुष्टदमनो गोविन्दो गोपवल्लभः ॥१३१॥
भक्तप्रियोऽच्युतः सत्यः सत्यकीर्तिर्धृतिः स्मृतिः। कारुण्यः करुणो व्यासः पापहा शांतिवर्द्धनः १३२॥
बदरीनिलयः शान्तस्तपस्वी वैद्युतः प्रभुः । भूतावासो महावासा श्रीनिवासः श्रियः पतिः॥१३३॥
तपोवासो मुदावासः सत्यवासः सनातनः । पुरुषः पुष्करः पुण्यः पुष्कराक्षो महेश्वरः ॥१३४॥
पूर्णमूर्तिः पुराणज्ञः पुण्यदः प्रीतिवर्धनः । पूर्णरूपः कालचक्रप्रवर्तनसमाहितः ॥१३५॥
नारायणः परं ज्योतिः परमात्मा सदाशिवः । शंखी चक्री गदी शार्ङ्गी लांगूली मुसली हली ॥१३६॥
किरीटी कुंडली हारी मेखली कवची ध्वजी । योधा जेता महावीर्यः शत्रुघ्नः शत्रुतापनः ॥१३७॥
शास्ता शास्त्रकरः शास्त्रं शंकरः शंकरस्तुतः । सारथी सात्त्विकः स्वामी सामवेदप्रियः समः ८००॥
पवनः संहितः शक्तिः सम्पूर्णाङ्गः समृद्धिमान् । स्वर्गदः कामदः श्रीदः कीर्तिदः कीर्तिदायकः ॥१३९॥
मोक्षदः पुण्डरीकाक्षः क्षीराब्धिकृतकेतनः । सर्वात्मा सर्वलोकेशः प्रेरकः पापनाशनः ॥१४०॥
वैकुंठः पुण्डरीकाक्षः सर्वदेवनमस्कृतः । सर्वव्यापी जगन्नाथः सर्वलोकमहेश्वरः ॥१४१॥
सर्गस्थित्यन्तकृद्देवः सर्वलोकसुखावहः । अक्षयः शाश्वतोऽनन्तः क्षयवृद्धिविवर्जितः ॥१४२॥
निर्लेपो निर्गुणः सूक्ष्मो निर्विकारो निरंजनः । सर्वोपाधिविनिर्मुक्तः सत्तामात्रव्यवस्थितः ॥१४३॥
अविकारी विभुर्नित्यः परमात्मा सनातनः । अचलो निश्चलो व्यापी नित्यतृप्तो निराश्रयः॥१४४॥
श्यामो युवा लोहिताक्षो दीप्त्या शोभितभाषणः । आजानुबाहुः सुमुखः सिंहस्कन्धो महाभुजः ॥१४५॥
सत्त्ववान् गुणसंपन्नो दीप्यमानः स्वतेजसा । कालात्मा भगवान् कालः कालचक्रप्रवर्तकः ॥१४६॥

पुरुषोत्तम ७०० ॥ १२७ ॥ वैकुण्ठ, पुण्डरीकाक्ष, कृष्ण, सूर्य, सुरार्चित, नारसिंह, महाभीम, वज्रदंष्ट्र, नखायुध ॥ १२८ ॥ आदिदेव, जगत्कर्ता, योगीश, गरुडध्वज, गोविन्द, गोपति, गोप्ता, भूपति, भुवनेश्वर ॥ १२९ ॥ पद्मनाभ, हृषीकेश, धाता, दामोदर, प्रभु, त्रिविक्रम, त्रिलोकेश, ब्रह्मेश, प्रीतिवर्धन ॥ १३० ॥ संन्यासी, शास्त्रतत्त्वज्ञ, मन्दर, गिरीश, नत, वामन, दुष्टदमन, गोविन्द, गोपवल्लभ, ॥ १३१॥ भक्तिप्रिय, अच्युत, सत्य, सत्यकीर्ति, धृति, स्मृति, कारुण्य, करुण, व्यास, पापहा, शान्तिवर्द्धन ॥ १३२ ॥ बदरीनिलय, शान्ति, तपस्वी, वैद्युत, प्रभु, भूतावास, महावास, श्रीनिवास, श्रीपति ॥ १३३ ॥ तपोवास, मुदावास, सत्यवास, सनातन, पुष्कर, पुण्य, पुष्कराक्ष, महेश्वर ॥ १३४ ॥ पूर्णमूर्ति, पुराणज्ञ, पुण्यज्ञ, प्रीतिवर्द्धन, पूर्णरूप, कालचक्रप्रवर्तन, समाहित ॥ १३५ ॥ नारायण, परंज्योति, परमात्मा, सदाशिव, शंखी, चक्री, गदी, शार्ङ्गी, लांगूली, मुसली, हली ॥ १३६ ॥ किरीटी, कुण्डली, हारी, मेखली, कवची, ध्वजी, योधा, जेता, महावीर्य, शत्रुघ्न, शत्रुतापन ॥ १३७ ॥ शास्ता, शास्त्रकर, शास्त्र, शंकर, शंकरस्तुत, सारथी, सात्त्विक, स्वामी, सामवेदप्रिय, सम ८०० ॥ १३८ ॥ पवन, संहति, शक्ति, सम्पूर्णाङ्ग, समृद्धिमान्, स्वर्गद, कामद, श्रीद, कीर्तिद, कीर्तिदायक ॥ १३९ ॥ मोक्षद, पुण्डरीकाक्ष, क्षीराब्धिकृतकेतन, सर्वात्मा, सर्वलोकेश, प्रेरक, पापनाशन ॥ १४० ॥ वैकुण्ठ, पुण्डरीकाक्ष, सर्वदेवनमस्कृत, सर्वव्यापी, जगन्नाथ, सर्वलोकमहेश्वर ॥ १४१ ॥ सर्ग-स्थितिअन्तकृत्, देव, सर्वलोकसुखावह, अक्षय, शाश्वत, अनन्त क्षयवृद्धिविवर्जित ॥ १४२ ॥ निर्लेप, निर्गुण, सूक्ष्म, निर्विकार, निरञ्जन, सर्वोपाधिविनिर्मुक्त, सत्तामात्रव्यवस्थित ॥ १४३ ॥ अविकारी, विभु, नित्य, परमात्मा, सनातन, अचल, निश्चल, व्यापी, नित्यतृप्त, निराश्रय ॥ १४४ ॥ श्याम, युवा, लोहिताक्ष, शोभितभाषण, आजानुबाहु, सुमुख, सिंहस्कन्ध, महाभुज ॥ १४५ ॥ सत्त्ववान्, गुणसम्पन्न, अपने तेजसे दीप्यमान, कालात्मा, भगवान्, काल,

नारायणः परं ज्योतिः परमात्मा सनातनः । विश्वकृद्विश्वभोक्ता च विश्वगोप्ता च शाश्वतः ॥ १४७ ॥
विश्वेश्वरो विश्वमूर्तिर्विश्वात्मा विश्वभावनः । सर्वभूतसुहृच्छांतः सर्वभूतानुकंपनः ॥१४८॥
सर्वेश्वरः सर्वशर्वः सर्वदाऽऽश्रितवत्सलः । सर्वगः सर्वभूतेशः सर्वभूताशयस्थितः ॥१४९॥
अभ्यंतरस्थस्तमसश्छेत्ता नारायणः परः । अनादिनिधनः स्रष्टा प्रजापतिपतिर्हरिः ॥१५०॥
नरसिंहो हृषीकेशः सर्वात्मा सर्वदृग्वशी । जगतस्तस्थुषश्चैव प्रभुर्नेता सनातनः ९०० ॥१५१॥
कर्ता धाता विधाता च सर्वेषां पतिरीश्वरः । सहस्रमूर्धा विश्वात्मा विष्णुर्विश्वदृगव्ययः ॥१५२॥
पुराणपुरुषः श्रेष्ठः सहस्राक्षः सहस्रपात् । तत्त्वं नारायणो विष्णुर्वासुदेवः सनातनः ॥१५३॥
परमात्मा परं ब्रह्म सच्चिदानंदविग्रहः । परं ज्योतिः परं धाम पराकाशः परात्परः ॥१५४॥
अच्युतः पुरुषः कृष्णः शाश्वतः शिव ईश्वरः । नित्यः सर्वगतः स्थाणुः रुद्रः साक्षी प्रजापतिः ॥१५५॥
हिरण्यगर्भः सविता लोककृल्लोकभुग्विभुः ॐकारवाच्यो भगवान् श्रीभूलीलापतिः प्रभुः ॥१५६॥
सर्वलोकेश्वरः श्रीमान् सर्वज्ञः सर्वतोमुखः । स्वामी सुशीलः सुलभः सर्वगः सर्वशक्तिमान् ॥१५७॥
नित्यः संपूर्णकामश्च नैसर्गिकसुहृत्सुखी । कृपापीयूषजलधिः शरण्यः सर्वशक्तिमान् ॥१५८॥
श्रीमान्नारायणः स्वामी जगतां प्रभुरीश्वरः । मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहोऽथ वामनः ॥१५९॥
रामो रामश्च कृष्णश्च बौद्धः कल्की परात्परः । अयोध्येशो नृपश्रेष्ठः कुशबालः परंतपः ॥१६०॥
लवबालः कंजनेत्रः कंजांघ्रिः पंकजाननः । सीताकांतः सौम्यरूपः शिशुजीवनतत्परः ॥१६१॥
सेतुकृच्चित्रकूटस्थः शबरीसंस्तुतः प्रभुः । योगिध्येयः शिवध्येयः शास्ता रावणदर्पहा ॥१६२॥
श्रीशः शरण्यो भूतानां संश्रिताभीष्टदायकः । अनंतः श्रीपती रामो गुणभृन्निर्गुणो महान् १००० ॥
एवमादीनि नामानि ह्यसंख्यान्यपराणि च । एकैकं नाम रामस्य सर्वपापप्रणाशनम् ॥१६४॥
सहस्रनामफलदं सर्वैश्वर्यप्रदायकम् । सर्वसिद्धिकरं पुण्यं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥१६५॥

कालचक्रप्रवर्तक ॥ १४६ ॥ नारायण, परंज्योति, परमात्मा, सनातन, विश्वकृत्, विश्वभोक्ता, विश्वगोप्ता, शाश्वत ॥ १४७ ॥ विश्वेश्वर, विश्वमूर्ति, विश्वात्मा, विश्वभावन, सर्वभूतसुहृत्, शान्त, सर्वभूतानुकम्पन ॥१४८॥ सर्वेश्वर, सर्वशर्व, सर्वदा आश्रितवत्सल, सर्वग, सर्वभूतेश, सर्वभूताशयस्थित ॥ १४९ ॥ अभ्यन्तरस्थ, अन्धकारनाशक, नारायण, पर, अनादिनिधन, स्रष्टा, प्रजापति, हरि ॥ १५० ॥ नरसिंह, हृषीकेश, सर्वात्मा, सर्वदृक्, वशी, स्थावर तथा जंगम विश्वके प्रभु, नेता, सनातन ९०० ॥ १५१ ॥ कर्ता, धाता, विधाता, सबके पति, ईश्वर, सहस्रमूर्धा, विश्वात्मा, विष्णु, विश्वदृक्, अव्यय ॥ १५२ ॥ पुराणपुरुष, श्रेष्ठ, सहस्राक्ष, सहस्रपात्, तत्त्व, विष्णु, नारायण, वासुदेव, सनातन ॥ १५३ ॥ परमात्मा, परब्रह्म, सच्चिदानन्दविग्रह, परंज्योति, परंधाम, पराकाश, परात्पर, ॥ १५४ ॥ अच्युत, कृष्ण, शाश्वत, शिव, ईश्वर, नित्य, सर्वगत, स्थाणु, रुद्र, साक्षी, प्रजापति ॥ १५५ ॥ हिरण्यगर्भ, सविता, लोककृत्, विभु, ॐकारवाच्य, भगवान्, श्रीभूलीलापति, प्रभु ॥ १५६ ॥ सर्वलोकेश्वर, श्रीमान्, सर्वज्ञ, सर्वतोमुख, स्वामी, सुशील, सर्वग, सर्व-सर्वशक्तिमान्, प्रभु ॥ १५७ ॥ सम्पूर्णकाम, नैसर्गिकसुहृद्, सुखी, कृपापीयूषजलधि, सबके शरण्य ॥ १५८ ॥ श्रीमान्, नारायण, स्वामी, सब भुवनोंके प्रभु, ईश्वर, मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन ॥ १५९ ॥ राम, कृष्ण, बौद्ध, कल्की, परात्पर, अयोध्येश, नृपश्रेष्ठ, कुशके पिता, परन्तप ॥ १६० ॥ लवके पिता, सेतुकृत्, चित्रकूटस्थ, कमलनयन, कमलचरण, कमलमुख, सीताकान्त सौम्यरूप, शिशुजीवनतत्पर ॥ १६१ ॥ शबरीसंस्तुत, प्रभु, योगिध्येय, शिवध्येय, शास्ता, रावणदर्पहा ॥ १६२ ॥ श्रीश, शरण्य, आश्रितोंके अभीष्टदायक, अनन्त, श्रीपति, राम, गुणभृत, निर्गुण, महान् १००० ॥ १६३ ॥ यहाँ रामसहस्रनाम पूर्ण हुआ। इसी तरह और भी भगवान्‌के बहुतसे नाम हैं, जिनकी गणना ही नहीं की जा सकती। रामका एक-एक नाम सब प्रकारके पापोंको हरने तथा सहस्रनामका फल देनेवाला है। यह रामनाम सब प्रकारकी समृद्धियों एवं

मन्त्रात्मकमिदं सर्वं व्याख्यातं सर्वमंगलम् । उक्तानि तव पुत्रेण विघ्नराजेन धीमता ॥१६६॥
सनत्कुमाराय पुरा तान्युक्तानि मया तव । यः पठेच्छृणुयाद्वापि स तु ब्रह्मपदं लभेत् ॥१६७॥
तावदेव बलं तेषां महापातकदंतिनाम् । यावन्न श्रूयते रामनामपंचाननध्वनिः ॥१६८॥
ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः । शरणागतघाती च मित्रविश्वासघातकः ॥१६९॥
मातृहा पितृहा चैव भ्रूणहा वीरहा तथा । कोटिकोटिसहस्राणि ह्युपपापानि यान्यपि ॥१७०॥
संवत्सरं क्रमाज्जप्त्वा प्रत्यहं रामसन्निधौ । निष्कण्टकं सुखं भुक्त्वा ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥१७१॥

सूत उवाच

एवं शौनक पार्वत्यै रामनामसहस्रकम् । यथा शिवेन कथितं मया तेऽद्य निवेदितम् ॥१७२॥

श्रीरामदास उवाच

यथा शिष्य त्वया पृष्टं रामनमसहस्रकम् । तत्स्तोत्रं सविस्तारं मया तेऽद्य निवेदितम् ॥१७३॥
अनेन रामं सदसि नारदः स्तुतवान्मुनिः । रामनामसहस्रेण भुक्तिमुक्तिप्रदेन च ॥१७४॥
श्रीरामनाम्नां परमं सहस्रकं पापापहं सौख्यविवृद्धिकारकम् ।
भवापहं भक्तजनैकपालकं स्त्रीपुत्रपौत्रप्रदमृद्धिदायकम् ॥१७५॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे
पूर्वार्धे रामसहस्रनामकथनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

(कल्पवृक्ष और पारिजातके पृथ्वीपर आनेका कारण)

विष्णुदास उवाच

गुरो त्वया रामनामसहस्रं राघवस्य च । ध्यानं कल्पतरोर्मूले कथितं स्वर्णपीठके ॥ १ ॥

सिद्धियोंका करनेवाला और मुक्ति-मुक्तिका दाता है। हे पार्वति ! मैंने अभी जो सहस्रनाम तुम्हें बतलाया है, यह मन्त्रात्मक और सर्वमंगलकारक है। इसे तुम्हारे पुत्र गणेशजीने स्वयं सनत्कुमारको बतलाया था। उसे मैंने आज तुमसे कहा है। जो कोई इस सहस्रनामको पढ़ता और सुनता है, उसे ब्रह्मपद प्राप्त होता है ॥ १६४–१६७ ॥ महापातकरूपी मतवाले हाथियोंका बल तभी तक रहता है, जब तक रामनामरूपी पंचानन (सिंह) की गर्जना नहीं सुनायी देती ॥ १६८ ॥ जो मनुष्य ब्रह्महत्यारा, मद्यप, गुरुकी शय्यापर शयन करनेवाला तथा चोर हो। जो शरणागतको मारनेवाला, मित्रके साथ विश्वासघात करनेवाला, माता, पिता, भ्रूण (गर्भस्थ संतान) तथा वीर मनुष्यकी हत्या करनेवाला हो तथा जिसने संसारमें करोड़ों पाप किये हों, वह भी यदि श्रीरामके पास बैठकर एक संवत्सर पर्यन्त प्रतिदिन इस स्तोत्रका पाठ करे तो संसारमें निष्कंटक सुख भोगकर अन्तमें मोक्ष पाता है ॥ १६९ ॥ १७० ॥ सूतजी बोले—हे शौनक ! शिवजीने पार्वतीको जिस प्रकार रामका सहस्रनाम सुनाया था, वही मैंने आज तुम्हें बताया है ॥ १७१ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! जैसे तुमने हमसे रामका सहस्रनाम पूछा, वैसे मैंने तुम्हें बतलाया। इसी सहस्रनामसे नारदने सभामें रामजीकी स्तुति की थी। क्योंकि यह स्तोत्र भुक्ति-मुक्ति सब कुछ देनेवाला है ॥ १७२–१७४ ॥ यह रामका सहस्रनाम पापोंका नाशक, सौख्यवर्द्धक, सांसारिक पापोंका नाशक, भक्तजनोंका पालक और स्त्री-पुत्र-पौत्र तथा सम्पत्तिका देनेवाला है ॥ १७५ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेज-पाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीविष्णुदासने कहा—हे गुरो ! आपने रामका सहस्रनाम बताते समय कहा था कि कल्पवृक्षके नीचे